भारतीय इतिहास का मौर्ययुग

डॉ० (कु०) सुधा पाण्डे
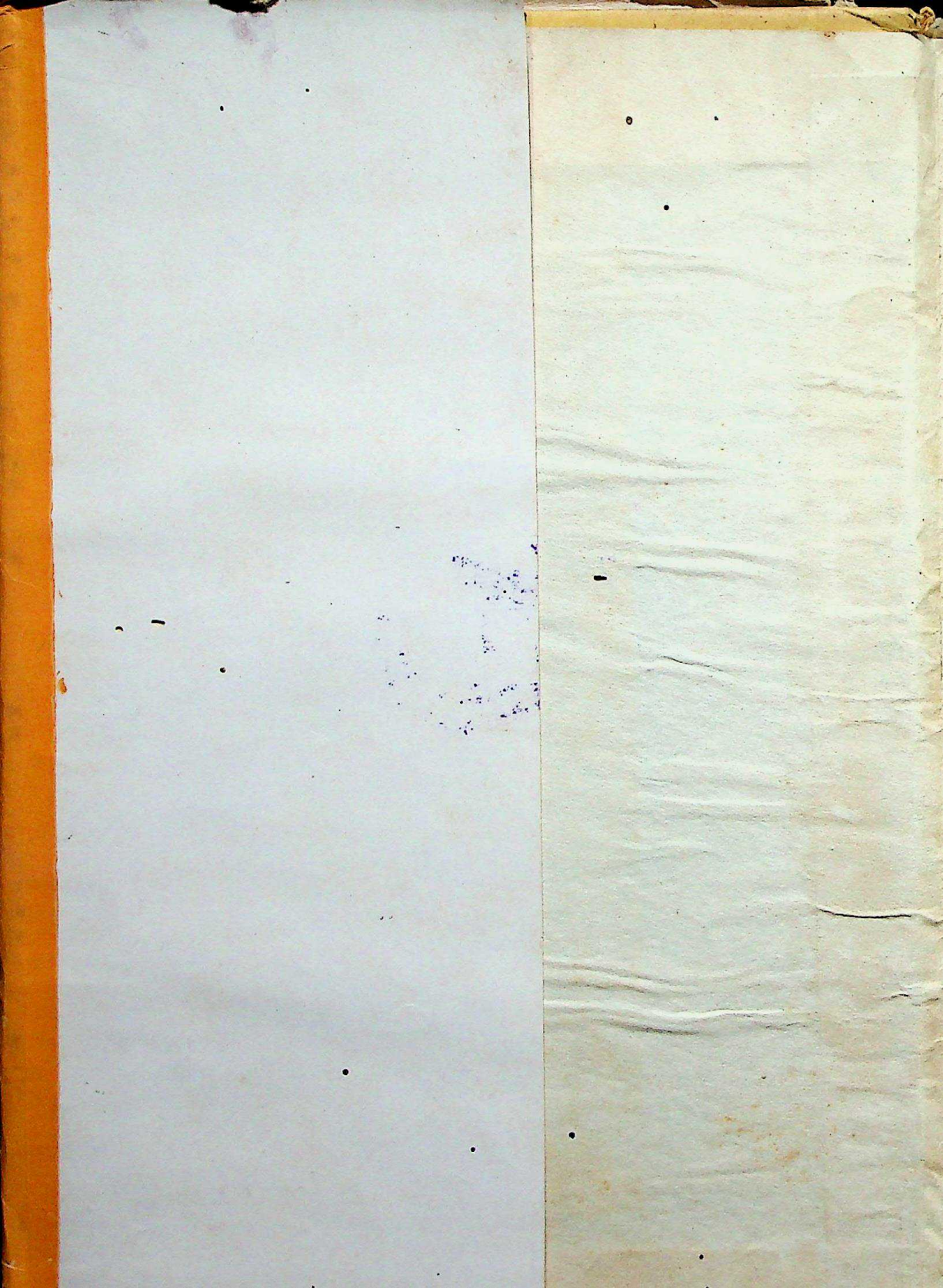
भारतीय इतिहास का मौर्ययुग

(संस्कृत एवं हिन्दी नाटकों के सन्दर्भ में)

डॉ० (कु०) सुधा पाण्डे
प्राचार्य
एम० के० पी० कॉलेज
देहरादून

गौरी पब्लिकेसन्स
चड्डा भवन, २३/४, शक्ति नगर,
दिल्ली - ११०००७

प्रकाशन : १९९३

प्रकाशक : गौरी पब्लिकेसन्स
चड्डा भवन, २३/४, शक्ति नगर,
दिल्ली - ११०००७

मुद्रक : दिल्ली ऑफसेट प्रेस, मौजपुर दिल्ली-110053

लेजर कम्पोजिंग : शिवा लेजर दूरभाष : 2224934

भूमिका

विदुषी डॉ. सुधा पांडे की पुस्तक 'भारतीय इतिहास का मौर्य युग' (संस्कृत और हिन्दी नाटकों के सन्दर्भ में) इतिहास और साहित्य दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। इतिहास युग निर्माण करता है और साहित्य उसकी प्रासंगिकता को आगे आने वाले युगों में सार्थक बनाता है। इतिहासकार एवं साहित्यकार युग द्रष्टा भी है और युगसृष्टा भी। भारतीय इतिहास का मौर्य युग एकराट् शासकों और अखण्ड भारत का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने वाला युग माना जाता रहा है। इस युग का ख्यातिवृत्त नवयुग के निर्माण में साहित्यकारों के लिये विशेष प्रेरणा का स्रोत बना। विशेषकर हिन्दी नाटककारों के लिए। संस्कृत नाटकों के विशाख दत्त के 'मुद्राराक्षस' स्वयं इस युग के मूलस्रोत का आख्याता है। साहित्यकार की इतिहास दृष्टि इतिहास और साहित्य के परिपार्श्व में कितनी महत्वपूर्ण एवं प्रभावी बनती है, इसका आकलन इस कृति में किया गया है। जीवन का यथार्थ चित्रण करने वाली कृति नाटक किसी भी युग का जीवन्त रूप प्रतिविम्बित करने में पूर्ण समर्थ विधा मानी गयी है। लेखिका ने इतिहासगत तथ्यों एवं साहित्य के उपादानों का गम्भीर अध्ययन परक विवरण प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ इतिहास एवं साहित्य दोनों विषयों के अध्येताओं के लिए उपयोगी है एवं संग्रहणीय है।

प्रो० के० पी० नौटियाल
कुलपति
अवध विश्वविद्यालय
फैजाबाद

प्ररोचना

भारत का अतीत बहुविध गौरव गाथाओं द्वारा अपनी कीर्ती सर्वत्र विकीर्ण करता रहा है। भारतीय इतिहास का मौर्ययुग इतिहास के पृष्ठों पर अपने अक्षुण महत्व से साथ आज भी सुदृढ़ भितिष्ठित है।

सर्वविदित तथ्य है कि युगचेतना के स्वरूप साहित्य के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। साहित्यकार सृष्टि के साथ-साथ युग द्रष्टा भी होता है। अपने पूर्व युग का अपने युग तथा आगत युग का भी। युगीन प्रभाव से असंपृक्त एकान्त चिन्तनशील कलाकार कोई विरला ही होता है। प्रत्येक युग का वातावरण और उसकी चिन्तन धारा साहित्यकार के लिए प्रेरणा स्रोत बनती है। कभी-कभी ऐसा भी होता जब क्रीत ईमान किसी युग के इतिहास निर्माण में प्रभाव विशेष के कारण वस्तुस्थिति से दूर हट कर घटनाओं एवं व्यापारों को अपनी सोद्देश्य कल्पना की तूलिका से रंगने लगता है किन्तु तभी राजकीय महत्व के वैभव से दूर रहने वाला स्वतन्त्र चेता कलाकार युग के प्रत्येक स्पन्दन को अपनी भावना का अर्घ्य प्रदान करता रहता है। युग की प्रत्येक करवट उसके चिन्तन की करवट होती है। साहित्य का 'साहित्यस्य भाव' साहित्यकार के इस युग से सहित होने के मूल में विद्यमान रहता है। इस प्रकार साहित्यकारों की कृति में युग चेतना के स्वर निरन्तर मुखरित रहते हैं।

भारतीय इतिहास का मौर्य युग राजनीतिक समृद्धि के साथ-साथ कला और साहित्य की उन्नति के द्वारा निशिचित: साहित्य को प्रमाणामिभूत करने में समर्थ रहा है। संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी के साहित्कार भी इस युग की गरिमा पर आकृष्ट हुए हैं। चन्द्रगुप्त और चाणक्य का अप्रतिम औजस्वी व्यक्तित्व अनेक ग्रन्थों का आदारबिन्दु बना है। तद्युगीन राजनीति प्रयोग के विविध उपाय सामयिक संन्द्रभों के प्रस्तुतीकरण में सहायक बने हैं। अशोक का चंड क्रूर, नरसंहारी पुनश्च परिवर्तन उदारयुक्त अपने युग के साहित्यकारों को ही नहीं वरन् उत्तरकालीन मनीषियों के ह्रदय को अभिभूत करने में सफल हुआ है। नव्यातिनव्यतम नाट्य विधाओं के अन्तर्गत भी अशोक के वृत्त का प्रलय लिया गया है।

ऐतिहासिक व काल्पनिकता के परिपाश्र्व में विभिन्न साहित्यकारों ने मौर्य काल का चित्रण प्रस्तुत किया। युग चित्रण के प्रति विशेष उन्मुख साहित्यकारों की दृष्टि का रुझान जीवन का यथार्थ चित्रण करने वाली विधा नाटक की ओर अधिक रहा है। क्योंकि इसके माध्यम से वे युग का जीवन्त प्रतिविम्ब प्रस्तुत कर सकते थे। संस्कृत नाटक मुद्राराक्षस मौर्य युगीन, राजनीति का

व्यापक परिचय देता है तथा हिन्दी नाटकों में अनेकांकी, एकांकी, गीतिनाट्य आदि सभी विधाओं के अन्तर्गत इस युग का चित्रण हुआ है। अतएव यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि इतिहास के उस युग विशेष पर रचित संस्कृत नाटक और हिन्दी नाटकों का तुलनात्मक मूल्यांकन किया जाए। तुलनात्मक दृष्टि से कौन-कौन से तत्व संस्कृत व हिन्दी नाटककारों द्वारा ग्राह्य और आग्राह्य बने हैं, किस सीमा तक वे युग चित्रण करने में ऐतिहासिकता व काल्पनिकता की सरणि पर आगे बढ़े हैं-यह मूल्यांकन सुधीवर्ग के मध्य अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश्य होकर भी अप्रकाश्य रहा है। इस कृति के माध्यम से द्विविध सामग्री प्रकाश में आ सकी है। एक तो इतिहास प्रयोग के माध्यम के साहित्य का आंकलन दूसरे दोनों भाषाओं (संस्कृत और हिन्दी) के नाटककारों का नाटकों के रूपपक्ष की दृष्टि से पुनर्मूल्यांकन।

प्रस्तुत ग्रंथ दो भागों में प्रकाशनाधीन है, प्रत्येक भाग स्वत: पूर्ण है। प्रथम भाग मं "भारतीय इतिहास के मौर्य युग" के विस्तृत आंकलन के साथ नाटकों से संदर्भ में व्याख्या प्रस्तुत करने वाला भाग है। इतिहास साहित्य के परिपाश्र्व में किन देशों में यह महत्वपूर्ण बन पाता है, इस तथ्य की व्याख्या का वितन्वन करने का प्रयास किया गया है। इतिहास को अपने विजन (vision) का अंग मान कर ही कोई साहित्यकार या नाटककार ऐतिहासिक कृति की रचना करने में समर्थ हो पाता है। ऐतिहासिक नाटककार से सामने इतिहास, इतिहास के छन कर आने वाला विशिष्टानुभव, लोक जीवन का सत्य, स्वानुभव का सत्य और इस सबसे बढ़कर साहित्कार की सहृदय दृष्टि यह सब कुछ नाटककार एक लम्बी प्रक्रिया से जुड़कर ही कर पाता है।

भारतीय इतिहास का मौर्ययुग शास्त्र और शास्त्र के विजित एकराट् सम्राटों का युग है जिसने पहली बार भारत में अखण्ड राष्ट्र की परिकल्पना प्रस्तुत की। यह पुस्तक अध्येताओं के लिए किस सीमा तक उपयोगी बन सकी है, इसका निर्णय अभिरूपभूयिष्ठा विद्वत्परिषद् करेगी।

"आ परितोषाद् विदुषाम्"

—सुधा पाण्डे

देहरादून।

अनुक्रमाणिका

पृष्ठ संख्या

अध्याय प्रथम
मौर्य युग तथा उसकी ऐतिहासिक विशेषताएं 1

द्वितीय अध्याय
ऐतिहासिक नाटक के स्वरूप की मीमांसा 32

तृतीय अध्याय
मौर्य युग का चित्रण करने वाले नाटककार और नाटक 61

अध्याय चतुर्थ
आलोच्य नाटकों का ऐतिहासिक अर्थ, ऐतिहासिकता
और काल्पनिकता की दृष्टि से तुलनात्मक मूल्यांकन 97

अध्याय पंचम
आलोच्य नाटकों का युग चित्रण की दृष्टि से
तुलनात्मक पर्यवेक्षण 129

अध्याय प्रथम

मौर्य युग तथा उसकी ऐतिहासिक विशेषताएं
(३४३ ई. पू. से १८५ ई. तक)

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

अत्याचारी प्रजा पीड़क नन्दवंश तथा विदेशी आक्रमणों की भयावह विभीषिकाओं का ध्वंस करके प्रथम एकराट् भारतीय सम्राट के रुप में आने वाला चन्द्रगुप्त मौर्य निस्संदेह इतिहास की अविस्मरणीय विभूति है। चौथी शताब्दी ई. पू. का भारतीय इतिहास एक अत्यन्त युगान्तरकारी चरण न्यास करने को तत्पर हुआ और उसमें उसे अभीप्सित सफलता भी मिली। इस कालावधि में आपश्चिमातपूर्व अनेक महत्व अनेक महत्व पूर्ण घटनाएं प्रस्तुत हुई। मक्दूनियां की अपरिमेय शक्ति ने यूनान को उसके प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया धीरे धीरे यूनान के नगर राज्यों का अस्तित्व समाप्त होता गया। अन्ततोगत्वा सिकन्दर के साम्राज्य के समाप्त होते ही यूनान का भाग्यसूर्य सदा के लिए अस्त हो गया। मध्य पूर्व में ईरान की शक्ति धराशायी हो गई, शेष रोम नगर का नन्हा सा गणतन्त्र विस्तृत प्रादेशिक शक्ति के रुप में बदल गया और भारत की विशाल भूमि पर एक साम्राज्य की स्थापना की गयी। इस बात को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इस अर्थशताब्दी में यूरोपमध्य पूर्व और भारत का सम्पूर्ण इतिहास भविष्य के लिए निर्मित किया गया।[१]

स्पष्ट हो जाता है कि यह काल भारत में अविस्मरणीय साम्राज्योचित परम्परा की स्थापना करने वाला था। चन्द्रगुप्त मौर्य ही प्रथम भारतीय सम्राट था जिसने विशाल भारत भू पर अपना अधिकार करते हुए अपनी विजयों द्वारा उत्तरी भारत को राजनीति एकता में बांधा और उस साम्राज्य का विस्तार किया जिसकी सीमाएं ऐशिया (हैरात) से पाटलिपुत्र तक फैली थी जब कि परिस्थितियों की दृष्टि से यह युग राजनीतिक अनेकता का युग था उत्तर भारत में एक मात्र मगध ही शक्तिशाली राज्य था, किन्तु उस पर राज्य करने वाले नन्दों के अत्याचार की चरम सीमा व्याकुल सी कहीं शान्ति की अरण्यानी का प्रश्रय खोज रही थी अवसर आते ही चन्द्रगुप्त मौर्य के माध्यम से शान्ति की स्थापना की जा सकी दूसरी ओर विदेशियों के आक्रमणों से राष्ट्र पराभव हो चुका था उससे भी मुक्ति दिलाने का श्रेय इसी महान सम्राट को है।

इन सब बातों से भी बढ़ कर मौर्य राजवंश के संस्थापक के रूप में चन्द्रगुप्त ने पहली बार भारत को एक ऐसा इतिहास प्रदान किया जिसका क्रम कहीं नहीं टूटता

जो इसके साथ ही एक ही सूत्र में बंधा हुआ इतिहास है, वह ऐसा इतिहास है जो भारत की अलग अलग जातियों तथा प्रदेशों का अलग अलग इतिहास न होकर इकाई के रूप में पूरे अखंड भारत को अपने में समेट लेता है।[१]

नन्दवंश का राज्य- अब यहां क्रमेण पूर्ववर्ती अव्यवस्था का वह विवरण प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा, जिसको समाप्त कर चन्द्रगुप्त एक छत्र राज्य की स्थापना कर सका नन्दवंश के विवरण के संबनध में पुराण पालिग्रन्थ तथा विदेशी ग्रन्थ दोनों ही सहायक हैं। ऐसा विवरण उपलब्ध होता है कि मौर्य के पूर्ववर्ती इन नन्द शासकों ने शिशुनाग वंश के शासक को मार कर मगध का राज्य छीना था। नन्दों की उत्पत्ति के विषय में यहां विस्तृत व्याख्या अपेक्षित नहीं किन्तु सभी प्राप्त प्रमाण यही सिद्ध करते हैं कि नन्द नीच कुल में जन्मे थे और उन्होंने शास्त्र प्रतिकूल शूद्र शासन की स्थापना की थी। इन शासकों में नौ नन्दों का उल्लेख मिलता है जो क्रमेण आयु के माध्यम से राज सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे। जो भी हो नन्दों का समय अर्थात् ई. पू. पांचवी और चौथी शती हमारे समक्ष आश्चर्य जनक घटनाएं प्रस्तुत करने वाली थी एक ओर क्षत्रियों के प्रमुख लोग लोकप्रिय एकमतानुयायी धर्म की स्थापना कर रहे थे वह धर्म ऐसा था जिसने वैदिक धर्म को संकट में डाला था और दूसरी ओर शूद्र नेतागण आर्यावर्त में क्षत्रियों के मूक खण्डहरों के ऊपर एक बृहत् राज्य की स्थापना कर रहे थे ये दो घटनाएं इतिहास के इस व्यापक क्षेत्र से अस्पष्ट नहीं रखी जा सकतीं।

अन्तिम नन्दराजा के शासकीय वृत्त का अध्ययन करने के उपरान्त ही उस वंश का सम्यक विवरण प्राप्त होना संभव है। अन्तिम नन्द राजा का उल्लेख पुराणों में नहीं है किन्तु होना संभव है। किन्तु जैन ग्रन्थों में "धननंद" के नाम से उल्लेख मिलता तथा ग्रीक इतिहासकार "जैड्रिमस" के नाम से उसे अभिहित करते हैं। पुराण यह स्पष्ट उल्लेख करते हैं कि महापद्मनन्द जो पहला ही नन्द शासक था वह अनेक राज्यों को अधिगत करके उनका सार्वभौम शासक बन बैठा था।[१]

सिद्ध हो जाता है कि अन्तिम नन्द शासक अपने पूर्ववर्ती नन्द शासकों द्वारा प्राप्त मगध पर राज्य कर रहा था जो राज्य किसी प्रान्त अथवा विशेष तक सीमित न होकर समूचे उत्तर भारत का साम्राज्य था। जब वह सिकन्दर के आक्रमण के समय (३२७-३२५ ई. पू.) भारत पर राज्य कर रहा था उस समय के ग्रीक लेखकों ने उसकी शक्ति स्थिति आदि के तथ्य संकेतित किये है। ये लेखक्क दस नन्द राजा से गंगारि देई (गंगा की धाटी) प्रासाई (प्राच्य) के शासक के रूप में पारिचित थे। ये जातियां मध्य देश में पूरब तक रहतीं थीं। इस नन्द राजा ने कलिंग पर भी विजय प्राप्त की थी इससे स्पष्ट होता है इसने अपना राज्य विस्तार दक्षिण तक किया, दक्षिण राज्य विस्तार

का उल्लेख कलिंगराज खारवेल के हाथी गुंफा के अभिलेख में भी मिलता है। राजनीतिक दृष्टिकोण से भी नन्दों का महत्व सिद्ध हो जाता है। खण्ड अनेकशः विभक्त भारत को राजनैतिक एकता के पथ पर अग्रसर करने वाले यही नन्द राजा थे जिन्होंने भावी सम्राटों की साम्राज्य स्थापना के लिए एक आधार भूमि प्रतिष्ठित की थी।

नन्दराजा इतना होते हुए भी अप्रिय था। उसके क्रूर अत्याचारों से त्रस्त होकर प्रजामुक्ति चाहती थी यही सब देख कर स्वयं चन्द्रगुप्त ने इसकी सूचना सिकन्दर को दी थी। सिकन्दर तथा नन्द राजा का संघर्ष होने के समय परिस्थिति क्या होती कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि सिकन्दर ने अब तक पश्चिमोत्तर भारत की कम महत्व वाली जातियों को जीता था तथा स्वयं धननन्द ने सिकन्दर के आक्रमण को रोकने के लिए कोई प्रभावशाली कार्य किए हों, इसका भी कोई उल्लेख नहीं मिलता पर इतना अवश्य है कि जनता उसका सहयोग देने को बिल्कुल तत्पर नहीं थी उसकी अनैतिकता ही चन्द्रगुप्त की विजय का नैतिक सोपान बन कर प्रस्तुत हुई।

धननन्द के समय के अत्याचारों का उल्लेख बृहत्कथा, कथा-सरित्सागर आदि की कथाओं में उपलब्ध होता उनसे यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार उसने अपने सुयोग्य मंत्री शक्टार को उसके सौ पुत्रों समेत अन्धकूप में डाल दिया जहां उसके सौ पुत्रों की मृत्यु हो गयी, इसके बाद शक्टार के स्थान पर नियुक्त दूसरे मन्त्री वररूचि के साथ भी ऐसा ही अत्याचार पूर्ण आदेश दिया कि उसे फौरन मार डाला जाय किन्तु शक्टार की कृपा से वह बच गया। यही शकटार जो कि नन्द का घोर शत्रु बन बैठा था उससे प्रतिशोध लेने के लिए अनेकानेक उपाय खोज रहा था, तभी मार्ग में कुशा उखाड़ते समय उसकी भेंट चाणक्य से हुई जिसे उसने नन्द के यहां श्राद्ध में आमन्त्रित करके श्रेष्ठ ब्राह्मण के सिंहासन पर अधिष्ठित किया और नन्द ने उस स्थान पर सुबन्धु को कुद्ध होकर चाणक्य ने नन्दवंश के अन्त की प्रतिज्ञा की थी, विविध कथाएं इतिहास परक दृष्टिकोण सिद्ध करते हैं कि नन्द की क्रूरता ही उसकी समाप्ति का हेतु बनी।

चन्द्रगुप्त का प्रारम्भिक जीवन

चन्द्रगुप्त के प्रारम्भिक जीवन के बारे में स्पष्ट प्रामाणिक उल्लेख पूर्णतः नहीं उपलब्ध है यद्यपि यूनानी तथा भारतीय सभी ग्रन्थों में हुई जब मगध राजवंश के उद्धारक और एक छत्र राज्य के इस संस्थापक का उल्लेख अवश्य हुआ है। चन्द्रगुप्त के नाम के साथ "मौर्य" शब्द लगा होने से उसके जन्म के संबन्ध में पर्याप्त विवाद है। भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों की धारणाएं अनुश्रुतियों और किवंदन्तियों की व्यापक परम्परा ने इस विषय को अधिकाधिक ग्रन्थियों में उलझा दिया है। कुछ विचार धाराएं उसे

अभिजात कुलोत्पन्न बताती और कुछ शूद्रागर्भोद्भव किन्तु इन सभी धारणाओं के अन्तर्गत कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक आधार उपलब्ध नहीं होता।

पाश्चात्य विचारधाराओं में कर्टियस डियोडोरस और प्लूटार्क तो नन्दों को ही नीच कुल में उत्पन्न बताते हैं उनके द्वारा प्रस्तुत व्याख्या में चन्द्रगुप्त के निम्नकुल में उत्पन्न होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। हां जस्टिन के उल्लेख अवश्य स्पष्ट करते हैं कि "भारत को स्वतन्त्र करने वाला नेता सैंड्रोकोहस था उसका जन्म एक मामूली घराने में हुआ था। विदेशी श्रोतों की साक्षी केवल इतना मात्र सिद्ध कर सकी है कि चन्द्रगुप्त का जन्म किसी राजवंश में नहीं हुआ था किन्तु उसके उल्लेख यह सिद्ध नहीं करते कि वह शूद्रा पुत्र था अथवा अन्य किसी निम्न कुल में उत्पन्न।

यहां कतिपय भारतीय विचारधाराओं की व्याख्या करना भी उपयुक्त होगा। पुराण मुख्यरूप से नन्दों को ही निम्नकुलोद्भव बताते हैं विष्णु पुराणस्पष्ट उल्लेख देता है कि नन्दों में महापद्मनन्द अपर परशुराम की भांति सभी क्षत्रियों का नाश करने वाला होगा और तभी से शूद्र शासक होंगे। इसके आगे स्पष्ट उल्लेख है कि कौटिल्य नाम का ब्राह्मण नन्दों से अत्याचारित पृथ्वी का उद्धार करेगा और उनके अभाव में मौर्य पृथ्वी का शासन करेंगे।स्पष्ट हो जाता है कि नन्दों ने शास्त्र प्रतिकूल शासन की स्थापना की थी और चाणक्य जिसने कि चन्द्रगुप्त को राज्याभिषिक्त किया था जिसने अर्थशास्त्र में अनभिजात राजा को अभिषिक्त करना शास्त्रानुकूल नहीं माना यदि चन्द्रगुप्त शूद्रागर्भोद्भव होता तो चाणक्य उसे कभी नहीं अभिषिक्त करता। विवाद का विषय "मौर्य" शब्द है। पुराणों में प्रयुक्त इसी शब्द को लेकर परवर्ती टीकाकारों तथा अन्य ग्रन्थ कारों विविध धारणाएं प्रगट की हैं। पुराणों के एक टीकाकार ने मौर्य शब्द की व्युत्पत्ति "मुरा" से की है जो मुरा राजा नन्द की एक पत्नी थी । साथ ही इसी टीकाकार ने चन्द्रगुप्त को नन्द का पुत्र बताया है जब कि कोई पुराण चन्द्रगुप्त को नन्द का पुत्र नहीं बताते, किन्तु पुराण की इस टीका में "मुरा" को शूद्रा स्त्री नहीं बताया है और न ही यह स्पष्ट किया गया है कि वह नन्द की रक्षिता स्त्री थी। इस टीका के आधार पर हम स्पष्ट रूप से चन्द्रगुप्त को नीचकुल में उत्पन्न नहीं कह सकते।

मुद्राराक्षस में प्रयुक्त "वृषल" शब्द मुख्यरूप से चन्द्रगुप्त को शूद्रोत्पन्न सिद्ध करने का श्रोत बना है। परवर्ती टीकाकारों ने इसका सामान्य रूप से अर्थ लगाया है वस्तुतः नाटककार की मूल दृष्टि "वृषल" शब्द के व्यापक अर्थीय प्रयोग में रही है स्वयं इस नाटक में एक स्थान पर इस शब्द का प्रयोग चन्द्रगुप्त के सम्मान के सूचनार्थ प्रयुक्त हुआ है। दूसरे इसी नाटक में चन्द्रगुप्त के लिए जो "कुलहीन" शब्द प्रयुक्त हुआ है वह निम्न कुलोद्भव के लिए न होकर साधारण कुलोद्भव की ओर संकेत करता है।

दूसरी ओर नाटक में जो नन्दों को "प्रथित कुलजः" बताया गया है वह नाटककार का पूर्वाग्रही और पक्षपाती दृष्टिकोण कहा जा सकता है और इस दृष्टि से प्रामाणिक इतिहास के रूप में मुद्राराक्षस का महत्व घट जाता है।

मुद्राराक्षस में प्रयुक्त इन शब्दों के आधार पर चन्द्रगुप्त के निम्नकुलोद्भव होने की कल्पना वस्तुतः टीकाकार ढुण्डिराज का उपोद्धात है जिसमें उसने उल्लेख किया है कि कलि के आदि में नन्द नाम का एक राजवंश था, उसमें सर्वार्थसिद्ध मुख्य था उसकी दो रानियां थीं एक सुनन्दा दूसरी वृषला पुरा। सुनन्दा के नौ पुत्र हुए और मुरा से मौर्य। सर्वार्थसिद्धि ने नन्द पुत्रों का सेनापति न बना कर मौर्य को बनाया था पर इन नन्द बन्धुओं ने मौर्य और उसके पुत्रों का वध करवा दिया, केवल चन्द्रगुप्त किसी प्रकार प्राण बचाकर भाग निकला। वस्तुतः मुद्राराक्षस की साक्षी के आधार पर चन्द्रगुप्त को नन्द पुत्र या वृषला अर्थात् शूद्रा से उत्पन्न नहीं कहा जा सकता।

बृहत्कथा मंजरी और कथासरित्सागर दूसरा ही रूप प्रस्तुत करती हैं। पुराणों में उल्लिखित नौ नन्दों का इन दोनों कृतियों में कोई उल्लेख नहीं। केवल दो नन्दों का उल्लेख मिलता है पूर्वनन्द जिसका पुत्र चन्द्रगुप्त बताया गया है या फिर हिरण्य गुप्त के पिता योगनन्द का उल्लेख मिलता है कथा सरित्सागर में स्पष्ट उल्लेख है कि व्याडि ने राजा को बताया कि मंत्री शक्टार पूर्व नन्द के पुत्र चन्द्रगुप्त को राजा बनाना चाहता और तुम्हारा शीघ्र ही विनाश कर देगा किन्तु इन कथाओं में पूर्व नन्द का विस्तृत विवरण नहीं उपलब्ध होता, हां योगनन्द के बारे में अवश्य उल्लेख है कि वह अवश्य शासन करता था उसी में शक्टार को अन्धकूप में डलवा कर वररूचि को अमात्य बनाया था। कथा सरित्सागर की इस आख्या के आधार पर भी हम चन्द्रगुप्त को शूद्रागर्भोद्भव नहीं मान सकते क्योंकि पूर्वनन्द जिसका पुत्र चन्द्रगुप्त बतलाया गया है उसके वंशादि का कोई विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है।

बौद्ध ग्रन्थ चन्द्रगुप्त को असंदिग्ध रूप अभिजात कुलोद्भव बताते हैं। ये ग्रन्थ नन्दों को अज्ञात कुल वाला बताते हैं साथ चन्द्रगुप्त के बारे में लिखते हैं कि पिप्पली कानन के मोरिय नामक क्षत्रिय वंश में उसका जन्म हुआ था।मोरिय जाति शाक्यों की एक उच्च शाखा थी। महाबोधिवंश में स्पष्ट उल्लेख है कि मोरिय काट निवासी चन्द्रगुप्त जो कि नरिन्द कुल संभव था, चाणक्य नामक द्विज की सहायता से पाटलि पुत्र का राजा बना। दिव्यावदान में आए उल्लेखों बिन्दुसार के बारे में कहा गया है कि उसका एक क्षत्रिय राजा की भांति विधिवत् अभिषेक हुआ और अशोक को उसमें स्पष्ट रूपेण क्षत्रिय कहा गया है।जैन परम्परा में लिखित ग्रन्थ परिशिष्ट पर्वन् में चन्द्रगुप्त को एक ग्राम

प्रमुख का दौहित्र बतलाया गया है तथा इसी ग्रन्थ में नन्दों को स्पष्ट रूपेण नापित दास कहा गया है।[2]

वस्तुस्थिति जो भी हो, इतना अवश्य है कि चन्द्रगुप्त बाल्यावस्था से दूरदर्शी प्रतिभा से युक्त था जिसकी दूर दर्शिता देखकर चाणक्य ने उसे अपने अभीष्ट सिद्ध के लिए शिष्य बनाया था। मोरिय गण जो तत्कालीन सोलह जनपदों से अतिरिक्त एक अन्य जनपद था नन्दों के उग्र साम्राज्यवाद के कारण नन्द के ही आधीन था और अत्याचारिता के कारण नन्दों से प्रपीड़ित था इसी मोरिय कुल की कोई रानी अत्याचारों से बचने के कारण छिप कर अपना जीवन व्यतीत कर रही थी व इसी स्थिति में चन्द्रगुप्त का जन्म हुआ था। भय के कारण उसने चन्द्रगुप्त को एक ग्वाले को सौंप दिया था। प्रसाद ने अपने चन्द्रगुप्त नाटक की भूमिका में चन्द्रगुप्त को मौर्य सेनापति का पुत्र बताया है जो कि नन्दों के बन्दी बनाए जाने के कारण कष्ट पूर्ण अवस्था में जीवन व्यतीत कर रहे थे।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त के साथ नन्दवंश के राजाओं का व्यवहार

नन्द अपनी उग्रता से ही अप्रिय वने थे और उनके अत्याचारों ने ही नन्द वंश का विनाश किया। पाटलिपुत्र की कथा "एवं" महावंश दोनों ही में उल्लेख है कि चाणक्य का अपमान नन्दराजा ने किया था। "महावंश" टीका उल्लेख करती है कि चाणक्य ज्ञान पर्येषणा के लिए पुष्पपुर या पाटलिपुर आया था। चाणक्य के पाटलिपुत्र आगमन के समय अन्तिम राजा धननन्द मगध पर राज्य कर रहा था। उसका यह धन नन्द नाम पुराणोक्त नहीं वरन् धन के लोभ के कारण पड़ा था। इसी महावंश में यह भी स्पष्ट किया गया है कि वह धन का भण्डार एकत्र करने का अग्रणी भी था। किन्तु चाणक्य के समक्ष दानशील नृप के रूप में नन्द राजा प्रस्तुत हुआ क्योंकि वह अब उस धन का उपयोग, जोकि उसने अत्याचार के द्वारा प्राप्त किया था दानादि करके कर कहा था। इस कार्य के लिए उसने दानशाला या मुक्तिशाला की स्थापना की थी इसकी व्यवस्था का संचालक एक संघ के हाथों में था जिसका अध्यक्ष ब्राह्मण होता था।

नियम यह था कि अध्यक्ष एक करोड़ मुद्राएं तक दान में दे सकता था और संघ का सबसे छोटा सदस्य एक लाख मुद्राओं तक।

चाणक्य इस संघ का अध्यक्ष बनाया जाकर भी कुटिल स्वभाव और कुरूपता के कारण नन्द के आक्रोश का पात्र बना परिणामतः कुद्ध होकर नन्द ने उसे पदच्युत

कर दिया प्रतिक्रिया स्वरूप अपमान पर क्रोधित होते हुए चाणक्य ने राजा को शाप दिया कि वह इस वंश को निर्मूल ही कर देगा।

पाटलिपुत्र की कथा भी यही स्पष्ट करती है कि तक्षशिला के प्रधानाचार्य के रूप में पाटलिपुत्र आने पर "चाणक्य नन्द की मुक्तिशाला में गया और संघ ब्राह्मण के आसन पर बैठ गया तक्षशिला का वह प्रमुख आचार्य था और उसे आशा थी कि पाटलिपुत्र में भी प्रधान आचार्य के रूप में सम्मान मिलेगा। आगे के दांत टूटे हुए देखकर कुरूप होने के कारण नन्द ने सोचा कि निश्चय ही यह व्यक्ति मुख्य आसन का अधिकारी नहीं हो सकता। चाणक्य से पूछे जाने पर एवं उसके द्वारा उग्रतापूर्वक प्रत्युत्तर दिए जाने पर धननन्द ने अत्यधिक क्रोध में भर कर राजपुरूषों द्वारा अपमानित करके बाहर निकलवा दिया। चाणक्य ने भी अपने कमंडल को इन्द्रकील पर पटक कर क्रोध से कहा राजा उद्धत हो गया है समुद्र से धिरी हुई पृथ्वी नन्द का नाश देखले।

इसी कथा का संकेत "मुद्राराक्षस" में भी मिलता है कि चाणक्य को उसके उत्कृष्ट आसन से नीचे हटाकर अपमान दिया गया परिणाम स्वरूप वृद्ध हो कर चाणक्य ने नन्द वंश को निर्मूल करने का निश्चय कर लिया।

प्रसाद ने चन्द्रगुप्त नाटक की भूमिका में जो उल्लेख प्रस्तुत किया उसमें स्पष्ट किया है कि चाणक्य के द्वारा उत्साहित किए जाने पर तथा अपने बालक की उच्चशिक्षा के प्रबंध की आकांक्षा से चन्द्रगुप्त की मां उसे लेकर राजवंश में गयी वहां नन्द की राज्यसभा की बुद्धि का अनुमान लगाने के लिए किसी राजा ने पिंजड़े में मोम का सिंह बना कर भेजा था, मूर्ख और चाटकार राजसभा के द्वारा विचार किए जाते समय ही चन्द्रगुप्त ने अपनी प्रखर प्रतिभा के बल से तप्त लौह शलाकाओं से पिघला कर उस सिंह को बाहर निकाल दिया, कुद्ध होकर नन्द ने उसे पुनः बहिष्कृत कर दिया था, क्योंकि परिचय प्राप्त करने पर उसके मौर्य होने का भेद खुल गया था। इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप उसने नन्दों का विनाश करने का विचार किया था। चाणक्य कथा भी यही स्पष्ट करती है कि पितृ श्राद्ध के अवसर पर नन्द ने चन्द्रगुप्त को ब्राह्मणों को निमंत्रित करने की आज्ञा दी। चन्द्रगुप्त को मार्ग में पैर छिल जाने के कारण मूंज उखाड़ता हुआ एक ब्राह्मण मिला उसकी चतुरता और कूटनीति का परिचय पाकर चन्द्रगुप्त ने उसे भी श्राद्ध के लिए निमंत्रित किया। योग्य ब्राह्मण के लिये नियुक्त अग्रासन पर चाणक्य जाकर बैठ गया नन्दों ने बिना परिचय प्राप्त किए ही सेवकों द्वारा शिखा पकड़ कर बहिष्कृत कर दिया। क्रुद्ध होकर चाणक्य ने निश्चय किया कि वह नंन्द वंश का विनाश कर देगा। कथा सरित्सागर का उल्लेख भी ऐसी ही कथा स्पष्ट करता है पर वहां शक्टार

अपने सौ पुत्रों की मृत्यु के प्रतिशोध के लिए चाणक्य को आमंत्रित करता है यहां चन्द्रगुप्त चाणक्य को निमंत्रित करता है।

ये समस्त कथाएं प्रत्यक्ष उल्लेख करती हैं कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य दोनों ही नन्द के क्रोध के पात्र बने थे तथा दोनों ही ने मन में अपमान की प्रतिक्रिया स्वरूप नन्द वंश के नाश हेतु क्रोध की तीव्र वन्हि प्रज्वलित हो रही थी।

चाणक्य और चन्द्रगुप्त की भेंट

चन्द्रगुप्त और चाणक्य जिन परिस्थितियों में मिले और उनके मध्य गुरू शिष्य संवध किस प्रकार स्थापित हुआ इस विषय में भी कथाएं प्रचलित हैं जो विचार धारा चन्द्रगुप्त को क्षत्रियों के मोरिय नामक वंश में उत्पन्न बताती है वह यह सिद्ध करती है कि नन्दों से छिप कर रहने वाली मोरियकुल की किसी रानी ने चन्द्रगुप्त के जन्म लेने पर उसे एक ग्वाले को पालन पोषण के लिए सौंप दिया और इस प्रकार उत्तर भारत का भावी सम्राट ग्वालों के बीच अपना जीवन व्यतीत करने लगा। राजकीलम् नामक क्रीड़ा में अपनी राजनीतिक चतुरता का परिचय देते हुए इस राजकुमार ने अपने को जन्मजात नेता के रूप में सिद्ध किया, इस प्रकार की क्रीड़ा में वह कुशलता से राजा के कार्यों का अभिनय करता था उसके साथी उसके अनुचर बनते थे वह राजसभा भी एकत्र करता था तथा न्याय भी सुनाता था कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने अपने आर्ष चक्षुओं द्वारा उस बालक की दूरदर्शी प्रतिभा का अवलोकन उसमें राजत्व के चिन्ह देख कर १००० कट्टापण (तत्कालीन मुद्रा) देकर उस के पालने वाले पिता से खरीद लिया। चाणक्य अब इसे अपने साथ तक्षशिला ले गया और वहां इसने इसे अनेक शिल्प और कलाओं तथा विविध विद्याओं की शिक्षा दिलाई अनेक राजकुमारों के साथ तत्कालीन श्रेष्ठ केन्द्र में आठ वर्ष पर्यन्त शिक्षा प्राप्त करके चन्द्रगुप्त तत्कालीन सैन्य विद्याओं में भी निपुण हो गया। चन्द्रगुप्त की जिज्ञासा इसी से शान्त नहीं हुई थी "प्लूटार्क" आदि अन्य विचारकों की प्रबल धारणाओं और उल्लेखनीय कथन यह स्पष्ट करते हैं कि चन्द्रगुप्त अपनी युवावस्था में सिकन्दर से उस समय मिला जब वह अपनी विजय अभियान के संदर्भ में पंजाब गया था एक सैन्य विद्यार्थी होने के नाते अपने समय के सबसे बड़े सैनिक नेता से भेंट करना इस युवक के लिए सर्वधा थी।

इस प्रकार दूरस्थ पाटलिपुत्र नगर के निकट चाणक्य और चन्द्रगुप्त की भेंट हुई थी यह भेंट एक युगान्तरकारी भेंट थी और इसके फलस्वरूप आगे चलकर न केवल उनके वैयक्तिक जीवन में बल्कि देश के इतिहास में भी बड़े बड़े परिवर्तन होने वाले थे। चाणक्य से उसकी इस भेंट ने चन्द्रगुप्त के जीवन की धारा को एक नयी दिशा में मोड़ दिया था।

अब उसे सुसंस्कृत नागरिक का जीवन व्यतीत करना था उसे सुदूर तक्षशिला में भारत की सबसे बड़ी विद्यापीठ में उस समय की उच्चतम शिक्षा मिलने वाली थी और उसे इतिहास के एक सबसे बड़े प्रयास के लिए तैयारी करनी थी।

पाटलिपुत्र की कथा चाणक्य और चन्द्रगुप्त की भेंट के संबन्ध में एक नयी अवधारणा प्रस्तुत करती है उसमें उल्लेख प्रस्तुत किया गया है कि चाणक्य प्रतिशोध का अवसर खोजने में तत्पर था उसकी स्वयं की यह नीति थी कि "राजपुत्र केंकड़े" के समान स्वपित्रधाती होते हैं। अस्तु वह स्वयं एक ऐसे राजकुमार की खोज में था जिसके द्वारा विद्रोह करवा कर वह अभीष्ट पूर्ति करता। इसी समय उसका परिचय पर्वतक नाम के राजकुमार से हुआ पाटलिपुत्र की कथा ने यह उल्लेख नहीं किया है कि पर्वतक का नन्द से क्या संबन्ध था किन्तु राजप्रासाद में यह रहता था और राजवंश से संबन्धित था। पर्वतक के माध्यम से अपने षड़यन्त्र रचते हुए चाणक्य ने एक बड़ी सेना का संगठन किया, किन्तु उसे सैन्य संचालन में कुशल व्यक्ति की आवश्यकता थी। इसी समय चाणक्य की भेंट चन्द्रगुप्त से हुई दोनों में एक को वह चुनना चाहता था उसने दोनों कुमारों के गले में एक एक सुवर्ण सूत्र बांध दिया एक बार जब चन्द्रगुप्त सो रहा था उसने पर्वतक से कहा ऐसे ढंग से सुवर्णसूत्र चन्द्रगुप्त के गले से निकाल लाओं कि न गांठ खुले और न सूत्र टूटे। पर्वतक को कोई उपाय न सूझा वह असफल होकर लौट आया ऐसे ही एक दूसरे दिन जब पर्वतक सो रहा था चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को वैसा ही करने को कहा चन्द्रगुप्त ने सोचा कि पर्वतक का सिर काट कर ही सुवर्णसूत्र को इस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है कि न तागा टूटे और न गांठ खुले। उसने यही किया और पर्वतक का सिर काट कर सुवर्णसूत्र को चाणक्य के सम्मुख लाकर रख दिया इससे चाणक्य बहुत प्रसन्न हुआ पर्वतक उसके रास्ते से हट गया और चन्द्रगुप्त के रूप में उसे एक ऐसा व्यक्ति मिल गया जो न केवल वीर और साहसी था, पर अपने कार्य की सिद्धि के लिए वैसा वीभत्स से वीभत्स उपाय का आश्रय ले सकता था।

पाटलिपुत्र की कथा का यह उल्लेख ऐतिहासिक उल्लेखों से पृथक् है पर्वतक या पर्वतेश्वर की हत्या चाणक्य की नीति द्वारा चन्द्रगुप्त का मार्ग निष्कंटक करने के लिए अवश्य की गयी थी किन्तु इस रूप में पहले नहीं क्योंकि ऐतिहासिक उल्लेख सिद्ध करते हैं कि पर्वतक की सहायता ने चाणक्य ने मगध विजय की थी। सेठ गोविन्ददास के शशिगुप्त नाटक की भूमिका में डा. हरिश्चन्द्र ने अपने नवीन अनुसंधान पर सिद्ध किया है तक्षशिला निवासी चाणक्य और चन्द्रगुप्त में प्रारम्भ से ही घनिष्ठ मित्रता थी।

इन कथनों में सत्यता या काल्पनिकता जितनी भी रही है इतना तो सर्वप्रमाणित व सर्वमान्य हो चुका है कि "कौटिल्य" नामक ब्राह्मण ने चन्द्रगुप्त को मगध राज्य

पर अभिषिक्त किया। इस तथ्य का उल्लेख विष्णु पुराण वायु पुराण और स्वयं कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रस्तुत करते हैं। वायु पुराण में स्पष्ट उल्लेख है कि कौटिल्य चन्द्रगुप्त को राजा के रूप में राज्य पर अधिष्ठित करेगा चन्द्रगुप्त २४ वर्षों तक राजा होगा। [२] या फिर विष्णु पुराण में आया उल्लेख कि चन्द्रगुप्त को कौटिल्य है राज्य में अभिषिक्त करेगा। [३] साथ ही वायु पुराण उल्लेख देता है कौटिल्य चन्द्रगुप्त के द्वारा अत्याचारी नन्दों से पृथ्वी का उद्धार करेगा।स्वयं कौटिल्य ने अपने अर्थ शास्त्र में इस प्रमाण को प्रस्तुत किया है कि जिसने शस्त्र को और शास्त्र को व नन्दराजाओं द्वारा अधिगत भूमि को शीघ्र ही मुक्त किया उसी ने इस शास्त्र की रचना की है। इतना तो सिद्ध हो जाता है कि चन्द्रगुप्त का परिचय प्राप्त करके उसकी सहायता से नन्द वंश का अन्त किया।

सिकन्दर का आक्रमण एवं पंजाब में चन्द्रगुप्त और सिकन्दर की भेंट।

जिस समय चाणक्य और चन्द्रगुप्त मगध विजय की योजनाएं बना रहे थे। उसी समय महत्वपूर्ण घटना यह भी हुई कि विश्वविजय की आकांक्षा से सिकन्दर भारत पर आक्रमण करने वाला था अतः अब उसे आन्तरिक संघर्ष की अपेक्षा इस बाह्य संघर्ष को समाप्त कर देना था। देश द्रोही, पुष्कल स्वर्ण के लोभी आम्भी से मित्रता कर चन्द्रगुप्त प्रविष्ट भी होने वाला था। चन्द्रगुप्त पंजाब में सिकन्दर से मिला इसका उल्लेख इतिहासकार प्रस्तुत करते हैं। किन्तु वह सिकन्दर को मगध पर आक्रमण का आमंत्रण देने गया था या ग्रीक शिक्षा पद्धति सीखने यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता किन्तु इतना निश्चित है कि वह सिकन्दर से मिला अवश्य था स्वयं प्लूटार्क ने चन्द्रगुप्त का सिकन्दर के पास जाना स्वीकारा है। इस संबन्ध में कतिपय विचारधाराओं का उल्लेख करना असंगत न होगा जस्टिन की धारणा है कि किन्हीं कारणों वश अपनी उद्दण्डता के कारण उसने नैड्रम (अलेक्जेण्ड्रम) को कुद्ध कर दिया और उसे मार डालने की आज्ञा दी गयी परन्तु वह अपने प्राण बचाकर भाग निकला। कुछ उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि तक्षशिला -धीश्वर द्वारा प्रकट की गयी कायरता के कारण चन्द्रगुप्त शत्रुओं से बदला लेने की इच्छा से तक्षशिला पहुंचा और अपने को परमुखापेक्षी रूप में स्थित न रख कर क्रुद्ध होकर वहां से चला आया इसी से सिकन्दर भी असन्तुष्ट हुआ और स्वयं चन्द्रगुप्त भी सिकन्दर का पूरा विरोधी बन गया। डा. हरिश्चन्द्र ने चन्द्रगुप्त को पश्चिमोत्तर भारत की एक गणतांत्रिक जाति का जो अश्वक या आश्वकायन से पुकारी जाती थी बताया है साथ ही यह भी सिद्ध किया है कि इसी अश्वक ने जिसका नेता शशिगुप्त था उसने सिकन्दर और इसके दल के विरूद्ध पश्चिम में विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। इसका कोई ऐतिहासिक उल्लेख नहीं है कि नन्दों के ऊपर आक्रमण करने के लिए चन्द्रगुप्त सिकन्दर के पास गया था।

सिकन्दर के आक्रमण के समय पंजाब की स्वतन्त्र गणतान्त्रिक जातियां पर्याप्त शक्तिशाली थी जिनका सामना सिकन्दर को करना पड़ा था। सर्वप्रथम भारतीय हस्तिनायन या यूनानी अस्टानेतोई, जिसकी राजधानी पुष्कलावती बताई गयी है उस प्रदेश के निवासियों का सामना सिकन्दर को करना पड़ा इस प्रदेश के अधिपति ने अन्तिम समय तक यूनानी आक्रमण का सामना किया।

इसी प्रकार "आश्वायन" या "आश्वकायन" जिसे यूनानियों ने "अस्पसाई" या "अस्सादेनाई" कहा है जिनकी राजधानी मशकावती थी वहां के निवासी भी बड़ी वीरता से लड़े ऐसा भी उल्लेख मिलता है अपने राजा की मृत्यु के बाद वीरागंना रानी के नेतृत्व में वहां के निवासी लड़े उन्होंने अपमान की अपेक्षा गौरव के साथ मरना श्रेष्ठ माना ऐसा उल्लेख कर्टियस और डिऔदोरस दोनों ही ने प्रस्तुत किया है।

अभिसार नामक निकटस्थ पर्वतीय जातियों ने भी वीरता पूर्वक सामना किया। इन सभी गणतान्त्रिक जातियों को जीतते हुए तक्षशिलाधीश की सहायता सिकन्दर ने झेलम को पार किया और भारतीय पराक्रम का चरम रूप सिकन्दर को पर्वतेश्वर या पुरू के साथ संघर्ष करने में देखने को मिला। सिकन्दर स्वयं भी आहत हुआ काफी लम्बे भयंकर संघर्ष के उपरान्त दोनों सम्राटों में संधि प्रस्ताव होकर मैत्री स्थापित की गयी। इसी प्रकार मालव क्षुद्रक, कठ, अम्बष्ठ आदि अनेकानेक जातियों ने सिकन्दर का सामना किया।

यूनानी शासन का ध्वंस

इधर चन्द्रगुप्त लगातार विजय अभियान करते करते मगध की और बढ़ने का विचार करता ही कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त अपनी योजनाओं द्वारा यूनानी शासन का पूर्ण ध्वंस करने का प्रयास कर रहे थे साथ देश की स्थितियों से भी उन्हें ऐसी सूचनाएं मिलीं जिससे उन्हें स्पष्ट हो गया कि यूनानी शासन का भविष्य अब अन्धकार की ओर ही बढ़ेगा दूसरी ओर एक भारी सैन्य शक्ति भी इन लोगों ने जुटाली थी। स्वयं सिकन्दर के साथ भी भारतीयों की अपरिमित शक्ति को देख कर पीछे हट रहे थे। एवं भारतीयों द्वारा भी उन्हें मगध की परेशानियों के बारे में बताकर आगे बढने से निरूत्साहित किया जा रहा था। जब सिकन्दर मालवों से युद्ध कर रहा था उसके आहत मात्र होने पर उसकी मृत्यु का समाचार दूर दूर तक फैल गया और सिक़न्दर द्वारा विजित प्रदेशों के यूनानी अधिपति अपने देश की और चल पड़े।

जिन भारतवासियों को सिकन्दर ने अधीनस्थ कर लिया था वे विवशता के कारण अधीनता स्वीकार कर चुके थे किन्तु उनका अन्तर विद्रोह से भरा था जो उपयुक्त अवसर

की खोज में था। अपनी विजयों को स्थायी रूप देने की आकांक्षा से सिकन्दर ने सिन्धु के पूर्व और पश्चिम दोनों भागों में तीन तीन क्षत्रपियों को प्रशासनिक व्यवस्था की दृष्टि से स्थापित किया। पश्चिम के क्षत्रप यूनानी और पूर्व के क्षत्रप भारतीय थे पश्चिमी क्षत्रपों में "पैइथम" को सिन्धु, "निकानोर" को सिन्धु नदी के पश्चिम का भारत, तथा "आविसस्टीज" को काबुल की घाटी का प्रान्त सौंपा।

इसी बीच महत्वपूर्ण घटना यह घटी कि भारत में यूनानी शासकों की प्रबल सत्ता जमते देखकर भारतीयों ने पुनः विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया इन्हीं में आश्वकायनों ने क्षत्रप निकानोर की हत्या कर दी।

निकानोर की हत्या के बाद उसके स्थान पर फिलिप को नियुक्त किया गया जब सिकन्दर हाइडेस्पीज के वापस रास्ते से लौट रहा था तब वह उसे वहां छोड़ने गया वहीं से लौटते समय उसकी भी हत्या कर दी गयी। फिलिप जैसे यूनानी पदाधिकारी की हत्या जो यूनानी शासन का आधार स्तम्भ था यूनानी शासन के लिए गहरा आघात थी। सिकन्दर अब पूर्णतः विवश हो चुका था सिकन्दर जैसे जैसे पीछे हट रहा था यूनानी शासन भी जैव से पीछे हटता प्रतीत हो रहा था अब उसने निकानोर और फिलिप की हत्या के बाद कोई भी यूनानी क्षत्रप उन स्थानों पर नियुक्त नहीं किया वरन् अपने भारतीय मित्रों पुरू और आम्भी पर ही विश्वास किया और उन लोगों से वहां का शासन अपने हाथ में लेने की प्रार्थना की इस प्रकार स्वयं सिकन्दर ने ही भारतीयों के हाथ में सिन्धु नदी और सीमान्त के पार काबुल तक अपनी सत्ता फैलाने की सहायता दी। अब भारत में केवल यूडेमस नाम यूनानी दूत रह गया था जिसे भारतीय राजा की अधीनता में पुष्कलावती की दुर्गरक्षक सेना का भार सौंपा गया तथा यत्र तत्र बिखरी हुई यूनानी और मक्दूनियाई सैनिक टुकड़ियों का सेनापति और प्रवासी यूनानी जातियों का शासक भी बनाया गया।

इन सब परिस्थितियों के बीच दुखद घटना घटी जो कि भारत से यूनानी राज्य का उपसंहार करने वाली थी, कि ३२३ इ. पू. में बेबिलोन में सिकन्दर की मृत्यु हो गयी। इसकी मृत्यु से सारे साम्राज्य में बवण्डर सा उठ खड़ा हुआ उसके साम्राज्य का बंटवारा करने के लिए परस्पर यूनानियों में ही विद्रोह हुआ और चन्द्रगुप्त के लिए यह सुअवसर था। यूनानी इस व्यापक पृष्ठभूमि में स्वतः ही भारत से चले गए हों ऐसा नहीं है वे गए एक व्यापक क्रान्ति के कारण स्वतन्त्रता संग्राम के कारण जिसका कूटनीतिक परिपार्श्व चन्द्रगुप्त चाणक्य द्वारा प्रस्तुत किया गया था, यूनानी क्षत्रपों की जो हत्याएं की गयी इसके पीछे भारतीयों की गहरी कूटनीति थी वे यूनानी शासन के प्रति विद्रोह करने की पूर्वपीठिकाएं थी। ३२५ से ३२३ ई. पू. तक जब तक यूनानी क्षत्रपों की हत्याओं और

सिकन्दर की मृत्यु हुई भारतीय अपनी योजनाओं में अधिक व्यस्त रहे। अब यूनानी सैनिक भी उखड़ चुके थे। इतिहास कारों के विवरण बताते है कि लौटते समय सिकन्दर की सेना की बड़ी दुर्दशा हुयी, भोजन की कमी, पानी आदि के कारण उसकी सेना में भयंकर बीमारी फैली और अधिकांश सैनिक अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए किन्तु भारतीयों को अपने लक्ष्य पूर्ति में पर्याप्त सफलता मिली। इस युगान्तर कारी घटना का विवरण स्वयं जस्टिन ने प्रस्तुत किया है सिकन्दर की मृत्यु के बाद भारत ने अपने गले से दासता का जुआ उतार फैंका और उसके क्षत्रपों को मार डाला इस मुक्ति का एक मात्र सृष्टा सैंड्रोकोट्टस था। वह सैंड्रोकोट्टस निस्संदेह चन्द्रगुप्त ही था। जस्टिन के विस्तृत विवरण भी यह सिद्ध करते है कि चन्द्रगुप्त के ये प्रयास भारतीय सत्ता को पूर्णरूपेण अधिगत करने में सफल रहे इस प्रकार सिकन्दर की भृत्यु ही यूनानी शासन मृत्यु के रूप में सामने आई और ३२३-३२१ ई. पू. चन्द्रगुप्त की सहायता से भारतीयों ने बाध्य संघर्षों पर विजय प्राप्त कर अपनी खोई स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त की।

नन्द वंश का अन्त

बाध्य संघर्षों द्वारा पंजाब के सीमा प्रान्तों को मुक्ति दिलाने के बाद चन्द्रगुप्त को अब दूसरे बड़े प्रयास की तैयारी करनी थी और वह प्रयास था दैव की अश्रुत अप्रतिहत गतियों वाणी चाणक्य की कूटनीति द्वारा मगध में नन्दों के शासन का अन्त। इस तथ्य की प्राप्ति के लिए चन्द्रगुप्त ने जो प्रयास किए थे दुर्भाग्य वश इसका कोई विस्तृत प्रामाणिक विवरण नहीं मिलता किन्तु इस प्रयास को चन्द्रगुप्त द्वारा पूर्ण करने के लिए जो घटनाएं चन्द्रगुप्त के साथ घटित हुई थी वे परम्पराओं और अनुश्रुतियों का रूप ले चुकी थी। चन्द्रगुप्त जब सीमान्त से भारत के अन्त प्रदेश में प्रविष्ट हो रहा था इस समय उसने रणनीति में असावधानी की।

महावंस टीका में एक कथा की और संकेत है जिसके द्वारा स्पष्ट किया गया है कि एक गांव की स्त्री ने (जिसके घर चन्द्रगुप्त के एक गुप्तचर ने शरण ली) रोटी पकाकर अपने बच्चे को दी बच्चे ने रोटी के किनारे छोड़ कर बीच का भाग खा लिया तथा किनारे फेंक कर और रोटी मांगने लगा। प्रत्युत्तर में उस स्त्री ने कहा यह लड़का तो वैसी ही बात कर रहा है जैसी चन्द्रगुप्त ने राज्य पर आक्रमण करने में की है। लड़के ने कहा क्यों मां मैं क्या कर रहा हूं और चन्द्रगुप्त ने क्या किया है? औरत बोली "बच्चे तू रोटी का किनारा छोड़ कर केवल बीच का भाग खा रहा है। ऐसे ही चन्द्रगुप्त ने राजा बनने की महत्वाकाक्षा में सीमान्त प्रदेशों से आरम्भ किए बिना और रास्ते में पड़ने वाले नगरों पर अधिकार किए बिना देश के अन्तराल पर आक्रमण किया है और उसकी सेना को घेर कर नष्ट कर दिया गया। यह उसकी मूर्खता थी।

गुप्तचर के द्वारा इस कथा के माध्यम से अपनी भूल ज्ञात होने पर चन्द्रगुप्त ने दूसरी नीति अपनाई। उसने सीमान्त प्रदेशों से अपनी विजय यात्रा प्रारम्भ करने का दृढ़ निश्चय किया और मार्ग में स्थिति अनेकों जनपदों एवं रट्ठों(राष्ट्रों) पर अधिकार कर लिया किन्तु यहां भी उसने भूल की कि इन अधिकारों को दृढ़ बनाए रखने के लिए अपनी सेनाएं नहीं छोड़ीं।

परिणामतः यह संभावना हो सकती थी कि पराजित हुई ये जातियां स्वतन्त्रता पूर्वक परस्पर मिलकर पुनः चन्द्रगुप्त की योजनाए निष्फल कर देंती अस्तु पुनः चाणक्य की कूटनीतियों के द्वारा उद्बोधित किए जाने पर वह इन विजित प्रदेशों पर अपनी सेनाएं भी स्थापित करता गया। इसके अनन्तर महावंस टीका कहती है कि उसने अपनी विजयी सेना के साथ मगध की सीमा में प्रवेश करके पाटलिपुत्र को परितः घेर कर धननंद को मार डाला।

जैन ग्रन्थ परिशिष्ट पर्वत् भी इसी से मिलती जुलती कथा की और संकेत करता है उसमें बताया गया है कि जिस प्रकार कोई बच्चा थाली के किनारे के शीतल भाग से ग्रास लेने के बजाय लालचवश चीज के गरम भाग में उंगली डाल कर अपनी उगंली जला लेता है उसी प्रकार चाणक्य की भी पराजय हुई क्योंकि उसने शत्रु के सुदृढ़ क्षेत्र पर आक्रमण करने से पहले आसपास के प्रदेश पर अपना अधिकार सुदृढ़ नहीं बनाया था। इस बात से उपदेश लेकर चाणक्य हिमवन्त कूट गया और वहां के राजा पर्वतक से उसने मित्रता की संधि कर ली। फिर उन्होंने प्रान्तों को पराजित करके विजय अभियान प्रारम्भ किया।

आगे भी यही पुस्तक सिद्ध करती है कि चाणक्य ने अपनी कूटनीति द्वारा नगर रक्षकों को धोखा देकर नगर पर विजय प्राप्त कर ली तथा इसके बाद सम्पूर्ण मगध का विध्वंस कर दिया। पाटलिपुत्र को घेर कर उस नन्द को आत्मदान के लिए विवश कर दिया जिसका कोशल, बल, क्षमता, और विक्रम क्षीण पड़ चुका था।

कुछ जन श्रुतियां यह भी सिद्ध करती हैं कि चन्द्रगुप्त ने "आरट्ठों" की सहायता से नन्दों का राज्यहस्तगत कर लिया था। पंजाब और सिन्ध के कुछ विशेष राष्ट्र आरट्ठ कहलाते थे आरट्ठ मैक्किड्रल के अनुमान के अनुसार वे राज्य थे जो बिना राजा के पृथव्ङ् पृथक् विच्छिन्न राज्य थे ये किसी एक संगठित शासन के अधीन न थे।[१]

नन्दों के अन्त के संबन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है नन्दों और चन्द्रगुप्त के मध्य जो संघर्ष हुआ इतिहास कारों का कथन है कि उसका विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं, हां परिशिष्ट पर्वत् में अवश्य उल्लेख है कि नन्द के शासन को समूल नष्ट करने

के लिए जमीन के नीचे छिपा कर रखे गए धन कोषों को सहायता से चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की सेना के लिए सैनिक भरती किए थे।

परिशिष्ट पर्वत् यह सिद्ध करता है कि नन्द को मारा नहीं गया और चाणक्य ने उसे अपनी दो पत्नियों तथा एक पुत्री के साथ एक रथ में पर्याप्त अधिक समान देकर पाटलिपुत्र से बहिर्गमन की अनुमति दे दी।

किन्तु कथासरित्सागर और बृहत्कथा मंजरी यह सिद्ध करती है कि नन्द का मंत्री शक्टार युक्तिपूर्वक अपने घर ले गया और चाणक्य ब्राह्मण मारण विद्या का प्रयोग कर गया। इस भयानक प्रयोग का यह परिणाम हुआ कि चाणक्य का अपमान करने वाला नन्द सातवें दिन मर गया फिर शक्टार ने राजकुमार हिरण्यगुप्त को मार डाला और उसके स्थान पर चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया।

कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया यह सिद्ध करती है कि नन्द के विरूद्ध युद्ध करते समय उन यूनानियों का भी सहयोग लिया जो उनके वेतन पर आश्रित थे। मिलिन्द पण्ह नन्द और चन्द्रगुप्त के मध्य हुए भीषण नर संहार का जो उल्लेख करता है वह बहुत कुछ अतिरंजना मिश्रित प्रतीत होता है।

नन्दों पर विजय करने के उपरान्त भी अंतर्सघर्ष चलता रहा था क्योंकि चाणक्य चन्द्रगुप्त का मार्ग पूर्ण निष्कंटक कर देना चाहता था नन्द सम्राटों का अनुभवी अमात्य राक्षस इस अन्तसंघर्ष को अपने पूर्व सम्राट की प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए, जारी रखना चाहता था। दूरदर्शी चाणक्य की नीतियों के सामने राक्षस की नीतियां असफल होती जा रही थी। राक्षस के वाहीक जातियों के अधिपति के पुत्र मलकेतु तथा अन्य सहयोगियों की सहायता से पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने की चेष्टाएं की उत्तरी पश्चिम प्रदेशों पर वाहीक अधिपति पर्वतक का नेतृत्व था। राक्षस के पर्वतक को सम्पूर्ण मगध का अधिपति बनाने का लोभ देकर उसे अपनी और मिला लिया था। इधर चाणक्य ने भी अपनी गूढ़ प्रणिधि नीतियों के द्वारा अनेक गुप्तचर नियुक्त करके राक्षस की गतिविधियां समाप्त कर दीं थी।

पाटलिपुत्र की कथा यह उल्लेख करती है कि राक्षस का परिवार पाटलिपुत्र में किसी श्रेष्ठी के यहां निवास कर रहा था चाणक्य द्वारा नियुक्त गुप्तचर ने राक्षस की नामांकित मुद्रा उसकी पत्नी के हाथ से गिरने पर चाणक्य को दी थी। नीतियुद्ध में चाणक्य इसी मुद्रा की सहायता से राक्षस को पराजित करने में सफल हुआ था।[१]

इसी मुद्रा के माध्यम से चाणक्य एक कल्पित पत्र मलयकेतु के शिविर में भेजता है जो यह सिद्ध कर देता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त से मिला हुआ है और यह ज्ञात होने

पर मलयकेतु राक्षस की यह फूट चन्द्रगुप्त के लिए सार्थक सिद्ध हुई मलय केतु को विश्वास दिलाए जाने पर भी राक्षस अपने प्रयास में निष्फल हो जाता हे निराश होकर वह अपने श्रेष्ठी मित्र का समाचार लेने आता है यहां भी उसे चाणक्य के गुप्तचरों द्वारा समाचार मिलता है कि उसके प्रिय मित्र को फांसी दी जाने वाली है विवश होकर वह चाणक्य के प्रति आत्मसमर्पण कर देता है और नीति युद्ध में चाणक्य विजयी हो जाता है। मुद्राराक्षस नाटक की समग्र कथा भी यही विचारधारा प्रस्तुत करती है।

इधर कात्यायन के साथ पर्वतेश्वर को मिला हुआ जान कर चाणक्य ने उसका भी अन्त करने का विचार किया, क्योंकि उसके द्वारा चन्द्रगुप्त की हानि की संभावना थी। अनुश्रुति परक उल्लेख यह सिद्ध करते हैं कि चाणक्य ने विषकन्या द्वारा पर्वतेश्वर की भी हत्या करवा दी। इस प्रकार अविराम परिश्रम और अध्यवसाय द्वारा अपने बाहुबल और चाणक्य के बुद्धिवल से चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर बैठा।

सैल्युकस का आक्रमण-उसकी पराजय एवं संधि

एक प्रभावशाली साम्राज्योजित राज्य का संगठन और उसके सुदृढ़ रूप की स्थापना में जिस समय चन्द्रगुप्त व्यस्त था उसी समय सिकन्दर का अन्यतम सेनापति सिल्यूकस मैसिडोनियन साम्राज्य के एशियाई प्रदेशों में अपना शासन सुव्यवस्थित करने में लीन था ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसके सेनापतियों में जो संघर्ष चलता रहा था उस संघर्ष में ३११ ई. पू. तक सिल्यूकस ने बेबिलोन के शासक के रूप में अपनी सत्ता जमा ली थी। ३०४ ई. पू. के लगभग उसने पुनः सिन्धु नदी को पार किया इस आशा से कि वह मैसिडोनिया के दिवंगत स्वामी सिकन्दर की स्मृतियों का मील स्तम्भ स्थापित करके उसके इतिहास की पुनारवृत्ति फिर से कर सकेगा। चन्द्रगुप्त भी नीतिविशारद चाणक्य के साथ सक्रिय और सावधान था। महाबलाधिकृत सिल्यूकस को जिसे यूनानियों ने निक्टार अर्थात् विजयी के रूप में संबोधित कर रखा था इस युद्ध में पराभव पूर्ण संधि करने को प्रस्तुत होना पड़ा। सिन्धु तट पर दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ परिणामतः चन्द्रगुप्त सुदृढ़ संगठन के आगे सिल्यूकस सफल न हो सका। विजयी भारतीय सम्राट के चरणों में सिल्यूकस को अपनी कन्या तथा सिन्धु के पश्चिम से लेकर काबुल तक का सारा प्रदेश समर्पित कर देना पड़ा। युद्ध में की गयी संधि की शर्तो के अनुसार सिल्यूकस ने कंघार, काबुल, हैरात तथा बलूचिस्तान के भाग चन्द्रगुप्त को दिए। इस प्रकार चन्द्रगुप्त ने सम्पूर्ण भारत को अपने अधीनस्थ करके थोड़े ही समय के शासन काल में उसे गौरव के शिखर पर पहुंचा दिया।

इन अन्तसंघर्षों और बाह्य संघर्षों के उपरान्त भी चन्द्रगुप्त की दिग्विजियें लगातार चलती रही थीं किन्तु इन विजयों पूर्ण प्रामाणिक विवरण समुपलब्ध नहीं है। प्लूटार्क

और जस्टिन जैसे इतिहासकार यहां तक सिद्ध करते हैं कि उसने सारी भारत भूमि को रौंद कर उस पर अपना अधिकार कर लिया था किन्तु इसका प्रामाणिक उल्लेख है कि मगध और पंजाब के अतिरिक्त अपने राज्य की सीमा उसने अन्य प्रदेशों पर भी बढ़ा ली थी दक्षिणी और पश्चिमी भारत पर भी उसका व्यापक अधिकार हो चुका था। रूद्रदमन का जूनागढ़ वालशिलालेख यह सिद्ध करता है कि सौराष्ट्र चन्द्रगुप्त के अधीन था। तमिल लेखकों की परम्परा सुदूर दक्षिण पर भी मौर्य आक्रमण का उल्लेख करती है कतिपय जैन अनुश्रुतियां तथा उत्तरकालीन अभिलेख उत्तर मैसूर पर भी चन्द्रगुप्त का अधिकार सिद्ध करते हैं।

इस प्रकार सिद्ध हो जाता है कि उत्तर से लेकर सुदूर दक्षिण तक चन्द्रगुप्त ने एक ऐसा एकराष्ट्र साम्राज्य स्थापित किया जो भारतीय इतिहास के पृष्ठों में अपने अक्षुण्ण महत्व के साथ विद्यमान है। तीव्र संघर्षों के तुमुल कोलाहल से दूर शान्ति , सुरक्षा और संगठन की विरासत के रूप में प्रस्तुत होने वाला सम्पूर्ण मौर्य साम्राज्य अपनी ऐतिहासिक घटनाओं के माध्यम से निस्संदेह श्रेय का अधिकारी बना है।

चन्द्रगुप्त का शासन और उसके उत्तराधिकारी

जिस चाणक्य की कूटनीतियों की सहायता से चन्द्रगुप्त ने विच्छिन्न भारत भू पर अपना अधिकार स्थापित किया था उसी की सहायता से उस साम्राज्य का सुव्यवस्थितरूप से शासन भी कर सका। कौटिल्य अर्थशास्त्र की रचना शासन के आधार बिन्दु के रूप में की गयी। सिल्यूकस के राजदूत मैगस्थनीज ने भारत आने पर वहां की सुसंगठित शासन व्यवस्था देखकर अपनी पुस्तक इण्डिका में उसके शासन का व्यापक विवरण प्रस्तुत किया है। मौर्यों के समय में ही भारत ने राजनीतिक एकता संगठित की थी। मौर्य शासकों ने पहली बार व्यापक रूप से प्रशासकीय व्यवस्था की ओर ध्यान दिया था।

मगध का राज्य नन्दों के समय ही एक बृहद् राज्य के रूप में स्थापित हो चुका था। चक्रवर्ती सम्राट का आदर्श पहली बार स्थापित किया गया एवं कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित चक्रवर्ती क्षेत्र जिसमें उसने बताया है कि हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र पर्यन्त पूर्व पश्चिम दिशाओं में एक हजार योजन तक फैला हुआ और पूर्व पश्चिम की सीमाओं के बीच का भूभाग चक्रवर्ती क्षेत्र कहलाता है, की सार्थकता स्पष्ट हुई।

कौटिल्य ने चन्द्रगुप्त की सहायता से जिस विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, उसके शासन के संबन्ध में भी उसका उद्देश्य था कि शासन सत्ता निरंकुश रहे राजा की शक्ति ही साम्राज्य की सबसे बलवान शक्ति हो जिसके समक्ष किसी को भी सर

उठाने का अवसर न मिल सके किन्तु फिर भी प्रजाओं के लोक कल्याण की ओर भी उसकी दृष्टि रही हैं।

राजा ही साम्राज्य शासन का केन्द्र बिन्दु था। सेना, न्याय आदि सभी कार्यों में उसका ही निर्णय प्रथम व अन्तिम था वह "दण्डघर" कहलाता था। प्रजाओं का सामूहिक रूप से पालन करना ही उसका कर्तव्य था। रात और दिन को दो भागों में विभक्त कर प्रत्येक भाग का आठ आठ उपभागों में बांट कर कौटिल्य के आदेशानुसार चन्द्रगुप्त शासन करता था। राजा के आचरण पर भी कौटिल्य ने बल दिया है राजा होने के कारण यद्यपि चन्द्रगुप्त सम्पूर्ण साम्राज्य का स्वामी था किन्तु उसके अधिकार की सीमाएं सीमित थीं। वह पौर जनपद की राष्ट्र संघटन की शक्ति के अधीनस्थ था और इस दृष्टि से उसकी स्थिति एक राष्ट्र के सेवक से अधिक नहीं थी। हिन्दुओं के "एक राष्ट्र" साम्राज्य का आदर्श जिसका एक मात्र ध्येय प्रजा का हित करना ही होता था उसके राजा की स्थिति की कुछ दूसरी थी।

कौटिल्य ने भी इसका उल्लेख किया है।

आचार्य कौटिल्य के दृष्टिकोंण से राजा स्वेच्छाचारी नहीं था। राज्य परिचालन स्वयं अकेला राजा नहीं करता है वह सहाय साध्य कार्य है। इस व्यवस्था के लिए चन्द्रगुप्त के शासन में मंत्रिपरिषद् की स्थापना का विवरण मिलता है मंत्रिपरिषद् का मुख्युद्देश्य था प्रत्येक राजकीय समस्या पर विचार करना और राज्य की उन्नति के लिए सदैव तत्पर रहना, मंत्री के बिना राजा का कोई अस्तित्व नहीं था स्वयं कौटिल्य ने लिखा है "राजा और मंत्री साम्राज्य रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं जिनके बिना वह राज्य शकट आगे नहीं बढ़ सकता।" मंत्रिपरिषद् में चार सदस्य थे, मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज। राष्ट्र परिषद् के रूप में यह मंत्रिपरिषद् वह राष्ट्र के सारे कार्यों विभिन्न विभागीय अध्यक्षों की रीति नीति निर्धारित करती थी। मंत्रिपरिषद् के साथ साथ अमात्य वर्ग भी था किन्तु मंत्री परिषद् का स्थान अमात्य से ऊंचा था।

सारे शासन का आधार ग्राम्य संघटन था किन्तु शासन की व्यवस्था की दृष्टि से समग्र ..ष्ट्र पौर और जनपद दो भागों में विभक्त था। शासन की सबसे छोटी इकाई जनपद या ग्राम था। ग्राम संबन्धी शासन की देख रेख ग्रामीण ही करता था। एक प्रबन्धक पांच या दस गांवों का अधिपति होता था। पांच या दस गांवों का समूह गोप कहलाता था चार कोषोंका अधिपति या शासक स्थानिक कहलाता था उसके ऊपर नगर शासन का प्रमुख नागरिक होता था और इन सबकी देख रेख के लिए जिस अधिकारी की नियुक्ति होती थी वह समाहर्ता कहलाता था।

शासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण साम्राज्य प्रान्तों में बांटा गया था। राजधानी के निकट के प्रान्त सम्राट की देख रेख में रहते थे दूरस्थ प्रान्तों के शासक "कुमार" या राजकुल के व्यक्ति होते थे। प्रान्तों में गुप्तचर भी फैले रहते थे जो छोटी से छोटी बात की भी सूचना राजधानी को देते थे।

नगर शासन के संबन्ध में कौटिल्य ने व्यवस्थापिका सभा का उल्लेख किया है। उसी को आधार चन्द्रगुप्त के शासन के अन्तर्गत भी ६ समितियों का विवरण मिलता है प्रत्येक समिति का संचालन पांच लोग करते थे एक समिति कारीगरों की देख रेख वाली शिल्प कला समिति थी। दूसरी विदेशियों की देख रेख और उनके आवास आदि की व्यवस्था करती थी। तीसरी जन गणना स्वास्थ्य एवं आय व्यय समिति थी। चौथी व्यवसाय वाणिज्य से संबन्ध रखती थी। पांचवी वस्तुओं का निरीक्षण करती थी, और छठी कर वसूल करने वाली समिति थी। इन समिति के अध्यक्षों को कौटिल्य ने सूत्राध्यक्ष सौवर्णिक, लोहाध्यक्ष, लवणाध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष और शुल्काध्यक्ष आदि नाम दिए हैं।

धर्म और शासन के क्षेत्र में कार्य करने वाले राज्याधिकारियों को तीन भागों में विभाजित किया गया था—

मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज

(२) दौवारिक, (राजा प्रासाद का प्रधान अधिकारी) अन्तर वंशिक, (राजवंश के गृह कार्यों का प्रधान अधिकारी) प्रशास्तृ (कारागार का प्रधान अधिकारी) समाहर्ता (माल विभाग का मंत्री) सन्निधाता (राजकोष का मंत्री) (३) प्रदेष्टा (राजाज्ञाओं का प्रचार करने वाला) नायक (सैनिकों का प्रधान अधिकारी) पौर (राजधानी का प्रधान शासक) व्यवहारिक (न्यायकर्ता) कार्यान्तिक (खानों और कारखानों आदि का प्रधान अधिकारी) सभ्य (मंत्रिपरिषद् का अध्यक्ष) दण्ड पाल (सेना का निर्वाह करने वाला) अन्तपाल (सीमा प्रान्तों का प्रधान अधिकारी) दण्डपाल (सेना का निर्वाह करने वाला अधिकारी) इसके अतिरिक्त विविध विभागों के स्वामी थे जो अध्यक्ष कहलाते थे।

निसृष्टार्थ, परिमितार्थ, शासनहर[१] नामक राजदूत राजा के संदेश लाने और ले जाने के लिए तत्पर रहते थे अमात्य की भांति इन दूतों की योग्यताएं होती थीं। चाणक्य ने अपनी कूटनीति द्वारा गुप्तचर नियुक्त कर के ही मगध राज्य अधिगत किया था अस्तु उसकी दृष्टि राजनीति का सबसे आवश्यक अंग गुप्तचर थे, ये गुप्तचर राजा की सुव्यवस्था शासन का पूर्णतः पालन और प्रजा की सुख सुविधा का दायित्व इन पर निर्भर था। कार्मान्तिक, उदास्थित, गृहपतिक वैदेहिक, तापस, स्त्री, तीक्षण रसद, और भिक्षुकी रूपों

में ये गुप्तचर छोटी से छोटी बात की सूचना देते थे जिसके फलस्वरूप राजा व उसके सभी अधिकारी भी तदनुसार अपनी नीतियां परिवर्तित कर सकते थे।

समाज के सभी वर्गों का यथावत् पालन करने और करवाने के लिए समुचित न्याय की व्यवस्था की गयी थी। व्यवहार और कण्टक शोधन दो भागों न्याय व्यवस्था विभाजित थी। व्यवहार के द्वारा नागरिकों के पारस्परिक झगड़ों की भलीभांति सुनवाई करके तटस्थ रूप से दोषी को दण्ड तथा निर्दोषों को मुक्ति दे दी जाती थी। कण्टक शोधित द्वारा समाज का शोषण दूर करने का प्रयास किया जाता था समाज के कंटकों की मुख्य रूप से तीन श्रेणियां थीं। प्रथम श्रेणी कर्मकोरों की, दूसरी श्रेणी में प्रजा को पीड़ित करने वाले दुष्ट लोग तीसरी श्रेणी अव्यवस्था फैलाने वाले राज्यकर्मचारी थे। इनका शोधन करने का प्रयास पूर्ण शक्ति से किया जाता था। अर्थण्ड शरीर दण्ड और कारागार दण्ड की व्यवस्था थी। अपराधों की सुधार और बंदी गृहों की सुव्यवस्था का भी ध्यान रखा जाता था। दण्ड व्यवस्था की सम्पूर्ण योजना का आधार लोक कल्याण और लोकरक्षा के निमित था।

न्याय के क्षेत्र कानून बनाने वाला राजा ही था किन्तु वह धर्म के विरूद्ध कोई कानून नहीं बना सकता था जिससे उसकी स्वेच्छाचारिता स्पष्ट हो। इसलिए न्याय व्यवस्था का सारा भार राज्य के धर्मशास्त्रविद् तीन सदस्यों और तीन अमात्यों पर निर्भर रहता था। न्याय 'व्यवस्था के अनुसार राज्य के सभी व्यक्ति समान थे, उनकी सुख सुविधा के लिए उनकी प्रत्येक बात सुनी जाती थी और निष्पक्ष न्याय दिया जाता था। समाहर्ता और प्रदेष्टा नामक अधिकारियों के अधीन न्याय के कठोर निरीक्षण की व्यवस्था थी।

सैन्य संगठन राज्य की शक्ति को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए विपुल सेना द्वारा कियां गया था। विशाल सेना के लिए युद्ध एक स्वतन्त्र विभाग के रुप में राज्य का एक अंग था। संपूर्ण सेना की छः समितियां थीं जिसमें से प्रत्येक समिति की देख रेख पांच पांच व्यक्ति करते थे। नौ सेना समिति, सैन्य उपकरण प्रस्तुत करने वाली समिति, पदातिसेना समिति, अश्वसेना समिति, रथसेना समिति, गजसेना समिति के नाम से व्यवहृत हुई थी। व्यूहवद्ध और संगठित होकर यह वाहिनी शत्रुदल के पराभव के लिए तत्पर रहती थी।

समाज वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर विभाजित था कौटिल्य ने वर्णाश्रम व्यवस्था से मर्यादित समाज के सुखकर और मुक्तिदायी बताया है समाज और परिवार की उन्नति को देखते हुए अपने कर्तव्यों का पूर्णतः निर्वाह करता हुआ प्रत्येक व्यक्ति वानप्रस्थ और उसके बाद पवित्र जीवन सन्यास धारण कर सकता था।

मौर्यकालीन समाज में लोग सुखी और समृद्धशाली थे सामाजिक जीवन की समस्त सुख सुविधाएं लोगों को प्राप्त थीं। लोग आमोद प्रमोद मनाने के प्रति अभिरूचि रखते थे। गायन नृत्य और वाद्य संगीत भी समाज में विस्तृत रूप से प्रचलित थे। चौंसठ कलाओं में नृत्य और संगीत का स्थान ऊंचा था।

शिक्षा के क्षेत्र में भी मौर्य युग में अप्रतिम प्रगति हुई तक्षशिला शिक्षा का विश्वविश्रुत केन्द्र था।

वास्तु एवं ललित कलाओं की दृष्टि से भी यह काल उत्कर्ष का काल माना जा सकता है चन्द्रगुप्त द्वारा बसाया गया पाटलिपुत्र उत्कृष्ट वास्तुकला का परिचय देता है। चन्द्रगुप्त परवर्ती शासक अशोक के काल में इसी वास्तुकला का पर्याप्त उत्कर्ष हुआ।

धर्म की दृष्टि से कौटिल्य अर्थशास्त्र में कई देवी देवताओं का उल्लेख आया है जो तत्कालीन धार्मिक व्यवस्था को स्पष्ट करती हैं—अपराजिता, अप्रतिहत, जयंत, वैजयन्त, शिव, वैश्रवण, अश्वि, श्री, मदिरा, अदिति, अनुमति, सरस्वती, सविता, अग्नि, सोमा, कृष्ण और पोलोमी आदि देवी देवताओं का उल्लेख अर्थशास्त्र में आया है।

जादूटोना तंत्र मंत्र आदि उस समय के प्रचलित धर्म के अंग थे। गुप्त मंत्रों के उच्चारण द्वारा तथा जादू टोने द्वारा पाप की शक्तियों को दूर किया जाता था। अपनी प्रजा की सहायता के लिए भी राजा को तन्त्र मंत्र और जादू टोने का प्रयोग करने का अधिकार था।

यज्ञों पर आधारित वैदिक धर्म का प्रचलन भी था, यज्ञशालाओं के प्रबन्ध का भी उल्लेख मिलता है।

आर्थिक जीवन का बहुत बड़ा भाग राजा के नियंत्रण में था देश की कृषि उद्योग तथा व्यापार पर राज्य का नियंत्रण था। देश में कृषि उत्पादन को संगठित करना तथा उसे बढ़ाना राज्य का काम था। आर्थिक दृष्टि से गांव सात भागों में विभाजित कर दिए गए थे। परिहारक, आयुधीय, धान्य प्रतिकर पशु प्रतिकर, हिरण्य प्रतिकर कुप्य प्रतिकार, विष्टि प्रतिकर इन सातों श्रेष्ठियों में विभाजित ग्राम वासी कृषि करते थे और राज्य की आर्थिक स्थिति को समृद्ध बनाने में सहायता देते थे। राज्यश्री आय के साधन दुर्ग राष्ट्र, खान, सेतु, बन, बृज और वाणिज्य प्रमुख थे। मूंगा, मोती, सोना, चांदी, शिलाजीत तांबा, टिन, लोहा, मणि और लवण, आदि आकर उद्योगों का उल्लेख मिलता राज्य के नागरिकों की निजी संपत्ति के रूप में कृषि में सूत, शिल्प, गोपाल, अश्वपालन, हस्तिपालन, सुरा और मांस व वैश्यालय और नटनर्तन गायक वादक आदि थे। विविध करों से

और व्यावसायिक वस्तुओं के आयात निर्यात से जो आमदनी होती थी उसके राजकोष में जमाकर दिया जाता था।

इस प्रकार उपरिलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में देश में सर्वतोमुखी उन्नति व समृद्धि हुई थी जिसका आधार पाकर उसके परवर्ती शासकों ने भी अपने प्रयासों द्वारा इस काल को एक विशेष महत्व प्रदान किया था।

चन्द्रगुप्त के पश्चात २३८ ई. पू. उसका पुत्र बिन्दुसार गद्दी पर बैठा किन्तु उसके शासन काल में अनेक विद्रोह हुए। तक्षशिला के भयंकर विद्रोह को वहां का कुमार सुषीम शान्त न कर सका परिणामतः कुमार अशोक वहां भेजे गए जिन्होंने उस विद्रोह को शान्त कर दिया। सारे देश के ऊपर मुख्य रूप से अशोक की शक्ति का प्राधान्य सा हो गया। बिन्दुसार के काल की राजनीतिक घटनाओं का व्यापक विवरण उपलब्ध नहीं होता सिवाय इसके कि उसके काल में विद्रोहों का ही प्राधान्य रहा था। उसकी विजयों का व उसके द्वारा किए गए राज्य विस्तार का अवश्य उल्लेख मिलता है।

सम्राट अशोक

बिन्दु सार के उपरान्त उसका पुत्र अशोक पाटलिपुत्र सिंहासन पर आसीन हुआ। मौर्य इतिहास अशोक के काल में फिर युगान्तर कारी रूप धारण करता है, किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि इस काल का इतिहास उलझी हुई समस्याओं से परितः आच्छन्न है। काल की कठोर प्रतिध्वनियों ने और धर्म की अप्रतिहत गति ने अशोक के चारों और इतनी कथाओं और गाथाओं का सृजन किया है कि वास्तविकता क्या थी इस संबन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। महावंश, दिव्यावदान, दीपवंस, अशोकावदान आदि कृतियों में अशोक संबन्धी ऐसी कथाएं आई हैं जिनके कारण अशोक का वृत्त पृथक् पृथक विचारधाराएं होने के कारण सुलझने के अतिरिक्त उलझा है। किन्तु ऐतिहासिक स्रोत के रूप में स्वयं अशोक के द्वारा उत्कीर्ण कराए गए शिलालेख प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत कर सके हों।

अशोक अपने प्रारम्भिक जीवन में बड़ा क्रूर और अत्याचारी था इसी से प्रजाओं "चण्डाशोक" और "कालाशोक" के नाम से विख्यात था। महावंस दीपवंस अशोकावदान तथा दिव्यावदान सभी इस तथ्य को मानते हैं कि अशोक बिन्दुसार का पुत्र और चन्द्रगुप्त का पौत्र था पुराण भी इसी बात का उल्लेख करते हैं। अशोक की माता का नाम कुछ ग्रन्थ जैसे महावंस टीका धर्मां बतलाती है तथा दिव्यावदान अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी बतलाता है, किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण सुमद्रांगी के पक्ष में अधिक हैं।

महावंश और दीपवंश उल्लेख करते हैं कि बिन्दुसार के १०१ पुत्र और १६ रानियां थीं किन्तु प्रमाणों के अभाव में इनकी तालिका नहीं प्रस्तुत की जा सकती। सिंहली गाथाओं में बिन्दुसार के तीन पुत्रों का उल्लेख आता है सुमन (बड़ा भाई) अशोक तथातिष्य, किन्तु सभी ग्रन्थ और अनुश्रुतियों इन नामों के विषय में एकमत नहीं है सुमन का नाम सुसीम भी मिलता है तथा तिष्य का वीताशोक।

अशोक का प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त क्रूरतापूर्ण था इस विषय में सभी गाथाएं प्रायः एकमत हैं। दिव्यावदान की कथा उल्लेख करती है चंपा नगरी के एक ब्राहण की कन्या ने नाई धर्म में संलग्न होकर उपाय द्वारा राजा की अर्धांगी बनने के प्रयास में सफलता पाई थी। क्योंकि उसे ज्योतिषियों द्वारा यह बताया गया था कि उसका पुत्र राजा होगा। उसी का पुत्र विगतशोक या वीताशोक भी था। अशोक प्रारम्भ से ही दुःस्पर्श मात्र था और बिन्दुसार को अप्रिय था।

दिव्यावदान की कथा ही यह भी स्पष्ट करती है कि बिन्दुसार ने पिंगल वत्साजीव नामक परिव्राजक को आमंत्रित करके कुमारों की परीक्षा लेने के लिए कहा था कि मेरे बाद राज्य करने में कौन समर्थ होगा? कुमारों को लेकर पिंगल वत्साजीव सुवर्ण मण्डल उद्यान में निकल कर परीक्षा के लिए जाते हैं। अशोक भी माता के आग्रह से गए। अशोक राजा के महान हाथी पर आरूढ़ हो सुवर्ण मण्डल उद्यान पहुंचे कर कुमारों के बीच पृथ्वी पर बैठ जाते हैं कुमारों के लिए आहार आने के समय मिट्टी के पात्र में अशोक के लिए आहार भेजा गया। इसी बीज राजा पिंगल वत्साजीव से पूछता है वह चिन्तन करता है कि अशोक राजा होगा किन्तु यह राजा का अप्रिय है यदि यह कह दूंगा कि अशोक राजा होगा तो फिर में जीवित नहीं रह सकता। वह रहस्यात्मक ढंग से बता देता है कि जिसका यान शोभाशाली वह राजा होगा। इस प्रकार प्रत्येक कुमार मन में विचार करने लगे कि मैं राजा होऊगां। स्पष्ट हो जाता है कि अशोक प्रारम्भ से ही सर्वगुण सम्पन्न था।

राजा बिन्दुसार के समय में ही तक्षशिला में विद्रोह प्रारम्भ हो गया। बिन्दुसार ने अशोक को विद्रोह शांत करने के लिए भेजा चतुंरगिणी सेना लेकर अशोक तक्षशिला पहुंचे सुन कर ही तक्षशिला वासी कुमार के स्वागत के लिए प्रस्तुत हो गए और कहा कि हम न कुमार के विरूद्ध हैं और न ही बिन्दुसार के इस प्रकार अशोक के प्रभाव से बिना युद्ध किए हुए ही विद्रोह शान्त हो गया।

दिव्यावदान की कथा यह भी बताती है बिन्दुसार का अन्य पुत्र सुसीम ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण सिंहासन का वास्तविक अधिकारी था किन्तु उसका स्वभाव अच्छा नहीं था एक बार उसके अग्रमात्य के ऊपर खेल में खटका गिरा कर अप्रसन्न कर दिया

अमात्य ने विचार किया कि जब यह इस समय ही लटका गिराता है जब राजा होगा तब शस्त्र फेंकेगा इस लिए वैसा करूंगा जिससे राजा ही न बन सकेगा। उसके द्वारा ५०० मंत्रियों को सुसीम के विरूद्ध भड़का दिया गया। एक अन्य बार जब सुसीम तक्षशिला का विद्रोह शान्त करने के लिए भेजा गया वह चतुरंगिणी सेना का बल प्रयोग करके भी विद्रोह शान्त कर सका बिन्दुसार के हृदय में ग्लानि उत्पन्न हुई उसने मंत्रियों को आदेश दिया कुमार सुसीम को राज्य में रखूंगा और अशोक को तक्षशिला में भेज दो।

दिव्यावदान की कथा यह भी उल्लेख करती है कि जब बिन्दुसार के प्राण स्वल्पावशेष रह गए थे तभी अमात्यों ने कुमार अशोक को सभी अलंकारों से आभूषित करके राजा बिन्दुसार के पास लाए और कहा कि तब तक राज्य पर इसको अधिष्ठित कर दें, जब कुमार सुसीम आएंगे, तब उन्हें अधिष्ठित कर देंगे। तब राजा कुद्ध हो गया किन्तु कुमार अशोक को अमात्यों के द्वारा राजा बना दिया गया। यह देखकर राजा बिन्दुसार की मृत्यु हो गयी। अशोक के राध गुप्त को अग्रामात्य बनाया। जब सुसीम ने सुना कि बिन्दुसार मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं तथा अशोक राज्य में प्रतिष्ठित हो गया है, वह अत्यन्त क्रोध पूर्वक अधिशीर्घ वहा आया अशोक ने उसके अपने मंत्रियों के साथ षड़यंत्र करके मरवा डाला।

महावंश कहता है कि बिन्दुसार के मरने पर नगर को अपने अधीन कर बड़े भाई को मरवा श्रेष्ठनगर का राज्य अपने हाथ में लिया।

यहीं महावंश यह भी बताता है कि बिन्दुसार के एक सौ एक पुत्र थे उनमें सबसे अधिक पुण्यतेज और बल ज्ञान वाले अशोक थे। उन्होंने अपने निन्यानवे भाइयों को मारकर सकल जम्बूदीप का एक छत्र राज्य प्राप्त किया।

इतना तो अवश्य तो है कि अशोक की प्रतिमा सम्पन्नता को देखकर अमात्य मण्डल का सहयोग उन्हें प्राप्त था और उन्हीं की सर्वसम्मत विचार धाराओं के अनुसार नीति पूर्वक पाटिलपुत्र का शासक अशोक को दिया गया। किन्तु जिस स्वभाव के कारण अशोक चण्डाशोक, या कालाशोक के नाम से प्रासिद्ध हुआ, उस बुरे स्वभाव से उसने अमात्यों के साथ भी बुरा व्यवहार प्रारम्भ किया। ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है उसने एक बार अमात्यों से कहा कि फूलों फलों के वृक्षों को काट कर कांटों के वृक्ष लगाओं उनके द्वारा जब तीन बार आज्ञा प्रतिकूल की गयी तब उसने क्रोध पूर्वक पांच सौ अमात्यों का सिर काट दिया।

इसी प्रकार पूर्वनगर के उद्यान में कभी परिभ्रमण करते हुए पुष्पित अशोक वृक्ष को देखकर, नाम साम्य के कारण उसके प्रति अनुनय उत्पन्न की। अशोक दुस्पर्श गात्र था युवतियां उसे छूना नहीं चाहती थी एक बार जब राजा अशोक सोया उसके अन्त: परु की स्त्रियां ने क्रोध से उस अशोक वृक्ष से फूल और शाखाएं तोड़ दी जब राजा जगा और उसने अशोक वृक्ष देखा पूंछे जाने पर ज्ञात होने पर पांच सौ स्त्रियों को जीते जी जलवा डाला। इन्हीं अशोभन कार्यों से प्रचण्ड क्रूर राजा चण्डाशोक कहलाया।

उसके ऐसे कार्यों को देखकर अग्रामात्य राधगुप्त ने प्रार्थना की कि देव। स्वयं ही ऐसे क्रूर कर्मों को न करके वधघातक पुरुष को नियुक्त करे- जो देव के वध करने योग्य लोगों को खोजा करेंगें- राजाज्ञा मिलने पर वहीं पास में स्थित जुलाहे के पुत्र चण्ड गिरि जो कि पाप कर्मों में प्रवृत्त था उससे राजा के बध्य घातक स्थान पर नियुक्त होने के लिए वह स्वयं भी इतना प्रचण्ड था कि माता पिता में अशोक के वध्यघातक बनने की आज्ञा लेने और उनके द्वारा निषेध किए जाने पर उनको जीवित ही मार कर आ गया।वह चण्डगिरि सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का वध करने में समर्थ था।

चीनी यात्री फाह्यान का विवरण बताता है कि अशोक ने एक नरक का निर्माण करवाया था बाहर से आकर्षक बनवाकर लोगों के आकर्षित होकर आने पर उन्हें यातनाएं दी जाती थी।

कुछ दिन बाद एक भिक्षु भिक्षा मांगता हुआ उधर से निकला और द्वार के भीतर चला गया नरक के गणों ने उसे पकड़ लिया और यंत्रणा देने चले। उसने व उनसे थोड़ा अवकाश मांगा कि भोजन कर लें क्योंकि मध्यान्ह का समय था। इसी बीच एक और व्यक्ति उधर आ निकला, यम के गणों ने उसे कोल्हू में पीस दिया जिससे रुधिर का लाल झाग बहने लगा देखते देखते भिक्षु को एकाएक बोध हुआ कि शरीर कितना नश्वर है जीवन झाग के बुलबुले जैसा कैसा असार और उसे अर्हत् का पद प्राप्त हो गया। सभी नरक के गणों ने उसे पकड़ कर खौलते कड़ाह में फैंक दिया किन्तु भिक्षु के चेहरे पर अखण्ड सन्तोष का भाव बना रहा, आग बुझ गयी कड़ाह ठण्डा हो गया, उसके बीचों बीच एक कमल निकल आया जिस पर भिक्षु पद्मासनासीन था। जब राजा को यह समाचार बताया और गणों ने उससे चलकर यह चमत्कार देखने को कहा प्रारम्भ में उसने मना किया क्योंकि उसकी आज्ञा थी कि यदि वह भी जाए तो उसे भी वैसे ही दण्डित किया जाये किन्तु गणों ने शासन बदलने की बात कहकर उस वहां ले जाने में सफलता पाई उसी भिक्षु ने राजा को धर्मोपदेश दिया जिससे राजा को मुक्ति मिली उसने नरक तुड़वा दिया और अपने पाप का प्रायश्चित किया।

ह्वेनसांग जो कि हर्ष के समय आया था उसने भी अशोक के प्रारम्भिक काल में उसके द्वारा किए प्रचण्ड कार्यों की क्रूरता का उल्लेख किया है आरम्भ में जब राजसिंहासन सत्तारूढ़ हुआ तब उसने बड़ी क्रूरता बरती थी, उसने प्राणियों को यातना देने के लिए एक नरक रचाया था।

राज्यारोहण

अशोक के प्रारम्भिक जीवन की भांति उसके राज्यारोहण का भी प्रश्न समस्याओं में उलझा हुआ है, गाथाएं ऐसा उल्लेख प्रस्तुत करती हैं कि अशोक का अभिषेक राज्यारोहण के चार वर्ष बाद हुआ। जैसा कि महावंश की विचारधारा के अनुसार पहले भी कहा जा चुका है कि बिन्दुसार की मृत्यु के उपरान्त अशोक अपने १०० भाइयों को मारकर सारे जम्बूद्वीप का अधिपति बना था। किन्तु महावंश टीका के अनुसार बिन्दुसार की मृत्यु के समय अशोक उज्जयिनी का शासक था, पिता की मृत्यु शैया पर पड़े होने का समाचार जानकर वह तुरन्त पाटलिपुत्र पहुंचा और पिता की मृत्यु होते ही उसने ज्येष्ठ पुत्र सुमन को मारकर राज्य पर अधिकार कर लिया।

दिव्यावदान की कथा का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है कि जब अशोक का बड़ा भाई सुमन तक्षशिला विद्रोह शान्त करने के लिए भेजा गया था उसी समय बिन्दुसार की मृत्यु होने पर अशोक ने अग्रामात्य की सहायता से सिंहासन प्राप्त कर लिया था उस सुमन के पाटलिपुत्र लौटने में अंगारों के खड्डु में गिराकर उसकी हत्या कर दी।

महाबोधिवंश के अनुसार अशोक के अनायास ही सिहासन पर अधिकार कर लेने के पश्चात उसके ९८ भाईयों ने सुमन की अध्क्षता में पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया। युद्ध में सुमन तथा अन्य समस्त भाई मार डालें, या और अशोक का सिंहासन पर अधिकार स्थापित हो गया।

इस समस्या के अन्तर्गत दो बातें आती हैं। एक तो यह कि सिहांसन प्राप्ति के लिए अशोक का संघर्ष केवल ज्येष्ठ पुत्र के साथ हुआ और दूसरी यह की वह अपने १०० या, ९८, भाइयों को मार कर सिंहासन पर बैठा।

कुछ विद्वान इस बात को नहीं मानते कि प्रारम्भ में उसके भाइयों के साथ उसका संघर्ष भी हुआ था, उनका यह विचार है कि बौद्ध धर्मावलम्बियों ने जो उसे 'चण्डाशोक' और 'कलाशोक' की उपाधियां दी उसके मूल में धर्म प्रचार की भावना थी कि उसी धर्म का अनुसरणकर अशोक 'धर्माशोक' बना। फिर प्रश्न उलझ जाता है एक अशोक के शिलालेख जिनमें केवल कंलिग विजय के भीषण रक्तपात को छोड़ कर अन्य किसी

अभिलेख में उसके द्वारा प्राण हिंसा का उल्लेख नहीं मिलता। पांचवे अभिलेख में उसका अपने भाई बहनों के साथ द्रयवहार का भी उल्लेख आता है प्रश्न उठता है कि यदि अशोक ने पहले ही अपने भाइयों का वध कर दिया था तो फिर यहां पर यह उल्लेख क्यों आया- पांचवे शिलालेख में स्पष्ट उल्लेख है- ये धर्म महापात्र यहां तथा बाह्य दूरस्थ नगरों में मेरे भाइयों और बहिनों के अन्त पुर और मेरे अन्य सम्बन्धियों के यहां सर्वत्र नियुक्ति है। प्रस्तुत अभिलेख अशोक के शासन काल में अशोक के भाइयों के जीवित होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है, अन्य शिलालेख भी मानवीय भावनाओं से ओत प्रोत हैं- इस संबन्ध मे यह भी बात उठाई जा सकती है कि ये अभिलेख मुख्यरूप से उसने बौद्ध धर्म में दीक्षित उपारान्त उत्कीर्ण करवाए परन्तु प्रश्न उठता है कि प्रारम्भ का चण्ड अशोक अपनी वृत्तियों की इतनी शीध्रता पूर्वक कैसे बदल सकता? एक यह भी समस्या है कि अशोक कई भाइयों और कई माताओं के होने का उल्लेख अवश्य है किन्तु उसका निश्चिन्त रुप प्रामाणिक रुप अनुपलब्ध हो जाने के कारण स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता कि वह सभी भाइयों के साथ अच्छा व्यवहार करता था। क्योंकि अभिलेख में भाइयों शब्द प्रयुक्ता हुआ है कितने? और कौन? ऐसा कोई विवरण नहीं। दूसरी और इन अभिलेखों की आधार पर उन विविध कठोर गाथाओं की पूर्ण अवहेलना की जाय ऐसार्णगत नहीं प्रतीत होता। कुछ बाते निश्चित रुप से मानी जा सकती हैं। (१) अशोक ने सिंहासन प्राप्त करने की सम्पूर्ण पंडयंत्र पूर्ण चेष्टा की थी, अमात्य मण्डल के सहयोग से उसे सफलता भी मिली।

(२) उत्तराधिकार के लिए युद्व मुख्यत ज्येष्ठ भ्राता सुमन या सुसीम के साथ हुआ था और वासियों ने भी भी उसका समर्थन किया था।

(३) सिहांसन प्राप्ति के उपरान्त भी विद्रोह चलते रहे थे। उनका अपने क्रूरतापूर्वक दमन किया इसी से क्रूरकर्मों के कारण उसे चण्डाशोक या कालाशोक की उपाधियां दी गयी।

अभिषेक

पुराणों की तिथियों के अनुसार अशोक के द्वारा सिंहांसन अधिगत करने की तिथि २७४ ई. पू. के लगभग तथा अभिषेक की तिथि २७० ई. पू. के लगभग है अशोक के शिलालेख में उत्कीर्ण तिथियों और इन तिथियों में कोई अन्तर नहीं आता। उस बात को प्राय सभी इतिहासकार एकमत से स्वीकारते है कि अशोक के सिहांसनरोहण की तिथि २७४-२७३ ई.पू. तथा अभिषेक की तिथियां राज्यारोहण के चार वर्षो बाद २७०-२६९ ई. पू. ठहरती है।

अशोक कलिंग विजय के बाद ही धर्म की ओर प्रवृत हुआ हो ऐसा नहीं है कलिंग, विजय के पूर्व ही ई. पू. २६६ से ही बौद्ध धर्म से उसका सम्पर्क होना प्रारम्भ हो गया था। ई.पू. २६६ में समग्र जम्बू द्वीप मे चौरासी सहस्र बिहार बनवाए तथा उसी समय बौद्ध संगीति का आयोजन किया। ई. पू. २६६ में ही धर्माशोक की उपाधि धारण की ई. पू. २६४ में उसने प्रियदर्शी की उपाधिकारण की किन्तु बौद्ध धर्म में विधिवत् दीक्षा कलिंग विजय के उपारन्त २५९ ई , पू. में ग्रहण की। अशोक के धर्माशोक की उपाधि का उल्लेख दिव्यावदान भी करता हैं। [२]

कलिंग विजय

अपने राज्यारोहण के आठवें वर्ष अशोक पर आक्रमण किया अशोक के जीवन काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना कलिंग विजय है अशोक के जीवन को पूर्णतया परिवर्तित कर देने का श्रेय कलिंग युद्ध को ही है राज्यारोहण के आठवें वर्ष कलिंग आक्रमण की तिथि २६२ ई. पू. ठहरती है इस युद्ध के कारण क्या थे? इनका कोई उल्लेख अशोक के शिलालेखों मे नहीं है। किन्तु व्यापक दृष्टिकोण के से अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि मगध साम्राज्य के अधीनस्थ प्रदेशों के मध्यस्थित कलिंग मगध सवाधिक शक्तिशाली राज्य था चन्द्रगुप्त के समय से ही इसकी शक्ति अत्याधिक बढ़ गयी थी कलिंग मगध का एक विद्रोही प्रान्त था उस पर अधिकार करना मौर्य सम्राटों के लिए आवश्यक था इसकी बढ़ती हुई शक्ति से यह भी भय था कि कही कंलिग राज कूट मन्त्रणा द्वारा मौर्य साम्राजय विरुद्ध विद्रोह न खड़ा कर दे- कलिंग नरेश ने भी मगध की नहीं स्वीकारी थी इन्ही कारणों से अभिप्रेरित हो कर अशोक ने कलिंग विजय के लिए प्रस्थान किया इस युद्ध में भीषण नरसंहार हुआ. तीन वर्ष तक लगातार युद्ध चलता रहा लाखों लोग इस भीषण रौरव के परिणाम आहत हुए और मारे गए स्वयं अशोक का तेरहवां अभिलेख बताता है कि डेढ़ लाख मनुष्य बाहर ले जाए गए, एक लाख आहत हुए उससे भी कई गुने अधिक मरे परिणाम मे जय श्री अशोक को मिली किन्तु उसकी अन्तरात्मा पर इसका व्यापी प्रभाव पड़ा। तैरहवे शिलालेख में उसका स्पष्ट उल्लेख है साथ ही उसने युद्ध भेरी को घर्मघौष में परिणति करने की आज्ञाएं भी दी। उसकी अन्तरात्मा पर विजय ही वास्तविक विजय थी– अष्ट वर्षा भिषिक्त देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने कलिंग विजय किया वहां से डेढ़ लाख मनुष्यों का अपहरण हुआ वहां सौ सहरस्त्र मारे गए– उससे भी अधिक मरे। उस समय कलिंग प्राप्त होने पर तीव्र घर्मोपाय- धर्मकामना तथा धर्मानुशिष्टि हुई– इस पर कलिंगों पर विजय करने वाले देवताओं के प्रिय को अत्यन्त पश्चाताप हो रहा है– क्योंकि अविजित पर विजय होने का लोगों की हत्या अथवा मृत्यु अवश्य होती है- कितने जनों का अपहरण होता है।

जिसने मनुष्य कलिंग देश के प्राप्त करने में मारे गए हैं और अपहरण किए गए है उनका सौवा अथवा हजारवां भाग भी देवातओं के प्रिय को दुख का कारण होगा।

इसी शिलालेख में उसने यह भी उत्कीर्ण कराया कि देवताओं के प्रिय कजै खेज के अनुसार धर्मविजय ही वास्तविक विजय हैं।

इस कलिंग विजय ने अशोक के नरसंहारी दृष्टिकोण को पूर्णत बदल दिया। भीषण कलिंग युद्ध उसके लिए एक युगान्तकारी घटना था किन्तु इसी घटना द्वारा पर्याप्त हृदय मन्थन से उसका जो प्रियदर्शी या 'धर्माशोक' रुप कर्तव्य रुप में परिणित होकर आया वह निस्संदेह इतिहास की अविस्मरणीय घटना है। ' इस पश्चाताप के परिणामस्वरुप अशोक ने युद्ध द्वारा विजय न प्राप्त करने का निश्चय कर लिया-, अब सम्राट के हाथों में तलवार के स्थान पर प्रेम तथा करुणा की अमृतमयी मंजूषा थी जिसे पिला कर सम्पूर्ण संसार को निरापद संयमी शान्त और प्रसन्न बनाने के लिए आतुर हो उठा था। अपनी इस मंगल मयी भावना को अशोक धर्म विजय कहता है।

बौद्ध धर्म में दीक्षा

कलिंग विजय के उपरान्त ही अशोक के बौद्ध धर्मानुयायी हो जाने पर वह महान् तथा विश्व की अमर विभूति बना। कलिंग युद्ध के बाद ही उसके हृदय में धार्मिक पवित्रता और शान्ति के लिए उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई थी। इसी समय उन्होंने संघयात्रा की २५९ ई. पू. में श्रामणेरन्यग्रोथ भिक्षु से उपास गत्व की दीक्षा ली। धर्म और शील में प्रतिष्ठित होने का उल्लेख अशोक ने अपने छठे शिलालेख में किया है– इसके बाद अशोक नियमित रूप से संघ का उपासक हो गया। कुछ शिलालेख जैसे मैसूर के लघु शिलालेख) बताते हैं कि पहले अशोक बौद्ध धर्म का साधारण उपासक था, बाद में नियमित रुप से संघ में जाने वाला उपासक हो गया– और इससे भी आगे(जब अशोक के धर्म विकास की अन्तिम व्यवस्था वह है जबकि वह 'भिक्खुगतिक' हो जाता है अर्थात् ""स्वयं भिक्षु तो नहीं होता वरन् उसकी गति भिक्षुओं की सी हो जाती है। अनासक्तभाव से राज्य करता हुआ वह कभी कभी सत्संग पाने के बिहार में जाकर भिक्षुओं के साथ रहने लगता है।

बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के उपरान्त भी उसने सभी धर्मों को प्रश्रय दिया। दूसरे और तेरहवें शिलालेख इसका स्पष्ट उल्लेख करते है कि उसके शासन में अन्य धर्ममतानुयायी भी थे और उन्हे अपना घर्मपालन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। शिलालेख ९ और ११ बताते है कि सच्चा अनुष्ठान धार्मिक अनुष्ठान है, सच्ची यात्रा में धर्म यात्रा है, सच्चा सदाचार धर्म मंगल है। धर्म को व्यापक रुप देते हुए उसने

धर्मयात्राएं प्रारम्भ करवा है। वस्तुत मानवता का दुन्दुभि नाद करते हुए अशोक ने जो तत्व जीवन में देखा है उसी का राजनैतिक जीवन मे अभ्यास किया है– उसी को अपनी प्रजाओं को सिखाया है– उसी वर्ग लेखों में अंकित करवाया है यह वही तत्व है जिसे स्थविर न्यग्रोध ने उसे प्रथम बार सिखाया तथागत मे जिसे अन्तिम बार दुहराया, अशोक ने जिसे जीवन भर निभाया, कल्याण कारी कारोयं में अप्रमाण अनवरत और जनासक्त कर्मयोग का अभ्यास। यही तथागत का वीर्यारम्भ है अशोक के लेखवद्ध शब्दो में यही उस्टाम (उत्थान) है यही पक्कम या परक्मव (पराक्रम) है जिसे सिखाते हुए पियदसी थम्पराजा कभी थकता नहीं।

अशोक मौर्य युग का अकेला सम्राट रहा जिसे उसके कार्यो के कारण एच.जी. वेल्स जैसे विद्वानों ने महान सम्राट की उपाधि दी वास्तव सम्राटों की परम्परा में आने वाला वही प्रथम भारतीय सम्राट था जिसने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को प्रसारित किया, और उसके अनुरुप कार्य भी करने का प्रयास किया– 'नास्ति हि कम्भवमतरं सर्वलोक हितत्या' (गिरनार शिला अभिलेख) की भावना से अभिप्रेरित हो कर लोक हित की सर्वतोमुखी भावान वृद्धि की– बौद्व धर्म देश के अतिरक्ति विदेश में भी प्रचार किया।

अशोक के उत्तराधिकारी

अशोक के उपरान्त मौर्य साम्राज्य की शक्ति दिनानुदिन क्षीण होती गयी– परिणामतः पराक्रमी चन्द्रगुप्त द्वारा स्थगित मौर्य साम्राज्य शीध्रमेव ध्व्मृत हो गया। विभिन्न श्रोतों से उसके पांचपुत्रों का उल्लेख मिलता है– कुणाल, तीवर, महेन्द्र, कुस्तत और जातीक अशोक के उपरान्त कौन सिंहासनरुढ़ हुआ इस प्रश्न पर अनुभूतियों में अन्तर है- दिव्यावदान के अनुसार अशोक के उपरान्त कुणाल का पुत्र-संप्रति गद्दी पर बैठा। वायु पुराण बताता है कि कुणाल ने आठ वर्षो तक शासन किया। दिव्यावदान की लम्बी गाथा उल्लेख करती है कि तक्षशिला में विद्रोह शासन के समय जाने पर कुणाल की विमाता तिव्यरक्षिता ने वैर के कारण उसकी आंखे निकलवा कर अंधा कर दिया था। दक्षिणी परम्पराओं में इसी कारण से उसके राजा - न होने का उल्लेख मिलता है। कुमार महेन्द्र अपने पिता के समय ही बौद्व भिक्षु हो गया था। वायु पुराण जिन नौ मौर्य सम्राटों का उल्लेख करता है– उनमें से कुछ के नाम ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विवरण के रुप में नहीं मिलते। कुणाल के बाद वायु पुराण में क्रमेंण- बंधुपालित। इन्द्रपालित, देववर्मा, शतँचर और बृहद्रथ नाम मिलते हैं। इनमें कुणाल और बृहद्रथ के उल्लेखों के विपय में सभी इतिहास कार एक मत है कुछ विचार धाराओं के अनुसार सम्प्रति के पूर्व अशोक का एक अन्य पौत्र दशरथ राजसिंहासन पर बैठा। इतना तो निश्चित है कि दशरथ और संप्रति दोनो को अशोक के उपरान्त राज्य करना पड़ा

था किन्तु इन सभी के शासन कालों में कोई उल्लेखनीय घटना का विवरण नहीं मिलता मौर्य युग की अन्तिम और प्रभाव पूर्ण घटना जो कि मौर्य साम्राज्य का अन्त करने वाली थी वह थी मौर्य वंश के अन्तिम सम्राट बृहद्रथ की सेनापति पुष्यमित्र के द्वारा की गयी हत्या इसका उल्लेख वायुपुराण विष्णु पुराण, हर्षचरित दिव्यावदानम् सभी प्रस्तुत करते हैं- वायुपुराण और विष्णु पुराण बताते हैं कि सेनापति पुष्यमित्र अन्तिमराजा बृहद्रथ को मार कर राज्य करेगा। हर्षचरित में उल्लेख है कि प्रतिज्ञा दुर्बल राजा बृहद्रथ जिस समय अवशेष सेना का निरीक्षण कर रहा था उस समय सेनापती पुष्यमित्र ने उसे मार डाला। दिव्यावदान भी ऐसी ही कथा का उल्लेख करता है कि जब पुष्य मित्र ने राजा का वध कर दिया तब मौर्य वंश समुच्छिन्न् हो गया।

निश्चित हो जाता है कि मौर्य वंशीय महिमा मयी परम्परा अन्तिम राजा बृहद्रथ के काल में जाकर १८५-८५ ई. पू. समाप्त हो गई। बृहद्रथ के समय तक आते आते मौर्य साम्राज्य के अनेक प्रान्त स्वतन्त्र हो चुके थे- कलिंग पराभव के कारण छाए विद्वेष जब से पूर्व में कलिंग राज खारवेल प्रतिशोध लेने को तत्पर था- उत्तर पश्चिम से मौर्यो का प्रताप सूर्य अस्त हो ही चुका था- पंजाब पर भी विदेशी आक्रमण होने प्रारम्भ हो गए थे मौर्य वंश में भी आन्तरिक संघर्ष पर्याप्त व्यापक रूप से चल रहा था। उसी समय ब्राहाण सेनापति पुष्यमित्र ने १८४ ई. पू. उसे बाण से मार डाला और मौर्य वंश का अन्तिम चिन्ह भी काल के गर्त में विलीन हो गया।

ऐतिहासिक नाटक के स्वरूप की मीमांसा

इतिहास का स्वरूप

सुसंस्कृत जीवन के विकास की सुदीर्घ प्रक्रिया में मानव ने अपने प्रयासों का जो क्रमिक ख्यातवृत्त प्रस्तुत किया उसे इतिहास के नाम से अभिहित किया गया है। इतिहास का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है (इति-ऐसा-ह-निश्चयेन-आस-था) ऐसा निश्चय पूर्वक था। इस अर्थ के आधार पर यह स्पष्ट है कि जो आज हमारे समक्ष लिपिबद्ध रूप में या अन्य उपकरणों जैसे शिलालेख आदि के रूप में प्रस्तुत है वैसा अतीत में निश्चय रूप से था। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में कथायुक्त पूर्ववृत को इतिहास की संज्ञा दी गयी है। किन्तु केवल यही कह देने मात्र से इतिहास के व्यापक दृष्टिकोंण की समुचित व्याख्या नहीं हो पाती। इतिहास का व्यापक दृष्टिकोण मुख्यरूप से अन्वेषणात्मक दृष्टि से अयुतसिद्ध रूप से संबद्ध रहता है और अन्वेषण से संबन्धित होने पर वह वैज्ञानिक प्रक्रिया से संबद्ध हो जाता है। इतिहास को मात्र व्यक्तिपरक्ता से संबद्ध रखने वाली प्रणाली प्राचीन प्रणाली थी जिसका संबन्ध हमारे इतिहास का प्रारम्भ करने वाले पुराणों रामायण महाभारत आदि से था। इन ग्रन्थों में केवल यशस्वी व्यक्तियों का ही वर्णन होता था, जिसमें नरावतारी पुरूषों ने मात्र जययात्रा के पथ पर प्रयाण किया था। हमारे ज्ञान के प्रामाणिक श्रोत वेद भी ऐसे ही इतिहास का उल्लेख करते हैं जिसमें मुख्यरूप से पुराणों की गाथाओं का उल्लेख हुआ हो।इसी प्रकार के अन्य उल्लेख सायण के तैत्तिरीयारण्यक और ऋग्वेदादि भाष्य की भुमिका में मिलते हैं। इन उल्लेखों में इतिहास को महाभारत आदि से संबद्ध करके केवल व्यक्तिपरक इतिहास की ही अभिव्यक्ति प्रस्तुंत की है स्पष्ट है कि इतिहास की प्राचीन कालीन अवधारणो आख्यानों और धार्मिक कृत्यों तक ही सीमित रही हैं। इतिहास का मतलब था कोई प्राचीन ऐतिहासिक या उपाख्यानात्मक परम्परा जिसे एक अर्थपूर्ण गाथा या कथा के रूप में किसी आध्यात्मिक या धार्मिक, नैतिक या आदर्शात्मिक अर्थ को प्रकट करती थी।

भारतीय चेतना का प्रधान स्वर जो मुख्यरूप से आध्यात्मिक रहा है प्राचीनकाल में अधिकाधिक स्पष्ट रूप में मुखरित था। समवेतस्वर में सर्वत्र एक ही आध्यात्मिक वीणा के स्वर थे "गृहीत इव केशेषु मृत्युनाधर्ममाचेरत्" वाली प्रवृति ने केवल क्ला और साहित्य को ही धर्म का अंग नहीं बनाया, प्रत्युत इतिहास के रूप को भी धर्म से संबद्ध करना प्रारम्भ कर दिंया। तत्कालीन जन जीवन में फैली धार्मिकता की भावना इसका प्रमाण है। फलतः इतिहास या तो केवल धार्मिक और पौराणिक यांत्रिक रूप तक ही सीमित रह गया अथवा वह जनश्रुतियों और किंवंदतियों तक ही सीमित रह

गया। इसी कारण विदेशी विद्वानों ने इस प्रणाली पर आधृत इतिहास को केवल पटह और तूर्य का इतिहास माना है।

दुर्भाग्य की बात है हमारा इतिहास अधिकतर विदेशी लेखकों द्वारा लिखा गया जिन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि यह देश बौने आदमियों का देश है जिसमें अज्ञान से उठी हुई स्वार्थपरता और हीन ग्रन्थियों के अनेक उदाहरण भरे हुए हैं।

युग के बदलते हुए मानदण्डों ने इतिहास के अध्ययन की दिशा को मोड़ा है। इतिहास के अध्ययन की आधुनिक प्रवृत्तियों ने यह सिद्ध किया कि इतिहास का वैज्ञानिक एवं दार्शनिक परिप्रेक्ष्य भी है जो चितँना के संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक छोरों का संस्पर्श करता हुआ अपना निर्णय देता है। साथ ही साथ आज का इतिहास दर्शन जनसाधारण का इतिहास है। आज के इतिहास में मुख्यरूप से सामाजिक एवं राष्ट्रीयता के स्वरों की प्रधानता है। आज इतिहास की मान्यताएं बदल चुकी हैं, इतिहास जिसे राजाओं उनके द्वारा लड़ी गयी लड़ाई तक सीमित रखा जाता था आज वह "वाटरलू" और "पानीपत" की लड़ाई से निकल कर जनसाधारण के मध्य आ गया है, पहले एक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तिके ही हाथों में इतिहास निर्माण की शक्ति थी और आज उस व्यक्ति के साथ उतनी ही शक्ति जनसाधारण के हाथ में भी है

इतिहास के वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण ने यह सिद्ध किया है कि इतिहास स्वयं में एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है मानव के द्वन्दात्मक भौतिक वादी प्रयासों द्वारा रूपायित किए जाने के कारण इसका स्वतन्त्र मूल्य है एवं स्वयं इतिहास का अपना दृष्टिकोण है। इतिहास के ये तीनों वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय दृष्टिकोण इतिहास के अध्ययन की आधुनिक प्रवृतियों को स्पष्ट करते हैं। इतिहास को एक वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में मानने का तात्पर्य है उसे एक घटना मानना । आज जो कुछ प्रत्यक्ष घटित हो रहा है वह निश्चय ही कल का इतिहास होगा।

इतिहास किसी देश और काल विशेष में हुआ अविच्छिन्न घटना प्रवाह होता है। अविछिन्न घटना प्रवाह के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रक्रिया की अनिवार्य शर्त है। यदि इतिवृत में क्रमबद्धता नहीं रहती तो वह इतिहास नहीं रह जाता घटना अपने स्थान पर रहकर ही श्रोत में एक प्रकार की सार्थक सजीवता का निर्माण करती है। श्रृखंला की वह की एक कड़ी है जिसके निकलते ही श्रृखंला टूट जाती है। फिर इससे इतिहास की वैज्ञानिकता भी नष्ट हो जाती है। इतिहास में कारण कार्य संबन्ध होना आवश्यक है क्योंकि केवल तथ्यों और घटनाओं का लेखाजोखा प्रस्तुत करना ही इतिहास नहीं होता वरन् उसका कारण कार्य संबन्ध निर्वाह इतिहास निर्माण में सहायक होता है और इससे भी आगे बढ़ कर इतिहास निर्माण में मानव समाज की विकासधारा सहायक

बनती है। इतिहास का संबन्ध वस्तुओं अथवा तथ्योंके कालबोध अथवा काल क्रमानुसार सूची आदि से उतना नहीं रहता जितना मानव समाज की उस विकासधारा में होता है, जिससे संबद्ध होकर तथ्य अथवा वस्तु अपने में एक घटना बन जाती है। इसके साथ ही यह भी निश्चित है कि इतिहास कार इन घटनाओं को उचित संदर्भ देने के लिए भी बाध्य होता है, इतिहास की वैज्ञानिक प्रक्रिया में इतिहास कार की स्थिति नैयायिक की भांति होती है जिसे अत्यन्त कठोरता पूर्वक सच्चाई से कार्य लेना होता है। अतीत की घटित घटनाएं मौनधारण कर लेती है और इतिहास की प्रवृत्तियाँ किस ओर उन्मुख हो रही हैं किस रूप में कार्य कर रहीं हैं इस संबन्ध में कुछ भी कह सकने में इतिहासकार असमर्थ रह जाता है। अतः इतिहास कार का वैज्ञानिक रूप घटनाओं को पूर्वा पर क्रम से रखता हुआ अपना कर्तव्य पालन करता है। आज का इतिहासकार इतिहास को कालखण्डों में विभाजित करके ही सन्तुष्ट नहीं होता, उसका दृष्टिकोण उस दार्शनिक का सा होता है जो मानव जीवन के इतिहास के आदि ध्य और अन्त को स्वतन्त्र न मान कर काल की अविच्छिन्नधारा के रूप में लेखता है।

इसीलिए आज का इतिहासकार एक सच्चे वैज्ञानिक एवं दार्शनिक की तरह कार्य कारण परम्परा के सूक्ष्म विवेचनों द्वारा प्रत्येक देश और काल के ऐतिहासिक स्वरूपों पर विचार करता है।

इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या जिसमें कार्लमार्क्स और एंजेल्स ने सामाजिक प्रगति के इतिहास का विश्लेषण किया है, मुख्यरूप ये द्वन्दात्मक भौतिक वादी है। इस प्रकार की इतिहास की समझ ने यह सिद्ध किया है कि जिस भौतिक प्रकृति ने मानव को जन्म लिया है उसी में उसे संघर्ष करना पड़ता है। इतिहास की इस प्रणाली के अनुसार इतिहास न तो कोई पूर्व नियन्त्रित यांत्रिक गति है और न पानी की चरखी की तरह चक्कर में घूमने वाली ही ऐसी गति है जो मानव नामक ऐतिहासिक गधे के परिश्रम द्वारा भरी या खाली की जाती हो। अर्थात् विकास और संघर्ष की द्वन्दात्मक क्रिया प्रतिक्रिया में मानव अपना सामाजिक ढांचा बनाता जाता है और वह आदिम अवस्था से आगे बढ़कर सामाजिक अवस्था में प्रविष्ट होने लगता है। इस प्रकार की स्थितियों में उसके समाज की उत्पादन प्रणाली प्रमुख होती है जिसके आधार पर उस समाज को किसी युग विशेष से पृथक किया जाता है इतिहास की इसी प्रकार की धारणा समाज के रूढ़िबद्ध ढाचे को सुधारने या पूर्णरूपेण परिवर्तित करने में सहायक बनती है इस प्रकार इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या ने इतिहास की उस भावना का नाश कर दिया जिसके अनुसार वह घटनाओं या विचारों का उलझा हुआ संकलन मात्र होता है। उसके स्थान पर उसने उसे विज्ञान के स्तर तक पहुंचा दिया, उसे एक नियम मं परिणत कर दिया जिसकी परीक्षा

हो सकती थी और जो मनुष्य को वर्तमान एवं भविष्य की योजनाओं के निर्माण की योजना सौंप सकता था- भाग्य और दुर्दशा से उसका पिण्ड छुड़ा सकता था।

इतिहास का राष्ट्रीय दृष्टिकोण विचारकों की दृष्टि में अपेक्षाकृत संकुचित दृष्टिकोण रहा हैं। इसके अन्तर्गत स्थानीय रूप से इतिहास का आक्लन होता है इतिहास का इस प्रकार का दृष्टिकोण और आदर्श इतिहास के वैज्ञानिक और प्रगतिशील रूप को विकृत करने वाला होता है। इतिहास का इस प्रकार का दृष्टिकोण बहुत कुछ इतिहास की पुरातन प्रणाली से संबद्ध होता है जिसमें राष्ट्रों की और राजाओं की जययात्रा का ही विधानहोता है पतन अथवा पराजय का नहीं। इस प्रकार का दृष्टिकोण राष्ट्र के चारित्रिक विकास में अवश्य सहायक होता है किन्तु यह कर्तव्य इतिहास और इतिहासकार का नहीं होता। इतिहासकार यदि अपने दायित्व के प्रति सजग एवं सचेष्ट है तो वह घटनाओं को तटस्थ रूप से देखेगा और उनका मूल्यांकन यथार्थ दृष्टि से करेगा। वह अपनी रचना प्रक्रिया में किसी वाद या आग्रह से ग्रस्त नहीं होगा। सिद्ध हो जाता है कि इतिहासकार सच्चे अर्थों में वैज्ञानिक की भांति अपने कर्तव्य में तत्पर होता है तदनुसार कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। वह न तो अनपेक्षित वक्तव्य प्रस्तुत करता है और न ही किसी भी तथ्य को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करता चलता है हां इतना अवश्य करता है कि घटनाओं को पूर्वापर क्रम से संबद्ध करने में अपनी मौलिक प्रतिभा की भी सहायता लेता चलता है। इसी कारण कुछ विचारक इतिहास की अवधारणा को कोरे तथ्यों के प्रस्तुतीकरण से संबन्धित करके नहीं देखते वरन् उसे आत्मा की जिज्ञासा से संबद्ध कर देते हैं। इतिहास का ज्ञान आत्मा साक्षात्कार का साधन है जो कि सबसे मूल्यवान ज्ञान है। "इतिहास की खोज आत्मा की जिज्ञासा है।"

इतिहास और ऐतिहासिक नाटक

इतिहास स्वयं अनुभूति और अभिव्यक्ति के आयाम में परिकेन्द्रित होता है तथा साहित्य जिसका एक अंग नाटक है अनुभूति और अभिव्यक्ति पर ही आधृत होता है। ऐसी स्थिति में इस प्रश्न का उठना आकस्मिक एवं अप्रासंगिक नहीं है कि कौन सी ऐसी विभाजक रेखा है जो दोनों को अलगकर देती है तथा कौन सा ऐसा सूत्र हे जो दोनों को परस्पर संबन्धित किए रहता है। तथ्यों का कालक्रमानुसार संयोजन और उन पर वैज्ञानिक विश्लेशण प्रस्तुत कर देना इतिहासकार का कार्य है जब कि साहित्य उसे यहीं तक सीमित नहीं रखता। वह उन तथ्यों से आवश्यकं उपकरण संग्रह करके उनका कलानुसार सर्जन करता है। जिस प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में मात्र स्थूल और भौतिक तथ्यों का ही महत्व होता है, उसी प्रकार इतिहास में भी तथ्य ही महत्वपूर्ण होते हैं। इतिहास विज्ञान की भांति मात्र प्रयोग ही है जो अधिकाधिक अन्वेषण से ही संबद्ध

है। इतिहास भी प्रकारान्तर से साहित्य के क्षेत्र का ऐन्द्रीय प्रत्यक्ष ही है जिस प्रकार वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में अनेक प्रकार के प्रयोग किए जाते हैं उसी प्रकार ऐतिहासिक घटनाएं भी एक प्रकार से प्रयोग ही प्रयोग हैं।

किन्तु इस प्रकार की अवधारणा से यह अभिप्राय किंचित् मात्र नहीं है कि इतिहास में कल्पना का कोई स्थान नहीं है। इतिहास कल्पना साहित्य से भी सहायता लेता चलता है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ में प्रचलित अवस्थाएं किवंदन्तियां, दन्तकथाएं धीरे धीरे अवसर पाकर इतिहास रूप में परिणत हो गयी। यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि इतिहास का जो प्राचीन रूप था उसमें इतिहास को साहित्य का ही अंग माना गया है। रामायण, महाभारत आदि जो पूर्णतः साहित्यिक महाकाव्य हैं उन्हें प्राचीन ग्रन्थकारों ने इतिहास कहा है। इतिहासकार को केवल वैज्ञानिक, नैयायिक और तार्किक बन कर ही मुक्ति नहीं मिलती इतिहास के निर्जीव ढ़ाचे में प्राण प्रतिष्ठा करने के लिए उसे कलाकार भी बनना पड़ता हैं यह लोक मत ठीक ही है कि कोई इतिहास कार तब तक महान नहीं हो सकता जब तक वह महान् कलाकार भी न हो। इस प्रकार साहित्यकार, कलाकार और इतिहास कार के कार्यकलापों का व्यापक दृष्टिकोंण से अध्ययन करने पर अधिक सायुज्यता एवं एक दूसरे की पूरक शक्तियों का आभास मिलता है, किन्तु सतही दृष्टिकोंण से अध्ययन करने पर दोनों का स्वरूप पृथक् पृथक् परिलक्षित होता है। इतिहास कार यदि अनपेक्षित वक्तव्य से विमुख होकर चलता है । तो साहित्यकार जो अपार काव्य संसार में प्रजावत् अपनी स्थिति रखता है वह अपनी रूचि के अनुसार विश्व की परिवर्तित ही कर देता है। फिर भी इतिहास की सार्थकता तभी है जब वह दर्शन जीवन और साहित्य का अयुत सिद्ध रूप ले कर प्रस्तुत हो। दूसरी और साहित्य में भी मानव संबन्धों का चित्रण कोरी कल्पना पर ही आधारित नहीं होता वह प्रतिदिन घटने वाली घटनाओं की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप होता है जो कल का इतिहास बनने वाली है। स्पष्ट है कि साहित्य और इतिहास में परस्पर अभिन्न संबन्ध है यद्यपि दोनों एक दूसरे से पृथक् हैं। दोनों ही सत्य की अन्वेषण की प्रक्रिया में रत है, पर एक का सत्य कोरा तथ्यात्मक वस्तुपरक नग्नस्तय है तो दूसरे का सत्य शिव सुन्दर का समन्वित रूप है। एक की प्रक्रिया नितान्त वैज्ञानिक और वस्तुपरक है तो दूसरे की प्रक्रिया का आधार मान और संवेदना है। इतिहास यदि शरीर निर्माण करने में समर्थ है तो साहित्य की कल्पना का झीना परिधान उसकी कमनीयता में वृद्धि करने वाला उपादान है।

दोनों में अन्तर और समता का सम्मिश्रण अपने अपने प्रदेश द्वारा समग्र मानव जाति को सत्य पर चलने की प्रेरणा देते हैं, मानव के हित चिन्तन की कामना प्रस्तुत करते हैं। काव्य या साहित्य की कभी इतिहास में पूर्ण होती है एवं इतिहास के टूटे

अंशों को हम काव्य या साहित्य में उपलब्ध कर पाते हैं और इस दृष्टि से दोनों में अभेद रेखा व्याप्त है काव्य में जो भूले हमें ज्ञात होंगी इतिहास में हम उनका संशोधन कर लेंगे, किन्तु जो व्यक्ति काव्य ही पढ़ेगा इतिहास पढ़ने का अवसर नहीं पाएगा वह हतभाग्य है और जो व्यक्ति केवल इतिहास पढ़ेगा और काव्य पढ़ने का अवसर नहीं पाएगा संभवतः उसका भाग्य और भी मंद है।

रवि ठाकुर की इस व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य इतिहास, का प्रत्रय पा कर अपनी प्रामाणिकता और भी दृढ़ कर लेता है। साहित्य और इतिहास के संबन्धों की इस व्याख्या के उपरान्त देखना यह है कि ऐतिहासिक नाटक इतिहास की किस सीमा तक सम्पृक्त और असम्पृक्त रहता है। इतना तो स्पष्ट ही है कि ऐतिहासिक नाटककार उन सभी उपकरणों को अवश्य संजोता है जो इतिहास के इतिहास निर्माण में सहायक बनते हैं किन्तु नाटककार का संबन्ध सम्पूर्ण इतिहास से नहीं होता, वह उसके मूलश्रोतों अर्थात् विविध ताम्रपत्रों, शिलालेखों आदि से अपनी सामग्री संकलित कर सकता है किंवा तथ्यों, घटनाओं और कालक्रम की प्रक्रिया में जहा इतिहास कार की दृष्टि उसे अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा कार्यकारण संबन्ध से नियोजित करके पूर्ण रूप प्रदान कर चुकी है, यहां से भी अपनी विषय सामग्री उपलब्ध कर सकता है।

इतिहासकार अपने स्वानुभव के प्रयोग द्वारा इतिहास के अन्तर्गत बिखरी सामग्री का समाहार कर उसे सुव्यवस्थित रूप में परिणित करता है और नाटककार अभिनवकल्पना का समावेश देकर उसे रसात्मक्ता से युक्त करता चलता है जो कि चाक्षुष क्रतु नाटक का चरम लक्ष्य होता है इतिहास कार छोटे छोटे और बिखरे हुए रंग बिरंगे टुकड़ों को बड़ी सतर्कता और सावधानी से जोड़ कर एक ऐसा आकार दे देता है जिसका स्वरूप उन छोटे छोटे अवयवों में निहित रहता है बस इतनी ही इतिहासकार की कला है, परन्तु उन रंग बिरंगे टुकड़ों को देखने मात्र से ही ऐतिहासिक नाटककार के मनश्चक्षुओं के सामने एक संपूर्ण क्लात्मक दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है। वे बिखरे हुए टुकड़े उसकी प्रेरणा के लिए बाध्य उपकरण मात्र हैं, इसीलिए जहां इतिहासकार अपनी संश्लिष्ट संभाव्यता का प्रयोग करता है वहां नाटक कार अपनी सर्जक कल्पना का। ऐतिहासिक नाटककार इतिहास के किसी एक मेधखण्ड पर अपनी सर्जक कल्पना से कितनी ही नई-नई आड़ी-तिरछी रेखाएं खींच सकता है, मेघ खण्ड इतिहास का है रेखाओं से बने चित्र नाटककार के अपने हैं, चित्रफलक इतिहास का है और रंग नाटककार के अपनें है। इस प्रकार नाटककार की कल्पना के लिए इतिहास आधार मात्रं रह जाता है। जोशी जी के मत में इस प्रकार ऐतिहासिक नाटक कार के लिए इतिहास चित्रफलक का कार्य करता है जिस पर वह अपनी उत्कृष्ट कल्पना के प्रयोग से प्रकृष्ट चित्र प्रस्तुत कर सकता है।

ऐतिहासिक नाटकार इतिहास को ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं कर सकता। उसे इतिहास और नाटकीय तत्वों का संतुलित रुप में समावेश करना पड़ता है। इस तथ्य को मानने में किसी को आपत्ति नहीं कि नाटक दृश्य काव्य होने के कारण साहित्य की प्रकृष्ट शाखा माना गया है कि वस्तु कोई भी ऐतिहासिक क्या नाटकीय सांचे में ढल कर अपना महत्व समान्य काथाओं की अपेक्षा अधिक ऊंचा कर लेती है। नाटक के माध्यम से प्रत्येक सहृदय इतिहास और साहित्य दोनों का आस्वाद प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि इतिहास मात्र अस्थिपंजर नाटककार उस सारे स्थूल क्रिया का व्यापार से घटनाओं का विश्लेषण करते हुए नाटकीयता की ओर उन्मुख रखते है अन्यथा समस्त नाटक नीरस इतिहास ही रह जाय। इतिहास-कार का प्रयोजन जीवन के मनोविज्ञान पर दृष्टि डालना नहीं वह तो साहित्यकार के क्षेत्र की वस्तु है जीवन के मनोविज्ञान पर दृष्टि डालने का अवकाश इतिहास-कार के पास कहां रहता हैं? उसके पास तो घटनाओं की 'रेडीमेड' बनाने का यंत्र है परिस्थितियां के सांचे में घटनाएं डाली और उससे गुड्डे की तरह कटा छंटा व्यक्ति निकल आया नाटककार तो जीवन का जीता जागता पात्र उपस्थित करता है।

नाटककार इतिहास का प्रसंग बहुत कुछ अपने पात्रों के माध्यम से आदर्श प्रतिष्ठापन के लिए लेता और इस रुप में इस आधार के ग्रहण किए जाने पर इतिहास का आधार सुदृढ़ और व्यापी होता है।

ऐतिहासिक नाटक इतिहास को सजीव रुप में प्रस्तुत करता है इसलिए उसकी महता इतिहास से भी अधिक होती है 'शरीर विज्ञान' (पोस्ट मार्टम एक्जामिनैशन) द्वारा जिस प्रकार मनुष्य की जीवित अवस्था का बोध नहीं हो सकता उसी प्रकार इतिहास के द्वारा किसी समाज की जीवित अवस्था का बोध नहीं हो सकता पर नाटकों के द्वारा समाज की तत्कालीन अवस्था का बोध सहज ही किया जा सकता है और इसी कारण ऐतिहासिक नाटक जातीय जीवन के निर्माण में इतिहास से अधिक उपयोगी सिद्व होते हैं?

नाटकों का घटनाओं को नाटकीय बनाने हेतु नाटककार जो कल्पनाएं प्रस्तुत करता है वे इतिहास के गहन सत्य में लीन होकर अधिक सशक्त बन जाती है और नाटककार की नाटकीयता का सजीव रुप देती जाती है। इतिहासकार जिन छोटे अंशों को छोड़ता जाता है, नाटककार अपनी तरल संवेदना द्वारा उन्हें कला के माध्यम से प्रकट करता चलता है किन्तु उसकी दृष्टि सत्य पर भी केन्द्रित रहती है अर्थात् कल्पना में डूब कर वह इतिहास की प्रमाणिकता को नहीं खो देता ऐसा नहीं है कि उसकी कल्पना इतिहास

की बताई हुई लीक को छोड़कर इधर उधर मुड़े और फिर आकर इतिहास की लीक पकड़ ले। दूसरे शब्दों में उसकी कल्पना समानान्तर है तो इतिहास के साथ साथ चलती है लम्बी रुप ( ) नहीं जो इतिहास की सतह के नीचे डुबकी लगाकर कुछ चिन्तन मनन आत्ममेथन तत्व चिन्तन में परिवर्तित हो।

इस प्रकार नाटककार की कल्पना सत्य के समानान्तर चलती हुई एक ओर पात्रों के मनोविज्ञान को वास्तविकता से स्पष्ट करती चलती है दूसरी ओर पात्र विशेष की ऐतिहासिक स्थिति एवं सामाजिक दशा का भी निर्देशन करती चलती है।

ऐतिहासिक नाटककार के लिए यह कोई आवश्यक प्रतिबंध नहीं कि वह किसी इतिहास की घटना को ज्यों का त्यों ही प्रस्तुत करे. नाटककार को अवस्थानुसार घटना को परिवर्तित करने की भी स्वतन्त्रता है। नाटकाकर इतिहास का गत्यात्मक रुप प्रस्तुत करता है अत : रसात्मकता के परिवेश के लिए वह स्वतंत्र है कि एक ही तथ्य जो इतिहास में एक जड़ रुप में सुस्थिर हो चुका है उसे अपने दृष्टिभेद से अधिकाधिक सरस कर दे। अंग्रेज आलोचक वालस्टर वागहाट की भांति इतिहास और ऐतिहासिक नाटक की तुलना नहीं और उसेक प्रवाह में पड़ने वाली मीनार की प्रतिच्छाया से की जा सकती है। इतिहास छाया की भांति स्थिर है और ऐतिहासिक नाटक जल की भंति गतिमान हैं।

इतिहास की नाटकीय वृत के रुप में प्रस्तुत करने के लिए न नाटककार इतिहास की घटना को संश्लेषण विश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा अभिनव संस्कार देकर, कलात्मक सर्जना द्वारा निखार देकर प्रस्तुत करता है। इतिहास और साहित्यिक कलाकृति की निर्मित में हर परिप्रेक्ष्य को ऐतिहासिक नाटककार चेतना के स्तर पर संघटित करता चलता है। रचना, स्वानुभव, इतिहास का स्थूल रुप उसके द्वारा निर्दिष्ट गहन सत्य, एवं युग सभी से संपृक्त होकर ही ऐतिहासिक नाटककार अपनी कलाकृति प्रस्तुत करता है। नाटककार इतिहास की घटनाओं में यदि क्रम भंग भी करे तो वह दोषी नहीं माना जा सकता, किन्तु जिस संदर्भ में क्रम भंग प्रस्तुत किया जा रहा हो उसका पूर्वापर क्रम न बिगड़े अर्थात् लम्बे इतिहास के मध्य से यदि बीच बीच की किंचित घटनाएं चुनी गई हों तथा कुछ छोड़ दी गई हों तो उसके लिए आवश्यक है कि घटनाओं की कार्यकारण श्रंखला अविच्छिन्न बनी रहे और दर्शक और पाठक को उस संबंध का सूत्र ज्ञात करने में असुविधा न हो। उदाहरण कि लिए चाणक्य और चन्द्रगुप्त के सबंध को प्रस्तुत करने वाले नाटकों को लिया जा सकता है। एक नाटककार पृथक पृथक घटनाएं लेकर उन्हे तीन या चार अंकों में विभाजित करके चाणक्य और चन्द्रगुप्त के संबंधों के व्यापक घटना सूत्र को प्रस्तुत करता है दूसरी ओर एक एकांकीकार लंबे संबंधो के लधु वंश

को लेकर एक ही अंक में चाणक्य और चन्द्रगुप्त संबंधी अपनी अवधारणाओं को स्पष्ट करता है। यदि एंकाकी कार की दृष्टि इतिहास और कल्पना की समानान्तर लीक पर चलने वाली कुशल दृष्टि होती है तो वह एंकाकी भी अपने लघु आयामं के माध्यम से वैसा ही प्रभाव डालता है जैसा बड़ा नाटक और कभी कभी नाटक से भी अधिक प्रभावशाली बन पड़ता है। कल्पना के इन्द्रधनुषी रंगो से युक्त होकर भी उसकी दृष्टि इतिहास की लीक नहीं छोड़ती। श्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक की महता इसी में है कि घटनाओं का पूर्वापर क्रम यथास्थान प्रस्तुत हो। नाटककार परिस्थितियों की उद्रभावना करके इतिहास की विश्रृंखलित घटनाओं को श्रृंखलाबद्ध करता है। वैज्ञानिक की भांति नवीन परिस्थितियों का निर्माण करके नाटक के वृत को सीधा करता है जैसे धनुष से निकले हुए शर की नाई वह अपने चरम् लक्ष्य की ओर अबोध गति से अग्रसर होता है।

इस प्रकार ऐतिहासिक नाटककार के समक्ष प्रमुख बातें रहती है - (क) इतिहास की बिखरी सामग्री को एकत्रीकृत करना (ख) नवीन परिस्थितियों की उद्भावना (ग) नाटक के वृत के माध्यम से अतीत को पुनरूपज्जीवित करते हुए परम लक्ष्य की ओर बढ़ना (घ) पात्र के मनोविज्ञान को उभार कर अपनी तरल संवेदना के माध्यम से नाटक में गत्यात्मक्ता प्रस्तुत करना। नाटककार इस प्रकार की उद्भावनाओं द्वारा कुछ ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत करता है जो कमी इतिहास के अंतर्गत पाठकों को उपलब्ध भी होते हैं और कभी नहीं भी उपलब्ध होते। नाटककार के द्वारा किए गये ये परिवर्तन और कल्पनाएं इतिहास विरुद्ध नहीं माने जाते क्योंकि इ़ि़हास में भी कभी-कभी सत्य के सूत्र छूट जाते हैं ये परिवर्तन और कल्पना पर आश्रित उद्भावनाएं इतिहास की प्रवृति के विरुद्ध मान ली जाय ऐसा ठीक नहीं प्रतीत होता क्यों कि इतिहास स्वयं में एक छलना है। जिसमें सत्य बहुत बार संदिग्ध रह जाते हैं।

इस प्रार ऐतिहासिक वृत्त के परिपार्श्व में रचा गया नाटक एक ओर अतीत की मूक पड़ी घटनाओं का नवीन, चेतना और सरसरुप धारण करता है दूसरी ओर कलात्मक सर्जना के माध्यम से पाठक और दर्शक को जीवन के शाश्वत मूल्यों से भी परिचित कराता चलता है। इतिहास से संबन्धित होने पर भी ऐतिहासिक नाटक नाटक ही होता है इतिहास नहीं नाटक की कथा इतिहास प्रसिद्ध होनी चाहिए यह नाट्यशास्त्र का भी सिद्धान्त है किन्तु वह नाटक बना रहना चाहिए इतिहास नहीं। यदि वह इतिहास बन जायगा तो नाटक नहीं रह जायेगा। फिर भी इतिहास के वृत पर आधारित नाटक अन्य प्रकार की साहित्यिक कृतियों से अधिक श्रेष्ठ माना जाता क्योंकि नाटक की महानता एक ओर उसकी विषयवस्तु के मूल्य में उसके स्वरुपाधायक विचारों और तत्त्वों में निहित है तो दूसरी ओर उसका महत्व इसमें भी है कि वह कला की समग्र आवश्यकताओं

को पूर्ण करता हुआ किसी भी जाति, किसी भी युग एवं किसी भी संस्कृति की आत्मा एवं जीवन को, उसके जीवन आदर्शों को, कला कार की संवेदन प्रवण प्रतिभा द्वार प्रकट करता एक उन्नत बनाता चलता है। इस दृष्टि से दृश्य काव्य होने के कारण दर्शकों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालने से ऐतिहासिक नाटक विचारकों की दृष्टि में इतिहास पर आधारित अन्य कलाकृतियों की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है।

ऐतिहासिक नाटक की रचना प्रक्रिया

ऐतिहासिक नाटकों के विविध पक्षों पर विचार करते समय रचना प्रक्रिया का प्रश्न उठना आकस्मिक एवं अप्रसांगिक नहीं है क्योंकि मुख्य रुप से नाट्य ग्रन्थों का विवेचन करते समय उन्हें केवल साहित्य के परिप्रेक्ष्य में केन्द्रित कर वस्तु नेता रस आदि के स्थूल मापदण्डों के आधार पर समीक्षित करने का प्रयास किया जाता रहा है या फिर उन्हें केवल मनोरंजन हेतू मान कर उनकी विवेचना की जाती रही है। जबकि केवल नाटक ही नहीं किसी भी साहित्य विथा का यह सूक्ष्म पक्ष जिसे परिभाषित नहीं किया जा सकता साहित्यकार की रचना प्रक्रिया का ही पक्ष है।

ऐतिहासिक नाटकों की रचना प्रक्रिया पर विचार करने के पूर्व यहां रचना प्रक्रिया की आधार की भूमिका किंचित् स्पष्टीकरण समीचीन होगा। रचना प्रक्रिया का सीधे रुप से संबन्ध अनुभूयात्मक चेतना से होता है। किसी भी रचना की प्रकर्षता उसकी प्रक्रिया के आधार पर ही निर्धारित होती है। यह प्रक्रिया एक और लेखक की निजी अनुभूति से संबन्धित होती है जो पूर्ण मनोवैज्ञानिक होती है दूसरी ओर इस प्रक्रिया का पक्ष कलात्मक पक्ष है इस कारण यह पक्ष लेखक की रचना चेतना प्रदान करता है, इस बात को प्रायः सभी विचारकों ने स्वीकारा है कि जिस रचनात्मक अनुभव को रचनाकार किसी विशेष क्षण में उपलब्ध करता है वह एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम होता है।

रचना की यह प्रक्रिया आत्म साक्षात्कार की लंबी प्रक्रिया होती है जिसे कोई भी कृतिकार कृति से पहले, कृति में और कृति के बाद प्रस्तुत कर पाता है। रचना प्रक्रिया को आत्म परिष्कार की प्रक्रिया मानते हुए डा. परमानन्द श्री वास्तव ने इस प्रक्रिया के दो प्रमुख स्तर माने हैं एक तो वह जहां लेखक रचना करता है दूसरा वह जब लेखक रचना की समाप्ति के विन्दु पर पृथक हो जाता है केवल कृति और पाठक रह जाते है।

इस प्रकार मुख्य रुप से रचना की प्रक्रिया के क्रम में दो मनोवैज्ञानिक मोड़ आते हैं प्रथम वह है जब लेखक की निजी संवेदनशीलता चिन्तना के सघनीभूत क्षणों में रचना की सर्जना में व्यस्त रहती है दूसरा वह जो लेखक की अमूर्त संवेदना को अभिनय

कर्ता के माध्यम से मूर्त रुप में परिणत करके सामाजिक की रस प्रतीति का हेतु बनती है। प्रथम स्थिति सूक्ष्म है वैयक्तिक है तथा दूसरी समूह रुप में परिणित हो जाने वाली स्थूल स्थिति है जो कृति के बाह्य रुप पक्ष से संबद्ध है।

इस तथ्य को मानने मे किसी को आपत्ति नहीं कि रचना प्रक्रिया का प्रश्न मुख्य रुप से आधुनिक युग की समीक्षा में उठाया गया प्रश्न है। यह प्रश्न उस समय से और अधिक महत्व प्राप्त करता रहा है जब कि नए रचनाकारों की रचनाओं को पाश्चात्य साहित्य ने प्रभावित करना आरम्भ किया क्योंकि पाश्चात्य देशों में रचना प्रक्रिया के प्रश्न को साहित्य में पर्याप्त व्यापक रुप में प्रस्तुत करके देखा गया है। यहां रचना प्रक्रिया के सैद्धान्तिक पक्ष का व्यापक विवेचन संभव नहीं। इस संदर्भ में इतना ही कहा जा सकता है कि रचना प्रक्रिया के विविध पक्षों में साहित्यकार की निजी संवेदना जीवन दृष्टिकोण, आन्तरात्मिक परिवेश एवं रचना शिल्प के व्यापक स्तरों का परिचय प्राप्त होता चलता है।

नाटक के संबन्ध में विशेषकर ऐतिहासिक नाटकों के संबन्ध रचना प्रक्रिया पर विचार करने पर पर्याप्त कठिनाइयां परिलक्षित होती हैं। यह प्रश्न कहानी और कविता के संबन्ध में उतना उलझा नहीं प्रतीत होता है। काव्य के अन्तर्गत होने पर भी अपने दृश्यत्व गुण के कारण नाटक की एक सुनिश्चित सीमा होती है जिसमे नाटककार को बंधा रहना पड़ता है कृति की काव्यात्मक आकर्षण के साथ उसे आंगिक अभिनय पर ध्यान रखते हुए अनुकूल वातावरण भी प्रस्तुत करना पड़ता है। ऐतिहासिक नाटकों में रचनाकार को निजी संवेदना शीलता से अधिकाधिक संपृक्त हो कर शिल्प पक्ष की ओर ही मुख्य रुप से अपनी दृष्टि केन्द्रित करनी पड़ती है और सामान्य नाटकार की अपेक्षा विशेष श्रम करना पड़ता है फिर नाटक ही अन्य साहित्य विधाओं की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर एवं रमणीय माना जाता रहा है। वह चाक्षुप क्रतु है जो सामाजिकों आस्वाद हेतु पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता चलता है। इस प्रक्रिया में मात्र नेत्रेन्द्रिय तृप्त नहीं होती प्रत्युत रचनाकार की निजी संवेदनशीलता के संघनीभूत क्षण भी पात्रों के मनोविज्ञान के साथ मूर्त हो कर रचना की प्रक्रिया की ओर संकेत करते चलते हैं। इन विशेष क्षणों का संकेत - जिनकी लम्बी सृजनात्मक सारणि में पद प्रक्षेप करते हुए रचना कार की रचना रुपायित हो जाती है।

नाटक को प्राचीन आचार्यो ने दृश्य काव्य की संज्ञा दी है पर दृष्टव्य है कि नाटक न तो कोरा दृश्य है और न कोरा काव्य - प्रत्युत दोनों की सायुज्यता मे ही नाटक की चरम सार्थकता है। कोई भी नाट्यात्मक अमुभूति चाहे वह ऐतिहासिक हो या अन्य किसी विषय से संबद्ध मुख्य रुप से एक विशेष प्रकार अनुभूत्यात्मक चेतना से अनुप्राणित

होती है क्योंकि नाटकों में रचना कार के भाव विचार और संवेदनाओं का दृश्यात्मक स्थूल सम्मूर्तन होता है। काव्य पक्ष से संपृक्त होने के कारण नाट्यात्मक अनुभूति का एक पक्ष अन्य काव्यों की भांति होता है जिसमें लेखक अपने को खो कर स्वतः स्फूर्त क्षणों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है दूसरी ओर लेखक की यह अनुभूति यथार्थ सार्थक रुप में प्रस्तुत हो कर ही सफलता पाती है नाटक में जीवन का सघनीभूत क्षण होता है और यथार्थ का सघनीकरण और सार्थकीकरण हुए बिना उसे नाटक में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

ऐतिहासिक नाटककार की अनुभूति का वास्तविक एवं तीखा होना जहां आवश्यक है वहां यह भी आवश्यक है कि नाटककार उससे निस्संग भी हो। किसी भी नाटककार के लिए आन्तरिक एंव बाह्य पक्ष दोनों की ही तीव्रता और प्रखरता अपेक्षित होती है एवं दोनों से तटस्थ रहना भी आवश्यक है। वह न तो भावों और विचारों की सूक्ष्मता मे ही खो कर अपनी चरम उपलब्धि कर सकता है और न ही मंचन के बाह्य प्राविधानों मे ही उलझ कर नाटक को केवल मनोरंजन का साधन मात्र सिद्ध कर सकता है फिर ऐतिहासिक नाटककार के समक्ष इतिहास की घटना होती है जिसे न तो वह अतिशय कल्पना के रंग में रंग कर उसका वास्तविक महत्व खो सकता है और न ही घटनाओं का स्थूल क्रम प्रस्तुत करके नाटक को कोरा इतिहास ही बन सकता है। इस प्रकार ऐतिहासिक नाटक कार की रचना प्रक्रिया काफी उलझी रहती है। नाटककार में अपने भीतर और बाहर तीव्रता और व्यक्तिमत्ता से देख सकने की सामर्थ्य चाहिए। उसके लिए भावना और चिन्तन में दोनों में जड़ता से रूद्धता से बचने की बड़ी भारी अनिवार्यता है।

ऐतिहासिक नाटक कार जीवन्त इतिहास प्रस्तुत करता है। उसमे गत्यात्मक्ता होना स्वाभाविक एवं आवश्यक है क्योंकि ऐतिहासिक नाटक किसी युग विशेष की घटना को ले कर चलता है जिसकी विशेष परिस्थितियां उस विशेष के पात्रों की आन्तरिक स्थितियां भी बाह्य परिस्थितियों के उद्वेलन से संपृक्त रहती है। नाटक कार के सामने कोई घटना विशेष उसका निजी व्यक्तित्व तथा सामाजिक का आस्वाद जिसे वह अपनी कला के माध्यम से देने में सफल हो पाता है त्रिकोण वत् प्रस्तुत होते हैं, दूसरी ओर संप्रेपणयिता के प्रश्न पर विचारणीय है कि नाटककार चाहे वह इतिहास का विपय ले कर नाटक लिख रहा हो यो अन्य किसी विषय पर, दर्शकों से उसका साक्षात्कार सीधा नहीं होता वरन् अभिनय कर्ताओं के रुप में प्रस्तुत उसके पात्रों द्वारा उनकी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं के माध्यम से होता है। इस दृष्टि से उसकी प्रक्रिया और भी दुरुह होती जाती है। ऐतिहासिक नाटककार के सामने इतिहास, इतिहास से छन कर खाने वाले विशिष्टानुभव, भापा नाटकीय गठन, विन्यास और अभिनय तक उसका सहृदयों से सम्पर्क

संवेदननीयता की जांच आदि बातें इस प्रकार गुंथी हुई है कि उन्हें अलग करके देखना और एक नाटक को शुद्ध नाटक के रुप में देखना कोई अर्थ नहीं रहता। इतिहास को अपने विज़न (vision) का अंग मान कर, जीवन दर्शन और काव्य के अभेद से अपनी दृष्टि को व्यापक अर्थ में प्रामाणिक बना कर ही कोई भी ऐतिहासिक नाटककार ऐतिहासिक नाटकों का वह विशेष शिल्प उसकी भाषा आदि प्राप्त कर पाता है। यह सब कुछ वह क्या अनायास ही प्राप्त कर पाता सम्भवतः नहीं, पूरी परम्परा से जुड़ कर ही वह ऐसा कर पाता है।

नाटककार मूल चाहे कितना ही एकांगी अथवा लेखक के व्यक्तित्व से संबन्धित क्यों न हो - मुख्य रुप से उसकी परिणति एवं उसका ग्रहण सामूहिक रुप में होता है। बाह्य घटनाओं का समन्वित संघात लेखक के आत्म को प्रभावित करता है। एवं उससे प्रभवित हो कर उन घटनाओं को आत्म से संपृक्त करके जितने अधिक वास्तविक रुप में वह प्रस्तुत करता है उसकी अनुभूति की प्रक्रिया सुस्पष्ट और मुखरित होती जाती है। यह पहले भी कहा जा चुका है कि घटना के किसी भी अंश को लेकर नाटककार की अनुभूति क्रियात्मक होती चलती है ऐतिहासिक नाटककार बंधन में बंधा है न उसके लिए साहित्यिक अनुभावन प्रमुख है और न ही इतिहास का परिणित साहित्यिक रुप पर। किसी घटना की मूल चेतना को पकड़ कर उसे समग्र रुप में ग्रहण करना उसका कार्य हो जाता है अन्वेषण की इस प्रक्रिया में वह न केवल ऐतिहासिक रुप प्रस्तुत कर पाता है जो पाठकों को इतिहास बोध में सहायता दे और न केवल अपनी काल्पनिकता से निजी मान्यताओं .का शाश्वत प्रदेय प्रस्थापित कर सकता है उसके लिए यह भी आवश्यक है कि इतिहास के तथ्यों को भी सुरक्षित रखता चले जो उसकी कृति के अप्रामाणिक न बना सके, साथ ही सर्जनात्मक आग्रह का सूक्ष्म तन्तु भी उससे न टूटे।

इतिहास की किसी घटना को ले कर ऐतिहासिक नाटक कार अपनी कल्पना के माध्यम से पात्रों की क्रियाओं प्रतिक्रियाओं का संश्लेषण करके पात्र के मनोविज्ञान में किस प्रकार अवतरित होता है तथा उसके सत्य के उन कतिपय सूत्रों को भी प्रस्तुत करता चलता है जो इतिहास कार स्थूल घटनाओं के एकत्रीकरण में छोड़ता जाता है इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को डा. रामकुमार वर्मा ने बड़े वैज्ञानिक ढ़ग से प्रस्तुत किया है। उन्होने स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि जो घटना जितनी अधिक प्रभावोत्पादक होगी और रचनाकार की संवेदना भी जितनी अधिक तरल होगी उसका प्रश्रय पाकर मनोवैज्ञानिक चेतना प्रधान होती जाएगी। दूसरी ओर बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव भी उसे अनुशासित करते चलते है। संस्कार और प्रभाव ही क्रिया कलापों की दिशा निर्दिष्ट करते चलते हैं यदि ये दोनों समानान्तर होते हैं तो पात्रों में संघर्ष नहीं जन्म लेता, एक ही दिशा में उसकी गति नियमित रहती है संघर्ष हीन भूमिका में जीवन के सीमित हो जाने के

कारण उन्होंने इस प्रकार के मनोविज्ञान से युक्त पात्र को स्थिर मात्र कहा है यहां उनके द्वारा प्रस्तुत रेखा चित्र का प्रस्तुतीकरण उपयुक्त होगा।

इसके विपरीत यदि संस्कार और प्रभाव एक दूसे को प्रभावित करने वाले नहीं है तो सारी घटनाएं कार्य की दिशा जीवन का विस्तार संघर्ष और अंतर्द्वन्द्व में परिणित होता जाता है।

इस रेखाचित्र का रुप उन्होंने इस प्रकार किया है।

संस्कार और प्रभावों के विपरीत होने के कारण संस्कार अन्तर्द्वन्द में तथा प्रभाव संघर्ष में परिणित हो जाता है इस प्रकार का पात्र गत्यात्मक चेतना से युक्त व्यापी प्रभाव वाला होता है।

ऐतिहासिक नाटक की रचना प्रकिया का दूसरा रुप उसकी नियोजित कल्पनाओं के द्वारा सत्य के सूत्रों के अन्वेषण में प्रस्तुत होता है। इतिहासकार घटना घटी यही कह कर छोड़ देता है पर घटना के परिणाम स्वरुप किसी पात्र विशेष की मनः स्थिति में होने वाले परिवर्तन को साहित्यिकार की तीक्ष्ण दृष्टि ही लक्षित करती है। इस प्रकार सत्य की लीक पर चलती हुई ऐतिहासिक नाटक की प्रक्रिया अपना मूर्त रुप ग्रहण करती है। स्पष्ट हो जाता है कि ऐतिहासिक नाटक साहित्यिक विधा के एक रुप में अनुभूत्यात्मक पक्ष एवं रुप पक्ष दोनों ही दृष्टिकोणों से समान होते हुए भी अलग वैशिष्टय रखता है।

प्रस्तुत अवधारणा से स्पष्ट होता है कि रचना प्रकिया के क्रम में ऐतिहासिक नाटक कार के सपक्ष मुख्य रुप से निजीसंवेदना, बाह्य घटनाएं इतिहास का समग्र बोध स्पष्ट होता चलता है जिसके माध्यम से परस्पर इन सभी तत्वों का अयुत सिद्ध रुप ऐतिहासिक रचना को अपने एक विशेष शिल्प के साथ रुपायित होने में सहायता देता है और अपने रचनात्मक प्रयत्नों द्वारा समग्रता प्राप्ति के बोधु द्वारा रचना कार अपने दायित्व को और अधिक महत्व पूर्ण बनाता जाता है। नाटक का भाव बोध एवं शिल्प पक्ष अपने सौदंर्य के साथ रचनाकार की रचना प्रक्रिया से ही संक्रमित होता है इस प्रकार ऐतिहासिक नाटककार की रचना प्रक्रिया का एक आयाम वह अनुभव है जो तमाम साधारण अनुभवों से छन कर विशिष्ट रचनात्मक व्यापी अनुभव बनती है, दूसरा आयाम स्वयं रचना है उसका शिल्प गठन उसकी संरचनात्मक बनावट आदि और इसी प्रक्रिया का तीसरा आयाम पाठकों के मन पर पड़ने वाला प्रभाव है। वे अनेक प्रतिक्रिकियाएं जिन्हें रचना अपने पीछे छोड़ जाती है। रचना की यह प्रक्रिया एक निरन्तर प्रक्रिया है वह

कही समाप्त नहीं होती है इसीलिए किसी भी रचना को एक परम्परा के विकास क्रम में देखता होता है।

ऐतिहासिक नाटक की परिभाषा

ऐतिहासिक नाटक जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है कि मुख्यरूप से यह नाटक का वह रुप है जो इतिहास की घटना पर आधारित होता है पर ऐतिहासिक नाटको की कोई सुनिश्चित परिभाषा अभी तक भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों द्वारा निर्धारित नहीं हो सकी है, इसका एक सर्वप्रमुख कारण यह भी रहा है कि इतिहास का दृष्टिकोण पृथक युगों में पृथक पृथक् रहा है उसी कारण नाटकों का भी दृष्टि-कोण बदलता रहा है। अतः विविध दृष्टिकोण से युक्त इतिहास पर आधारित ऐतिहासिक नाटक की परिभाषा निर्धारित नहीं हो सकी, दूसरा कारण ऐतिहासिक नाटकों के वर्गीकरण की प्रणाली भी रही है, अर्थात् कभी ऐतिहासिक नाटकों को कभी विविधता के आधार पर (जैसे शुद्ध ऐतिहासिक, अर्धऐतिहासिक, काल्पनिक ऐतिहासिक, स्वच्छन्द एतिहासिक) कभी विषय के आधार, पर (जैसे राजनीतिक ऐतिहासिक वीर एवं सन्त चरित ऐतिहासिक, साहित्यिक ऐतिहासिक) और कभी नाटकीय तत्वों के आधार पर (जैसे घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, वातावरण प्रधान, कलात्मकता प्रधान) वर्गीकृत करने का प्रयास किया जाता रहा है, अस्तु ऐतिहासिक नाटकों के वैविध्य का आयाम अति विस्तृत होने के कारण उसकी समस्त विशेषता एवं परिकेन्द्रित कर लेने वाली कोई भी परिभाषा नहीं दी जा सकी है। फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि सतही तौर पर ऐतिहासिक नाटक हम उसे कह सकते हैं कि जिसमें इतिहास का पृष्ठाधार ले कर नाटकीय तत्वों का प्रावधान प्रस्तुत करते हुए दोनों का संतुलित सायुज्य स्थापित किया गया हो।

अ - भारतीय मत

भारतीय समीक्षा में यद्यपि ऐतिहासिक नाटक की कोई स्वतन्त्र परिभाषा नहीं प्रस्तुत की गयी है फिर भी प्राचीन आचार्यों ने प्रारम्भ से ही नाटकों का विवेचन करते समय ख्यात वृत्त की चर्चा की है। नाट्य वेद के प्रणेता भरत मुनि ने इतिहास युक्त नाट्य संज्ञा वाले पंचम वेद की रचना का उल्लेख किया है।

साहित्य दर्पण कार आचार्य विश्वनाथ ने भी पंचसंधियुक्त ख्यातवृत मय प्राविधान को नाटक माना है। अभिनव दर्पणकार आ. नन्दिकस्वर ने उसी नाटक को पूज्य माना है जो पूर्व लोक संपूज्यकथायुक्त हो अर्थात वही नाटक श्रेयष्कर कहा जा सकता है जो किसी पौराणिक एवं प्राचीन चरित पर आधारित लोक सम्पूज्य कथा के अभिनय युक्त हो।

दशरुपककार धनंजय एवं नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र ने ख्यातवृत एवं आद्यचरित पर आधारित होना नाटक के लिए प्रशस्त माना है। अभिनव भरत आचार्य सीता राम चतुर्वेदी ने अभिनव नाट्यशास्त्र के अन्तर्गत नाट्य के विविध उपादानों का उल्लेख करते हुए परम्परागत ख्यात वृत की चर्चा की है और उसे नाटक के लिए आवश्यक माना है।

संस्कृत आचार्यों द्वारा प्रस्तुत की गयी इन धारणाओं से स्पष्ट हो जाता है कि नाटक में ख्यातवृत या भूतकाल की घटना तो अवश्य रहती है किन्तु इन नाटक कारों ने यह मानते हुए भी कि इतिवृत नाटक के लिए आवश्यक है यह कभी नही स्वीकारा है। कि नाटक कार इतिवृत को ज्यों का त्यों प्रस्तुत कर दे ख्यात वृत के आधार पर नाटककार किस प्रकार अपना नाटकीय प्राविधान प्रस्तुत करें, इसकी विवेचना यहां अप्रासंगिक है इंसका विवेचना शिल्प विधान उपशीर्षक के अन्तर्गत आगे किया जा सकेगा।

आधुनिक भारतीय समीक्षकों ने भी ऐतिहासिक नाटकों की परिभाषा निर्धारण का प्रयास किया है डा. गुलाबराय उन नाटकों को ऐतिहासिक मानते हैं जो मुख्यरूप से देश की राजनीति से संबद्ध हो (जिन नाटकों ने देश की राजनीति और उत्थान पतन में भाग लिया है—ये नाटक ऐतिहासिक हैं।) किन्तु केवल राजनीति के उत्थान पतन शब्द में परिकेन्द्रित कर ऐतिहासिक नाटक की इस परिभाषा को अंगीकृत नहीं किया जा सकता क्योंकि किसी भी देश का इतिहास केवल राजनीति प्रधान नहीं होता, दूसरी ओर समाज की कोई स्थिति विशेष भी उत्थान पतन का हेतु बन सकती है और इस प्रकार इस परिभाषा के अन्तर्गत सामाजिक और पौराणिक नाटक भी समाहित हो जाते है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने भी ऐतिहासिक नाटकों के विषय में विचार प्रस्तुत किए हैं किन्तु उनके द्वारा भी प्रस्तुत की गयी परिभाषा में ऐतिहासिक नाटक की समुचित परिभाषा की व्याख्या नहीं मिलती, प्रत्युत ऐतिहासिक नाटककार का क्रिया कलाप व्यक्त होता है। उन्होंने यह बतलाया है कि ऐतिहासिक नाटक विशुद्ध नाटकों से भिन्न होते हैं इस प्रकार ऐतिहासिक नाटक कार भी विशुद्ध नाट्य रचयिता की कोटि में नहीं आता १. उनकी दृष्टि में ऐतिहासिक नाटककार केवल मृत अतीत का निर्देशक नहीं होता वरन् वह वर्तमान के लिए भी संदेश लिए रहता है, अर्थात् यथातथ्य चित्रण के साथ देश की संस्कृति का चित्रण भी ऐतिहासिक नाटककार यदि प्रस्तुत करे तो श्रेयष्कर है।

अभिनव भरत ने नाटकों के भिन्न-भिन्न रुपों के अन्तर्गत ऐतिहासिक नाटक की परिभाषा निर्दिष्ट करने का प्रयास किया है जिसके द्वारा एक सुव्यवस्तथित परिभाषा का किंचित् आभास मिलता है जो नाटक वास्तविक घटनाओं पर लिखे जाते हैं उन्हें ऐतिहासिक

नाटक कहते हैं किन्तु कुछ ऐसी घटनाओं पर अवलम्बित होते हैं जिन्हें लोग सत्य मान लेते हैं। अतः आगे चल कर उन शिथिल रचना वाले नाटकों को भी इतिहास नाटक कहने लगे जिसकी कथावस्तु भली प्रकार व्यवस्थित न हो। वास्तव में इतिहास में वर्णित घटना के आधार पर ज्यों का त्यों जो नाटक रचा जाता है उसे ही ऐतिहासिक नाटक कहते हैं।

प्रस्तुत परिभाषा उन्होंने मुख्य रुप से योरोपीय नाटकों के आधार पर प्रस्तुत की है। अभिनव भरत ने प्रस्तुत परिभाषा में ज्यों का त्यों शब्द प्रयुक्त किया है जिसका अभिप्राय यही है कि घटना इतिहास से ले कर उसे प्रायः अधिकतर उसी रुप में स्पेशल बना कर प्रस्तुत किया गया नाटक ऐतिहासिक नाटक कहा जायगा। यदि घटना इतिहास की हो और उस पर लेखक ने अपनी कल्पना के आधार पर व्यापक नई उद्‌भावनाएं की हों तो उसे ऐतिहासिक नाटक की कोटि में न रख कर ऐतिहासिक का भास नाटक कहा जायगा।

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों पर प्रस्तुत किए गए अन्यान्य शोध प्रबन्धों मे भी संबन्धी लेखकों ने ऐतिहासिक नाटकों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं. इन विचारकों ने ऐतिहासिक नाटक को प्रमुख रुप से कला और साहित्य का एक रुप माना है अतः उसके कलात्मक रुपाधायक तत्त्वों की ओर दष्टि केन्द्रित रखना ऐतिहासिक नाटककार के लिये अनिवार्य माना है, इसालिए उसे सामान्य से पृथक् नाटकों का एक विशेष रुप माना है ऐतिहासिक नाटक एक विशेष प्रकार की साहित्यिक कृति है वह नाटक तो है परन्तु उसका ऐतिहासिक विशेषण उसके एक विशेष स्वरुप की ओर संकेत करता है। डा. जोशी ने अपनी पीरभाषा के द्वारा ऐतिहासिक नाटक के व्यापी स्वरुप को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है। वस्तुतः ऐतिहासिक नाटक के विशेष स्वरुप के अन्तर्गत सामान्य नाटक से पृथक् सभी गुण आ जाते हैं ऐतिहासिक नाटक नाटक के शरीर मे इतिहास के प्राणों का प्रहार है। डा. घनंजय ने ऐतिहासिक नाटक की परिभाषा संबन्ध में जो विचार प्रस्तुत किए हैं उसमें उन्होंने उस साहित्यिक विधा को ही ऐतिहासिक नाटक माना है जो राजनीति की अपेक्षा सांस्कृतिक और सामाजिक उत्थान के मूल प्रेरणा श्रोतों को रेखांकित करने का प्रयास करता है।

डा. घनंजय ने अपनी इस व्याख्या के क्रम में तिथिपरक इतिहास की खोजबीन ऐतिहासिक नाटक के लिए आवश्यक नहीं मानी है।

(आ) पाश्चात्य मत

भारतीय विचारकों द्वारा प्रस्तुत की गयी इन व्याख्याओं के साथ पाश्चात्य संदर्भों में निर्धारित की गयी कतिपय परिभाषाओं का प्रस्तुती करण संगत प्रतीत होता है पाश्चात्य समीक्षा में भी नाट्य रुपों के दृष्टिकोण से कोई भी परिभाषा निश्चित नहीं की जा सकती क्योंकि नाटकों के जो रुप हमें मिलते हैं वे पृथक-पृथक युग में पृथक-पृथक रहे हैं फिर भी आलोचकों ने परिभाषा निर्धारण करने का प्रयास किया तो अवश्य ही है। अंग्रेजी साहित्य में विशेष रुप से शेक्सपियर का युग ऐतिहासिक नाटकों के लिए स्वर्ण युग माना गया है क्योंकि शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर (विशेष कर १९२३ की पुस्तकों के आधार पर) आलोचकों ने नाटकों के लिए कामदी, त्रासदी एवं ऐतिहासिक इस प्रकार के भेद प्रस्तुत किए हैं ऐतिहासिक नाटक पाश्चात्य दृष्टिकोण से भी अपना एक पृथक वैशिष्टय रखता है उससे कुछ संकेत एलिजा बेथ युगीन नाटकों में उपलब्ध होते हैं एक नाटक (ए वार्निग फार फेयर उमेन १५९९) में इतिहास कामदी और त्रासदी के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है। किन्तु यह पुस्तक त्रासदी के विषय में ही अपने विचार प्रस्तुत कर सकी है। ऐतिहासिक नाटकों के रुप के संबन्ध में उसमें कोई उल्लेख नहीं है। ऐतिहासिक नाटकों का सुव्यवस्थित रुप शेक्सपियर के नाटकों द्वारा उपलब्ध होता है। हेमलेट में स्वयं शेक्सपियर ने एक पात्र के मुख से नाटकों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है जिसमें ऐतिहासिक नाटक का भी उल्लेख है।

पाश्चात्य आलोचकों में ऐतिहासिक नाटकों के संबन्ध में कालिरिज द्वारा प्रस्तुत की गयी परिभाषा ऐतिहासिक नाटक की परिभाषा को काफी सीमा तक बांधने में समर्थ हुई है। उनके मत में ऐतिहासिक नाटक इतिहास से ग्रहण की हूई घटनाओं का ऐसा संकलन है। जिसमें घटनाओं के काल कारण संबन्ध का संयोजन नाटकीय कल्पना दावारा काव्यात्मकढंग से होता है।

कालिरिज ने अपनी इस परिभाषा में मुख्य रुप में इतिहास नाटकीय क्ल्पना एवं कलात्मकता पर बल दिया है। कालिरिज ने अपनी इसी व्याख्या के द्वारा शेक्सपियर के नाटकों को भी वर्गीकृत किया है। पूर्ण ऐतिहासिक, इतिहास मिश्रित तथा ऐतिहासिक उन तीन वर्गो में शेक्सपीयर के नाटकों को कालिरिज ने स्थापित करते हुए ऐतिहासिक नाटक को वीर चरित काव्य एवं सामान्य नाटक के मध्य स्थित श्रृंखला के रुप में माना है।

पाश्चात्य विचारक शीलिंग में कोई स्वतन्त्र परिभाषा नहीं दी है प्रत्युत ऐतिहासिक नाटक के गुणों के आधार पर उनका वर्ग विभाजन किया है उन्होंने एक वर्ग इतिहास

और इतिहासाश्रित व्यक्तियों की जीवनी परक नाटकों का तथा दूसरा वर्ग अनुश्रुतियों या किंवदन्तियों पर आधारित नाटकों का प्रस्तुत किया है।

अपनी इस विस्तृत व्याख्या में उन्होंने यह सिद्ध किया है कि ऐतिहासिक नाटक एक ओर इतिहास से तथा दूसरी ओर कलात्मकता से संबद्ध होने के कारण सामान्य नाटकों से अलग महत्व रखता है उन्होंने स्पष्ट किया है कि ऐतिहासिक नाटक मूलाधार अवश्य इतिहास को बना सकता है किन्तु साहित्य का अंग बनाने के लिए उसे नाटकीय तत्वों पर भी संतुलित दृष्टि रखना आवश्यक होता है।

ट्यूडर कालीन ड्रामा की व्याख्या करने वाले प्रो. सी.एफ. टक्टबुक ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि ऐतिहासिक नाटक को पारिभाषित नहीं किया जा सकता। नाटकों का नवीन रुप जो इतिहास के विषयों पर आधारित होता है जो कामदी या त्रासदी से भी अधिक रुढ़ नियमों का पालन करता है, उसकी परिभाषा करना असंभव है।

पाश्चात्य विद्वान हेजल्टन स्पेंसर ने ऐतिहासिक नाटकों की कोई सुनिश्चित परिभाषा नहीं दी है, पर उनके जो विचार व्यक्त हुए हैं उससे एतिहासिक नाटक के विषय में जो स्पष्टीकरण होता है उसमें नाटक कार के लिए अपने अभिनय आदर्शों को प्रमुख बताया गया है। अपने अभिनेय आदर्शो के अनुकूल ही नाटककार ऐतिहासिकता को परिवर्तित करता है।

भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों द्वारा प्रस्तुत की गयी इन परिभाषा के परिप्रेक्ष्य में विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि साहित्य की वह विधा जिसमें कोई भी रचनाकार मृत अतीत का पृष्ठाधार ले कर अपनी कल्पनाओं और मौलिक उद्भावनाओं से उसे पुनरुज्जीवित करते हुए सयुगीन समस्याओं के संदर्भ में प्रस्तुत करके अतीत कालीन आदर्शों एवं विचारों को स्पेशल बना कर सामाजिकों के आस्वाद हेतु नाट्य शिल्प एवं मंचन के समग्र गुणों को दृष्टि में रखता है और अपनी अनूभूति प्रस्तुत करता है तो उसे ऐतिहासिक नाटक की संज्ञा दी जा सकती है।

ऐतिहासिक नाटक का शिल्प विधान और उपलब्धियां

सामान्यतया इस तथ्य को मानने में किसी को आपत्ति नहीं कि ऐतिहासिक नाटक सामान्य नाटकों की अपेक्षा एक पृथक वैशिष्टय से युक्त है। अतः उसके शिल्प विधान का भी साधारण नाटकों से पार्थक्य होना स्वाभाविक है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से नाट्य शास्त्रीय ग्रन्थों में जिन तत्वों का होना नाटक के लिए आवश्यक है केवल उन्हीं मानदण्डों के आधार पर ऐतिहासिक नाटक के शिल्प विधान की समीक्षा संभव नहीं। हमारे आचार्यो ने मोटे तौर पर वस्तु नेता - रस - अभिनय और वृत्ति इन खानों में बांट कर नाटक

के सामान्य गुणों की ओर संकेत किया है पर ऐतिहासिक नाटकों के संदर्भ में दृष्टव्य है कि ऐतिहासिक नाटक कार के समक्ष सामान्य नाटक कार की अपेक्षा इतिहास और कला संबन्धी दोनों प्रतिबन्ध प्रस्तुत रहते हैं, नाटकीय प्राविधानों का प्रयोग करते समय उसे अत्यन्त सन्तुलन से कार्य लेना पड़ता है, अतीत का जीवन्त रुप प्रस्तुत करने के लिए नाटक कार में तीव्र दृष्टि की परख होना आवश्यक रहता है। ऐतिहासिक नाटक के शिल्प विधान में नाटक कार को वस्तु पक्ष और शिल्प पक्ष दोनों का विभाजक रेखा को समाप्त करके पारस्परिक सायुज्यता स्थापित करनी पड़ती है। वस्तु पक्ष के पारस्परिक अन्तर्गत अतीत के परिवेश को समाहित करके इतिहास की घटना से पात्रों की संवेदनाओं को जागरित करने वाले तत्वों का सूक्ष्म अध्ययन करके नाटक कारण शिल्प पक्ष के कलात्मक उपकरणों से ऐतिहासिक नाटक का रुपायन करता चलता है। इतिहास और नाटक दोनों के प्रति तटस्थ रह कर ही कोई नाटक कार सफल ऐतिहासिक कलाकृति प्रस्तुत कर पाता है।

वस्तु विधान

ऐतिहासिक नाटक कार प्रामाणिक इतिहास से केवल प्रख्यात घटना को ही ले ऐसा नहीं है वह उससे ख्यात पात्रों और चरित्रों का भी आकलन कर सकता है। वस्तु संगठन में ऐतिहासिक नाटककार के लिए यह आवश्यक है कि वह कलात्मक प्राविधानों मे ही न उलझ कर प्रस्तुत उसकी संयोजना इस प्रकार करे कि पृथक-पृथक् अंकों में पृथक्-पृथक् परिकल्पना होते हुए भी कथानक का सूत्र पाठकों या दर्शकों के मस्तिष्क से विच्छिन्न न हो। नाटककार के लिए यह स्वतन्त्रता है कि वह अपनी रुचि के अनुरूप नाटक को घटनात्मक, चरित्र प्रधान वातावरण प्रधान बनाए।

कथावस्तु को सरस नाटकीय एवं अपनी मान्यताओं के अनुरुप ढालने हेतु ऐतिहासिक नाटक कार के लिए रुढ़िबद्ध शास्त्रीय नियमों का पालन करने के लिए स्वतन्त्रता है अर्थात् चाहे वह उनके अनुरुप चले या फिर अपनी मान्यताओं के अनुरुप वस्तु संयोजन प्रस्तुत करे। नाटक में जो कथावस्तु नायक या रस के विरुद्ध और अनुचित हो उसका परित्याग करके उसके अतिरिक्त प्रकल्पना के लिए हमारे आचार्यो ने भी विधान प्रस्तुत किया है।

दूसरी ओर नाटककार कथावस्तु में इतिवृत निर्वाह मात्र से अपने कर्म से मुक्ति नहीं पाता उसके आगे अन्य अनेक सीमाएं है ऐतिहासिक नाटक की रचना प्रक्रिया उपशीर्षक के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है कि ऐतिहासिक नाटक एक लम्बी संपृक्त प्रक्रिया के माध्यम से रुपयित हो पाता है उसमे नाटक कार के सामने कथावस्तु का बाह्य प्राविधान ही नहीं होता प्रत्युत इतिहास से ले कर सहृदयों से संपर्क प्रस्थापन तक

की जटिल प्रक्रिया में जी कर ही नाटक कार वस्तु विधान का आधार प्रस्थापित कर पाता है जो समग्र ऐतिहासिक नाटक का सूत्र धारण करने में समर्थ हो पाती है।

ऐतिहासिक कथावस्तु का चयन करते समय नाटक कार के लिए अपेक्षित है कि वह इतिहास की जिस घटना को अपनी रचना का आधार बनाए उसका भली भांति अन्वेषण करते हुए उसकी प्रामाणिकता की परीक्षा करे ही उसे वस्तु रुप में प्रस्तुत करे। अप्रामाणिक घटना प्रसंगों को चुन लेने से वैसे गत्यात्मकता नहीं आ पाती जैसी अपेक्षित है। भारतीय आचार्य ने कथावस्तु की सफलता के लिए रसात्मकता पर बल दिया है और पश्चिमी विद्वानों ने संघर्ष तत्व पर। पश्चिमी विचारकों की दृष्टि में दर्शक का अभिनेताओं के साथ सामान्यीकरण करने वाला तत्व एक मात्र संघर्ष ही है। ऐतिहासिक नाटकों के संदर्भ में कहा जा सकता है कि दोनों का सायुज्य ही नाटक को प्रभावोत्पादक बनाने में समर्थ हो पाता है, नाटक में गत्यात्मकता एवं सम्मूर्तन के प्राविधान के लिए जितनी अधिक संघर्ष की अपेक्षा है उतनी ही रसात्मकता की भी, नाटक की प्रकर्षता के लिए भी ये दोनों तत्व आवश्यक है। दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि संपूर्ण वस्तु नाटक की इकाई के रुप में हो तथा समग्र रचनातन्त्र का आवयविक संगठन इस प्रकार प्रस्तुत किया जाय कि नाटक न केवल कलाकृति ही प्रतीत हो और न ऐतिहासिक घटनाओं का संगृहीत किया हुआ रुप भी हो।

चरित्र सृष्टि

ऐतिहासिक नाटक के रचनातन्त्र में जो दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है वह चरित्र विधान से संबद्ध है। अपनी सम्पूर्ण रचना प्रक्रिया के लम्बे क्रम में रचनाकार जिन मूल्यों, आदर्शों विचारधाराओं की स्थापना कर पाता है, नाटक उसी की अभिव्यक्ति का सजीव रुप पात्रों के माध्यम से ही हो पाता है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि लेखक अपने विचार पूर्णतः पात्रों पर ही आरोपित कर दे, पात्रों का स्वतन्त्र अस्तित्व भी होना आवश्यक है कारण इसके द्वारा नाटक की गत्यात्मकता मे व्यवधान नहीं आता यद्यपि नाटककार की अपनी दृष्टि भी पात्रों के चरित्रांकन की ओर होती है ऐतिहासिक रचनाकृति में पात्रों के चरित्रांकन का दूसरा ही रुप सामने आता है ऐतिहासिक कृति में सर्वाधिक महत्व उस युग विशेष का होता जिसका प्रस्तुती करण लेखक अपने नाटक में करता है ऐतिहासिक रचना मे चरित्र के मनोविज्ञान तथा स्वरुप का निर्धारण ऐतिहासिक समय के परिपेक्ष्य में होता है। रचना कार सबसे पहले समय को किसी बिन्दु पर संकेद्रित करता है, उसे मूल्य के रूप में परिणत करता है तब चरित्र का स्वरुप निर्मित होताहै इस तरह की रचनाओं में चरित्रों की वैयक्तिकता की खोज भी ऐतिहासिक समय में ही होती है।

इस स्पष्टीकरण से सिद्ध हो जाता है कि समय का परिप्रेक्ष्य ऐतिहासिक रचना में मूल्य के रुप में आता है तथा समय का दृष्टि कोण ही नाटक को आद्यन्त जीवन्त बनाए रहने में सार्थक सिद्ध होता है क्योंकि युगीन परिवेश की दृष्टि सूक्ष्म एवं गहरी होने के कारण ही वर्तमान और अतीत का समन्वित चित्रण सफलता पूर्वक हो पाता है।

ऐतिहासिक युग के संदर्भ के अतिरिक्त चरित्र विधान में यह भी आवश्यक है कि नाटक के प्रमुख पात्र ऐतिहासिक ही हो, यह प्राविधान इसलिए नहीं कि ऐतिहासिक पात्रों को लेने से नाटक का नाटकीय कौशल अपेक्षा कृत सुगम हो जाता है और नाटक कार सरलता से नाटकीय प्रभाव अंकित कर लेता है यह इसलिए अपेक्षित है कि जिस युग विशेष का अंकन नाटक कार को करना है उसमें यदि प्रमुख पात्र भी ऐतिहासिक हो तो उस युग का सीधे साक्षात्कार पाठकों एवं दर्शकों से सरलता पूर्वक संभव हो जाता है तथा यदि काल्पनिक चरित्रों की सृष्टि मुख्य पात्रों की अपेक्षा अधिक प्रभाव शाली होगी तो वे नाटक के ऐतिहासिक प्रभाव को दबा देंगे। ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिक चरित्रों के चुनाव में नाटक कार को अपेक्षाकृत अधिक सर्तकता वरतनी पड़ती है पात्रों का रुप नाटक कार की रचनात्मक परिकल्पना पर आधारित होता है, दूसरी ओर इतिहास के खांचे में किसी ख्यात पात्र का चरित्र एक अलग सुव्यवस्थित रुप में फिट रहता है उस बने-बनाए सांचे को कल्पना के माध्यम से नाटककार को ऐसा रुप देना पड़ता है कि पाठकों एवं दर्शकों के मन में उस पात्र विशेष का इतिहास के द्वारा जो रुप पहले से जम चुका है उसमें विशेष परिवर्तन भी न हो और रसात्मकता की सृष्टि भी हो सके। इस दृष्टि से पात्रों के चरित्रांकन मे ऐतिहासिक नाटक कार का दायित्व सामान्य नाटक कार की अपेक्षा अधिक बढ़ जाता है उसे पात्रों पर अन्य तथ्यों की भांति ही सावधानी की अंपेक्षा होती है।

इसके साथ ही समग्र नाटक को शक्तिमत्ता प्रदान करने के लिए नाटक कार के लिए यह भी आवश्यक है कि समय के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए पात्र के मनोविज्ञान को भी यथासंभव उभार सके। पात्रों के बाह्य रुप के उद्‌घाटन के साथ-साथ भी अपेक्षित होता है कि परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए पात्र के अन्तर्द्वन्द का भी सफल चित्रण करने के प्रति सप्रयत्न रहे। पात्रों की चरित्र गत विशेषताओं के अंकन में उनके उदात्त और आदर्श दोनों ही रुपों का चित्रण करना नाटक कार के लिए आवश्यक रहता है। पात्रगत मनोविज्ञान का उभार दिए बिना ऐतिहासिक नाटक में जीवंतता आना संभव नहीं और इसके बिना वातावरण चित्रण में भी सफलता नहीं मिल पाती साथ ही संप्रेपणीयता में भी बाधा आती है। अस्तु पात्रगत मनोविज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण कर उनके संस्कारों

और बाह्य प्रभावों के आधार उनके चित्रण की परख ऐतिहासिक नाटक कार के लिए आवश्यक है।

भाषा संरचना और संवाद सृष्टि

ऐतिहासिक नाटकों के रचनातन्त्र पर विचार करते समय भाषा संरनचा पर भी विचार अपेक्षित है क्योंकि ऐतिहासिक नाटक कार के आगे इतिहास का प्रतिबन्ध होने के कारण उसे भाषा संरचना एवं संयोजना के प्रति सतर्कता रखनी पड़ती है। क्या वस्तु और चरित्र जिस माध्यम से गत्यात्वक्ता प्राप्त करते हैं वह माध्यम संवाद ही बन पाते हैं जिन्हें नाटक कार अपनी प्रतिमा का संस्पर्श दे कर भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करता है। ऐतिहासिक नाटक का समस्त आवयविक संगठन संवादों से सहज प्रवहमान रुप पर ही आधारित हो पात है जिस किसी युग विशेष का जीवन दर्शन नाटक कार प्रस्तुत करना चाहता है वह संवाद और उनमें प्रयुक्त भाषा के द्वारा ही प्रस्तुत कर पाता है। कथा वस्तु की गतिशीलता एवं पात्रों के चरित्रगत वैविध्य को संवाद ही प्रस्तुत कर पाते हैं। संवादों के संबन्ध में ऐतिसाहिक के लिए यह अपेक्षित है कि उसके द्वारा नाटक हेतु प्रयुक्त संवाद सहज, प्रवाहयुक्त तार्किकता और कौतूहल युक्त हों साथ ही यह भी दृटव्य है कि ऐतिहासिक नाटक की कथावस्तु अतीताश्रित रहती है इसलिए शब्द चयन भी उसी के अनुरुप होना चाहिए यह केवल संवादों के प्रकर्ष के लिए ही उपयुक्त नहीं है वरन् पात्रों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति एवं ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि भी इसी माध्यम से संभव हो पाती है।

ऐतिहासिक नाटक में प्रयुक्त होने वाले शब्द यदि तदयुगीन सांस्कृतिक सामाजिक दार्शनिक संदर्भो से युक्त हो एंव तदनुरुप ही संवाद सृष्टि की जाय तो नाटक की अर्थवता में अद्वितीय प्रभाव की सृष्टि कर सकते हैं एवं इतिहास रस के आस्वाद में भी सहायता दे सकते हैं। शब्दों का क्रम अर्थगामी ध्वन्यात्मकता वर्णविन्यास मैं वैविध्य एवं इन सबसे भी ऊपर भाषा कलात्मक काव्यात्मक प्रयोग ऐतिहासिक नाटक की नाटकीयता में अभिवृद्धि करने में समर्थ हो पाते हैं। साधारणत: यह बात उठाई जाती है कि काव्यात्मक भाषा ऐतिहासिक नाटकीयता में बाधक होती है पर विचारणीय है कि नाटक काव्य का ही एक अंग है अस्तु भावों के प्रगेण से जिस काव्यात्मक भाषा का सृजन होता है यदि वह तद्युगीन संदर्भ में प्रस्तुत है तो दोष युक्त नहीं मानी जा सकती नाट्यात्मक अनुभूति एक प्रकार की तीव्र काव्यात्मक अनुभूति ही है जिसमे संवेदनाओं भावों और विचारों के अधिक प्रत्यक्ष और दृश्य रुपों का संजोजन होता है।

संवाद जो कि ऐतिहासिक नाटक ही क्या समस्त नाटकों के लिए प्राणवत्ता का कार्य करते हैं उनमें सहजता, स्पष्टता एवं शहनता होना आवश्यक है किन्तु ऐतिहासिक

नाटक कार के लिये अन्य उपकरणों की भांति संवाद रचना की प्रक्रिया भी जटिल हो जाती है अर्थात उसे एक ओर तो यह प्लान रखना पड़ता है कि उसके संवाद और संवादों में प्रयुक्त भाषा उसके नाटक के अनुरुप चरित्रों को प्रकट करने वाली हो दूसरी ओर यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि वे स्वाभाविक, सहज एवं व्यापी प्रभाव युक्त हों, इस दुहरी प्रक्रिया के कारण ही कतिपय ऐतिहासिक नाटक प्रभावहीन नाटकों की कोटि में प्रस्तुत हो जाते हैं। प्रत्यक्षतः सिद्ध हो जाता है कि संवादो के साफल्य के लिए ऐतिहासिक नाटक कार के लिए विचारणीय होता है कि केवल इतने से उसके नाटक की सफलता सिद्ध नहीं हो पाती कि दर्शक वर्ग उसके नाटक और उनमें पात्रों द्वारा प्रयुक्त संवादों को मौन धारण कर सुनते रहे और आनन्द लाभ करते रहे इस प्रकार उसका नाटक केवल मनोरंजन का साधन ही सिद्ध हो प्रत्युत उसके लिए यह अपेक्षित होता है कि संवादों में युगीन बोधवृति के साथ-साथ काव्यात्मक गुण भाषा की स्फीति एवं आन्तरिकता का लगाव हो जो दर्शकों को तन्मय कर सकने में समर्थ हो। नाटक साधारण काव्य से पृथक एक विशेष प्रकार के काव्य के अन्तर्गत समाहित होता है अस्तु उसकी भाषा भी एक विशेष प्रकार की काव्यभाषा बन जाती है जिसका अर्थ गाम्भीर्य, आभिजात्य गुण एवं चमक से युक्त होना अनिवार्य है। आचार्यों ने शास्त्रीय शब्दावली में जिसे विमातिलावण्य मिवांगनासु के नाम से अभिहित किया है वही लावण्य विशेष काव्यनाटक की भाषा में होना आवश्यक है। फिर ऐतिहासिक नाटक जिसमें इतिहस की नीरसता को (बिना ऐतिहासिक संदर्भ को बाधित दिए हुए) दूर करके दर्शकों का अनुरंजन करता हो उसके लिए ऐसी भाषा और तदनुरुप संवाद सृष्टि अपेक्षित है।

ऐतिहासिक वातावरण एवं रससृष्टि

नाटक रचना की चरम परिणति उसके सम्मूर्तन मे होती है, अर्थात् नाटक कार की अनुभूति और अभिव्यक्ति की चरम सार्थकता इसी में है कि वह अभिनय कर्ताओं के माध्यम से मूर्त हो सके और सम्प्रेषण द्वारा सामाजिकों के आस्वाद में सहायक बन सके। इसके लिए कोई भी रचना कार वातावरण की सृष्टि करता है। कथा वस्तु और पात्रों की गतिशीलता एक विशेष प्रकार के वातावरण निर्माण द्वार संभव हो पाती है। नाट्य रचना का यही पक्ष सर्वाधिक जटिल और उलझा हुआ होता है जहां नाटक कार की व्यक्तिगत अनुभूति की पकड़ सामूहिक अनुभूति जिसमें परिणत होती है। नाटक कार की रचना प्रक्रिया को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण अंश दर्शक वर्ग है जिसके आस्वादन के द्वारा ही नाटक कार की कृति सफल बन पाती है। एक बार में ही नाटक कार को अपनी अनुभूति समूह को संप्रेपित करनी पड़ती है। ऐतिहासिक नाटक जिसके संबन्ध में पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है। सामान्य विशुद्ध नाटकों की शिल्पविधि की अपेक्षा जटिल शिल्प विधि की आवश्यकताओं से युक्त होता है। ऐतिहासिक

नाटककार को अपने नाटक में किसी युग विशेष का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करने के लिए तत्कालीन जनजीवन का साक्षात चित्र प्रस्तुत करना पड़ता है इस चित्र का प्रस्तुतीकरण ही ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिक वातावरण कहलाता है।

इतिहास से केवल प्रामाणिक घटनाओं और पात्रों का स्वरुप चुन लेने पर ही और उनके प्रस्तुत कर देने से ही एतिहासिक नाटककार को सफलता नहीं मिलती प्रत्युत उसे उस युग की सांस्कृतिक राजनीतिक धार्मिक सामाजिक सभी प्रकार की परिस्थितियों को प्रस्तुत करना पड़ता है यदि नाटक कार ऐसा नहीं कर पाता है तो पात्रों पर वह इतिहास आरोपित ही नहीं कर सकेगा इसी ऐतिहासिक वातावरण के द्वारा ही काल्पनिक पात्रों और घटनाओं को इतिहास दृष्टि प्रदान की जाती है, यही कारण है कि ऐतिहासिक नाटकों में समस्त घटनाएं न पात्र इतिहास के न होने पर भी इस भांति संगुमेफित रहती है कि वे अनैतिहासिक होते हुए भी अनैतिहासिक नहीं प्रतीत होती। इस दृष्टि से ऐतिहासिक वातावरण ऐतिहासिक नाटक के रचनातन्त्र का अनिवार्य अंग है। डा. जगदीश चन्द्र जोशी ने फ्रेंच उपन्यास कार ड्यूमा की विचारधारा प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट किया है कि ड्यूमा ने इतिहास को एक खूंटी माना है जिस पर वह अपने नाटकों को लटकाता है इसी प्रसंग के संदर्भ में डा. जोशी ने लिखा है कि ऐतिहासिक वातावरण ही वह दीवाल है जिस पर यह खूंटी गाड़ी गयी है। यद्यपि वातावरण का प्रस्तुतीकरण उपयुक्त व दृश्यों की संयोजना द्वारा मंचनिर्देशक करता है तथापि पात्रों के मनोविज्ञान को चेतना-मय करने का कार्य नाटक कार के द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक वातावरण की पृष्ठभूमि द्वारा होता है पात्रों के मनोविज्ञान में जो सत्य प्रतिफलित हुआ है वह उस वातावरण से संबन्ध रखता है जिसमें उन्होंने सांस ली है और जिसने उनके रागविराग, ईर्ष्याद्वेष और आशा निराशा की भूमिका प्रस्तुत की है।

नाटक मे जीवन्तता लाने के लिए ऐतिहासिक वातावरण उसके अनुरुप सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। ऐतिहासिक वातावरण ऐतिहासिक नाटंक के इतिहास गुण की दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है अर्थात् ऐतिहासिक नाटक के लिए आवश्यक होता है कि इतिहास की प्रामाणिकता को प्रस्तुत कर सके ऐतिहासिक वातावरण इस दृष्टि से पर्याप्त सहायक होता है।

इतिहास रस

किसी भी नाट्य रनचा का चरम लक्ष्य आनन्दस्वाद की उपलब्धि होता है जैसे विश्व के भीतर विश्वात्मा की अभिव्यक्ति होती है वैसे नाटकों में रस की। सामाजिकों के आस्वाद हेतु बनना प्रत्येक नाट्य रचना का उद्देश्य रहा है। ऐतिहासिक नाटक की जटिल प्राविधान युक्त प्रक्रिया की संप्रेषणीयता जो कि नाटक कार की अनुभूति के लिए

आवश्यक गुण बताई गयी है वह जब व्यक्ति विशेष की होते हुए दर्शकों के स्तर पर पहुंच कर समूह रुप में उसकी अभिव्यक्ति का माध्य बन जाती है तो इतिहास रस की सृष्टि करने वाली होती है। किसी भी ऐतिहासिक कृति में इतिहास के माध्यम से उपलब्ध होने वाले आनन्दात्मक अनुभव को विचारकों ने 'इतिहास रस' की संज्ञा प्रदान की है १. ऐतिहासिक रचना में साहित्य और इतिहास के माध्यम से रचना का जो एक संश्लिष्ट रुप सामने आता है उसे इतिहास रस की संज्ञा दी गयी है। इतिहास मुख्य रुप से तथ्य परक दृष्टिकोण से संबद्ध होता है और 'रस' मुख्य रुप से संवेदना पर आधारित है। जब इतिहास साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करता है तब इतिहास रस की स्थित की संभावना उत्पन्न होती है। यह एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में साधारणीकरण की संभावना उभर आती है और यह साधारणीकरण देश काल निरपेक्ष हो क जीवन की वास्तविकता में परिणत हो जाता है। चाहे परिस्थिति अतीत की हो अथवा भविष्य की किन्तु उनका समाहार वर्तमान में हो जाता है और परिस्थितियों की प्रत्यक्षानुभूति मानसिक पटल पर उभर आती है।

यह स्पष्ट है कि इतिहास का संबन्ध अतीत की सत्य परक घटनाओं से है जिनमें किसी की संसृष्टि ही इतिहास का निर्माण करने में सहायक होती है इसकी और साहित्य की संवेदना सदैव रचनात्मक होती है। जब अतीत की घटनाएँ साहित्य के द्वारा पर उपस्थित होती है तब उनकी स्थिति इतिहास की स्थिति से कुछ भिन्न हो जाती है यह भिनता कुछ वैसी ही है जैसे किसी वन प्रान्त में प्रेत जैसे दीखने वाले किसी सूखे हुए वृक्ष के कंकाल को ऊषाकालीन किरण स्पर्श कर ले और तब उस वृक्ष के कंकाल में एक सरल कल्पना उद्भासित करने की संभावना उत्पन्न हो जाएगी। दूसरे शब्दों में जिस प्रकार कोई चुम्बक किसी लौह खण्ड को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे अपने से संबद्ध कर लेता है और उसमे भी चुम्बकत्व की स्थिति आ जाती है उसी प्रकार साहित्य के परिवेश में आ कर इतिहास साहित्य की संवेदना से युक्त हो जाता है। इतिहास और साहित्य का यह सामीप्य तीन परिस्थितियों को जन्म देता है।

जब इतिहास का सत्य परक दृष्टिकोण मनोविज्ञान की अपेक्षा रखता है।

जब ऐतिहासिकता व्यक्ति मानव की विशिष्ट भंगिमाओं के आधार पर सक्रिय होता है।

जब परिस्थितियाँ वर्तमान की वास्तविकता से ओत प्रोत हो उठती है। इन तीनों परिस्थितियों पर कुछ विस्तार से विचार करने पर इतिहास रस की व्याख्या स्पष्ट हो जाती है।

१. यह सत्य है कि अतीत में जो घटनाएं घटी हैं वे किसी न किसी प्रकार के मानसिक विचारों से उत्तेजित हो कर घटित हुई हैं वे मानसिक विकार इतिहास द्वारा सुरक्षित न केवल उनसे प्रेरित घटनाएँ ही प्रकाश में आ सकी है। जब किसी घटना के कारण और कार्य के सूत्र को स्थापित करने की आवश्यकता होती है तब उस सूत्र में सहज ही वे विकास मूलक प्रवृत्तियां प्रत्यक्ष हो जाती हैं जो घटनाओं को कोई विशिष्ट रुप दे सकें उन प्रवृत्तियों का इतिहास ही ऐसे विकारों का समूह हुआ करता है जिनमें मनोविज्ञान सहज ही अवतरित हो जाता है। इन मनोविज्ञान के माध्यम से वह सत्य उसी प्रकार साकार हो उठता है जिस प्रकार अतीत में हुआ होगा। जब इतिहास की ये घटनाएं वास्तविकता से स्पन्दित होने लगती हैं तो उनमें प्रत्यक्षानुभूति की शक्ति स्वयमेव आ जाती है और वे ही संवेदना से सम्पन्न होने लगते हैं।

(२) इतिहास का क्रियाकलाप पात्र की गतिशीलता से ही संभव होता है यह गतिशीलता वस्तुतः इतिहास का नाटकीय रूप है जिसमें समय के मंच पर कोई पात्र किसी प्रकार गतिशील हो सका एक उदाहरण द्वारा इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया जा सकता है युग के खिलौने यदि किसी सूत्र से इनका एक हाथ ऊपर उठ गया तो ये समझते हैं कि हम समस्त भूमण्डल को अभय दान दे सकते हैं। युग के अहंकार से पूर्ण धूमकेतु जो ध्रुव नक्षत्रों को भी अपने प्रकाश से तुच्छ समझते हैं।१ इस उद्धरण में पात्र के क्रिया क्लाम की समीक्षा अभिनयात्मक पक्ष की ओर संकेत करती है जिसमें कि पात्र क्रियाशील होता है यही अभिनयात्मक्ता पात्र को प्रत्यक्ष रूप देती है ऐसे ऐतिहासिक सत्य का मौन एवं अप्रत्यक्ष रूप पात्र के मनोभावों में प्रवेश कर उसका वास्तविक रूप है पाठक अथवा दर्शक से स्थापित कर लेता है इस भांति अतीत का ऐतिहासिक पात्र सजीव होकर वर्तमान की सीमाओं में अवतरित हो जाता है।

(३) यह कथन कि इतिहास अपने को दुहराता है इस दृष्टि से सार्थक है क्योंकि एक सी घटनाओं की आवृत्ति परिस्थितियों में ढाल लेती है किसी भी परिस्थिति का रूप ऐसे विशिष्ट कारणों से होता है जो मानव मन में अनेक बार उत्पन्न होते हैं और

उनके उत्पन्न होते ही घटनाओं की परिणति उसी सामाजिक ढ़ंग से हो जाती है जैसे अतीत में हुई थी। इस प्रकाश हृदय के आन्दोलित होने पर समय की एक रूपता के लिए उपादान प्राप्त हो जाते हैं मेरी कल्पना में समय एक अजस्र रूपाकार का प्रतीक है जिसमें अतीत वर्तमान और भविष्य अविभाज्य रूप से सम्बद्ध हैं। यदि अतीत की घटनाओं को हम वर्तमान की संभावनाओं से ओत-प्रोत कर दें तो वे प्रत्यक्ष रूप से हमारे सामने गतिशील हो जाएगी और उनमें वही नवीनता प्राप्त कर सकेंगे जो अतीत में घटित हो चुकी हैं। ऐतिहासिक नाटककार साहित्यबल से अतीत की किरणों का संस्पर्श कर प्रत्यक्षीकरण कर देता है।

इस भांति इतिहास रस वस्तुतः इतिहास और साहित्य का वह संधि बिन्दु है जहां जीवन की समस्त संभावनाएं अतीत में प्रतिष्ठित होकर उसे वर्तमान में ले आती हैं। "रस" के क्षेत्र में स्मृति संचारी भी ऐसा कार्य करता है जहां अतीत की घटनाएं इस स्मृति पटल पर अंकित होकर वर्तमान के क्रियाकलाप का अनुशासन करती हैं पिछली वसंत रजनी में कृष्ण के साथ किए गए रास की स्मृति का राधा के वर्तमान जीवन को भी प्रभावित करता है और वह अपने वर्तमान मनोभावों के कृष्ण के मनोहर रूप को साकार कर लेती हैं। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल के पंचम अंक में हंसपादिका के गेय श्लोक द्वारा१ दुष्यन्त की अवचेतना में शाकुन्तल की स्मृति को उभारा गया है इसके साथ ही सामूहिक रूप से दर्शकों या पाठकों की अवचेतना में एक विश्वजनीन सत्य के कौंध जाने की सूचना दी गयी एवं यह भी स्पष्ट किया गया है कि असाधारण क्षणों में किस प्रकार कवि की अन्तरीण सौंदर्य चेतना काव्यात्मक संवेदनों को जगाती है। हंसपादिका द्वारा दिया गया उभालम्भ यद्यपि दूसरी रानी के प्रति है फिर भी वासना के अस्तित्व के कारण दुष्यन्त के अन्तर में परित्यक्ता शकुन्तला की स्मृति जाग उठती है।

इस प्रकार जब इतिहास वर्तमान में साकार होता है और उससे रसात्मक संवेदनाओं की अभिनव सृष्टि होती है तब "इतिहास रस" की सृष्टि साहित्य में हो जाती है। ऐतिहासिक नाटक जिसमें अधिकाधिक नियोजित तत्वों की लम्बी परम्परा सहज स्वाभाविक रूप में कथा़यिक हो कर प्रस्तुत होती है तथा समूह के अन्तर्मन में गहरी पैंठ के साथ अनुभूति के सूक्ष्म तन्तुओं को संयोजित करती है इतिहास रस के प्रस्तुतीकरण में समर्थ हो पाती है। ऐतिहासिक नाटककार के द्वारा प्रस्तुत इस इतिहास रस का लक्ष्य यही नहीं होता कि वह अपने नाटक को केवल मनोरंजन का साधन बना कर ही छोड़ दे, प्रत्युत उसके लिए आवश्यक होता है कि अपनी गहरी भावानुभूति का संपर्क सहृदयों से स्थापित कर सके। इसके लिए उसे समग्र नाटक का रचनातन्त्र ऐसे प्रस्तुत करना पड़ता है जिसमें इतिहास प्रधान चित्रमय सारस्यगुण की व्याप्ति हो इसे ही "इतिहास रस "माना जा सकता

है। वातावरण जिसके माध्यम से दर्शक वर्ग किसी युग विशेष की झलक प्राप्त करता है "इतिहास रस" के प्रस्तुतीकरण में पर्याप्त सहायक बन पाता है।इतिहास रस की महत्ता ऐतिहासिक वातावरण की महत्ता में ही निहित है या यों कह सकते हैं कि ऐतिहासिक वातावरण ही वह स्थिर केन्द्र है जिसके चारों ओर ऐतिहासिक नाटक का वस्तु संगठन, पात्र सृष्ठि, संवादरचना भाषा प्रयोग सब कुछ चक्राकार घूमते हैं और उसी के माध्यम से शक्तिमत्ता अर्थवत्ता और जीवन्ता प्राप्त करते हैं।

ऐतिहासिक नाटकों की उपलब्धियों पर विचार करते समय यह कहना असंगत न होगा कि ऐतिहासिक नाटक अपने आप में एक महान उपलब्धि है। उसमें एक ओर तो इतिहास के मृत अतीत का पुनरूज्जीवित रूप आता है दूसरी ओर कलात्मकता का प्रश्न एक युग विशेष में किए गए व्यवहारों का प्रस्तुतीकरण करता है। दर्शक की तनमता साधारणीकरण की अवस्था मे पहुँच कर अतीत से साक्षात्कार करती है। ऐतिहासिक नाटक की एक उपलब्धि यह भी मानी जा सकती है कि उसमें देश की संस्कृति नव्यतम रूप में परिभाषित होकर प्रस्तुत होती है। अर्थात् किसी ख्यात ऐतिहासिक युग की समस्याओं में अपने युग की समस्याओं का अवलोकन कर उनके समाधान का आग्रह प्रस्तुत करने की भावना भी व्याप्त रहती है। साहित्य का एक प्रयोजन आचार्यों ने "व्यवहार विदे" बतलाया है अर्थात् साहित्य के माध्यम से व्यवहार ज्ञान की शिक्षा उपलब्ध होती है इस दृष्टि से ऐतिहासिक नाटकों के संदर्भ में विचार करें तो यह भी स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक नाटक ख्यात चरित्रों के आदर्शों को प्रस्तुत कर तदवत् आचरण करने की प्रेरणा भी प्रस्तुत करता है । ऐतिहासिक नाटक की एक अन्यतम उपलब्धि यह भी मानी जा सकती है कि नाटककार का अतीत बोध और रचनात्मक बोध परस्पर संपृक्त होकर प्रस्तुत होता है इसके माध्यम से नाटककार की दृष्टि एक ओर नाट्य रचना का प्रकर्ष देती है तो दूसरी ओर सामयिक प्रश्न और अपने दायित्व बोध की भी गहरी पैठ प्रस्तुत करती चलती है।

जातीय जीवन की उर्जस्वित कौरवमय व्याख्या का जो नया प्रयास ऐतिहासिक नाटकों में प्रस्तुत हो पाता है व रचना की विशिष्ठता की वृद्धि में ही सहायक बनता है। इतिहास रस की अनुभूति द्वारा ऐतिहासिक नाटक का लक्ष्य पूर्ण करते हुए समाज की वृत्तियों का परिष्कार करते में भी समर्थ बन पाता है। इस दृष्टि से ऐतिहासिक नाटक साहित्य के क्षेत्र का महत्व पूर्ण अवदान तत्व है।

अध्याय तृतीय

मौर्य युग का चित्रण करने वाले नाटककार और नाटक

मौर्य युग का चित्रण करने वाले संस्कृत के प्रमुख नाटक कार और नाटक

परिचय

मौर्य युग का चित्रण करने वाले संस्कृत नाटककारों में विशाख दत्त का नाम प्रमुख है जिन्होंने 'मुद्राराक्षस' नामक नाटक की रचना करके भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटना को साहित्यिक संस्पर्श देते हुए युग व्यापी बनाया है। संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में दुर्भाग्य का विषय यह रहा है कि यश के प्रति उदासीन मनीषियों ने अपने ग्रन्थों मे अपने जीवन के संबन्ध में किसी प्रकार का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। इसी कारण उनके जीवन वृत्त के सम्बन्ध में निश्चित रुप से कोई मत प्रस्तुत करना असंभव प्रतीत होता है। लेखक के नाम के संबन्ध में भी विद्वानो में मत वैपरीत्य है कुछ विद्वान प्रस्तुत नाटक के रचियता का नाम विशाखदत्त मानते हैं तथा कुछ इनका नाम विशाखदेव बतलाते है। मुद्राराक्षस नाटक में जो उल्लेख आया है वह स्पष्ट करता है कि सामन्त वटेश्वदत्त के पौत्र महाराज भाष्करदत्त के पुत्र कवि विशाखदत्त की कृति अभिनव मुद्राराक्षस नामक नाटक का अभिनय करना हैं।

मुद्राराक्षस की कुछ प्रतियो में 'महाराज भाष्करदत्त सूनोः' के स्थान पर 'महाराज पदभाकू पृथुसूनौः' पाठ प्रयुक्त हुआ है।

'दत्त' और 'महाराज' शब्दों के प्रयोग सिद्व करते हैं कि उनका आविर्भाव किसी राजवंश में हुआ था किन्तु कवि विशाख देव या विशाख दत्त का व्यक्तित्व मात्र नाटककार के रुप में प्रस्तुत हुआ है किसी राजतन्त्र के संचालक के रुप में कोई संकेत नहीं मिलता। अपने पूर्ववर्ती नाटककार 'भास' और कालिदास की यशानिर्लोभी परम्परा में विशाखदत्त ने भी अपनी कृति के सृजनात्मक पक्ष को ही प्रधानता दी है। अपने व्यक्तित्व परिचय या आत्मश्लाघा के स्पष्टीकरण को नहीं। इसी कारण वंश कवि के व्यक्तित्व परिचय के विषय में कुछ संकेत उपलब्ध होने पर निर्णयात्मक रुप से कोई मत नहीं दिया जा सकता।

'भाष्करदत्त' 'बटेश्वर दत्त ' और 'विशाखदत्त' तीनों ही नामों में जो 'दत्त' शब्द प्रयुक्त हुआ है उसके आधार पर विद्वानों ने निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि लेखक किसी 'दत्तवंश' का रहा होगा किन्तु इतिहास के विविध वंशों में किसी दत्त वंश का उल्लेख नहीं मिलता साथ ही स्वयं लेखक ने स्पष्ट कोई उल्लेख नहीं किया है।

जीवन काल

वंश की ही भांति नाटक कार के काल निर्णय के सम्बन्ध में अनेक धारणाएं विद्वानों के मध्य परिव्याप्त हैं। केवल अनुमान के आधार पर ही कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। मुद्राराक्षस के स्थिति काल का आधार बिन्दु भारत वाक्य है जिसमें प्रयुक्त 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त' शब्द के आधार पर विद्वानों ने कवि का काल निर्णय करने का प्रयास किया है। किन्तु हस्तलिखित प्रतियों के पाठान्तर से कवि का समय विषयक प्रश्न से और भी अधिक उलझ गया है। हस्तलिखित प्रतियों में 'पार्थिवोदंतिवर्मा' 'पार्थिवो रंति वर्मा' का उल्लेख मिलता है।'

'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त' का चन्द्रगुप्त नाटक का नायक है क्योंकि भरतवाक्य नाटक के पात्रों द्वारा प्रस्तुत होता है- चन्द्रगुप्त शब्द के आधार पर नाटक कार का समय दो कालो की ओर संकेत करता है- (१) मौर्य वंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त (२) गुप्त वंशीय शकारि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य । इसी आधार पर विद्वानों ने नाटककार को चन्द्रगुप्त का समसामयिक बताने का प्रयास किया है। विवाद का विषय है कि नाटक कार किस चन्द्रगुप्त का समसामयिक रहा है? भरतवाक्य (जिसके अन्तर्गत 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त' शब्द प्रयुक्त हुआ है, चन्द्रगुप्त के आश्रय में म्लेच्छों से पीड़ित धरती का वर्णन प्रस्तुत किया है) के आधार पर चन्द्रगुप्त दोनो ही कालों का चन्द्रगुप्त माना जा सकता है वयोंकि मौर्य काल में भी चन्द्रगुप्त ने शूद्रों (नन्दों) से पीड़ित पृथ्वी का उद्धार किया था, और गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त भी शकों, हूणों तथा अन्य म्लेच्छ जातियों को पददलित करके साम्राज्य अधिगत कर सका था। मुद्राराक्षस के टीकाकार ढुण्ढिराज के द्वारा की गयी कतिपय प्रान्त धारणाओं ने विद्वानों को स्वीकार करने को बाध्य किया है कि विशाख दत्त ने जो चन्द्रगुप्त शब्द प्रयुक्त किया है, उस आधार पर चन्द्रगुप्त को मौर्य कालीन नहीं माना जा सकता क्योंकि सम्पूर्ण नाटक में नाटककार ने उसके प्रति कहीं भी आदर भाव प्रदर्शित नही किया है, किन्तु इस धारणा के द्वारा ही हम नाटककार की वास्तविक घारणाओं का अनुमान नहीं लगा सकते फिर चन्द्रगुप्त के वंश के सम्बन्ध में वैसे भी इतिहास के विद्वानों के मध्य विवाद रहा है दूसरे जो विद्वान्, लेखक को चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन मानते हुए पार्थिव चन्द्रगुप्त को चन्द्रगुप्त द्वितीय मानते हैं उस सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि वही आदर भाव संबन्धी बात इस

चन्द्रगुप्त पर भी लागू होती है। यह अवश्य माना जा सकता है कि लेखक गुप्त कालीन चन्द्रगुप्त का समकालीन रहा हो किन्तु वर्णन उसने मौर्यकालीन चन्द्रगुप्त का प्रस्तुत किया हो, क्योंकि भरत वाक्य में 'अधुना' और चन्द्रगुप्त दोनों ही शब्द प्रयुक्त हुए हैं। साथ ही नाटक में जो परिस्थितियां वर्णित हुई हैं वे चौथी तीसरी शताब्दी की परिस्थितियां हैं— भरत वाक्य में जिस वर्तमान वैभवमय साम्राज्य की परिकल्पना की गयी है वह गुप्तकालीन है—ये नाटककार अपने युग की समस्याओं को अतीत की कथा द्वारा पुनरुज्जीवित कर उसे युग सापेक्ष्य बनाता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय देश हूणों से त्रस्त था अतः देश की विभिन्न परिस्थितियों को देखकर साथ ही अपने समकालीन राजा का महान पौरुष देखकर नाटककार ने मौर्य कालीन घटनाओं के परिवेश में अपने युग की घटनाओं का चित्रण किया है। स्पेन कोनो ने भी 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त' पाठ को प्रामाणिक मानते हुए नाटक के भरत वाक्य में आए चन्द्रगुप्त ने गुप्त वंशीय मानकर नाटककार को इसी राजा का समकालीन माना है।

'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' पाठ को अधिकाधिक विद्वानों ने प्रामाणिक मान कर नाटककार का समय चौथी पांचवी शताब्दी निर्धारित किया है। यही पर्याप्त उपयुक्त प्रतीत होता है क्योंकि हस्तलिखित प्रतियों के पाठान्तर में जिन अन्य तीन राजओं अवन्ति वर्मा, रन्तिवर्मा, और दन्ति वर्मा का उल्लेख मिलता है- वे राजा छठी, सातवीं, तथा आठवीं शताब्दी के राजा रहे हैं। अवन्तिवर्मा कन्नौज के राजा थे जिनका काल छटीं शताब्दी रहा है, कुछ विद्वानों ने पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः के स्थान पर 'पार्थिवोडवन्तिवर्मा' प्रमाणिक माना है- किन्तु इस पाठ के प्रामाणिक मान लेने पर तथ्यों का उपयुक्त समाधान नहीं हो पाता। इस पाठ को प्रामाणिक मानने वाले विद्वानों का विचार है कि ६०० ई. पश्चात् लगभग विशाखदत्त का स्थिति काल ठहरता है। 'पार्थिवोडवन्तिवर्मा' पाठ को प्रामाणिक मानने वाले विद्वान मुख्य रुप से कीथ प्रो० ध्रुव विन्टरनीज काशीनाथ त्रम्बक तैलंग, विल्सन मैक्डालन आदि हैं। कीथ निश्चित रूप से किसी मान्य निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे हैं। उन्होंने नाटक का रचना काल मुख्यः रुप से ९ वीं शती के पूर्व माना है। इस प्रकार विशाखदत्त का जीवन काल उन्होंने कश्मीर शासक अवन्तिवर्मा के शासन काल में माना है। एस. एन. दास गुप्ता भी इस मत से सहमत हैं।

जो परम्पराएं पार्थिवोदन्तिवर्मा का पाठ शुद्ध मानती हैं उनके अनुसार इस बात की प्रामाणिकता के अनुसार मुद्राराक्षस की रचना दक्षिण के पल्लव नरेश के शासन काल में हुई जिनका काल सातवीं-आठवीं शताब्दी के मध्य ठहरता है - किन्तु समस्या इस बात की है - कि दन्तिवर्मा के रुप में उल्लेख तीन काल के शासकों का मिलता है - (१) राष्ट्रकूट का राजा दन्तिवर्मा जिसका काल ६०० ई. है (२) लाट का राजा दन्तिवर्मा जिसका स्थिति काल ८५० ई. है तथा (३) पल्लव नरेश दन्तिवर्मा जिसका समय ७७९-८८३

ई. में है - प्रश्न इस बात का रह जाता है कि किस दन्तिवर्मा पाठ के आधार पर विशाखदत्त का सम्बन्ध किस शताब्दी से जोड़ा जाय ? यदि विविध राजाओं के समकालीन विशाख दत्त को ठहराने में भरत वाक्य के माध्यम से लेखक ने जिस गौरव की ओर संकेत किया है वह समाप्त हो जाता है - अतः यह मत भी भ्रामक और अप्रामाणिक ठहरता है।

एक पाण्डुलिपि में चन्द्रगुप्त के स्थान पर पार्थिवोरन्तिम वर्मा पाठ मिलता है किन्तु इस मत के प्रमाण में कोई स्पष्ट विवरण नहीं मिलते।

कुछ विचारकों की यह भी धारणा रही है कि इस नाटक की रचना संभवतः गुप्तकाल में हो चुकी थी किन्तु इन राजाओं के समय अर्थात सातवीं आठवीं शताब्दी में प्रयुक्त नाटक का अभिनय किया गया होगा और अभिनय कर्ताओं के द्वारा तत्कालीन राजाओं की प्रशस्ति के लिए पाठान्तर किया जाना अनुपयुक्त नहीं प्रतीत होता क्योंकि नाटक की रचना शैली इस काल के युग के अनुरूप नहीं है।

दूसरी ओर यह भी प्रश्न है कि यदि विशाखदत्त को कन्नौज के राजा अवन्तिवर्मा का समकालीन मानते हैं तो फिर स्थाप्पीश्वर के महाराजा जिनका यशोगान बाण ने किया था दोनों को एक दूसरे से परिचित होना चाहिए जब कि दोनों की कृतियों में एक दूसरे के परिचय का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

मुद्राराक्षस के स्थिति काल का संतोषजनक प्रमाण प्रस्तुत करने वाली दो कृतियां हैं, एक धनंजय कृत दशरुपक तथा दूसरी भोजकृत सरस्वती कण्ठाभरण - मुद्राराक्षस के श्लोक इन दोनों ही कृतियों में मिलते हैं। ये दोनों ही कृतियाँ १० वीं ११ वीं शताब्दी में रची गयी इनमें उदधृत श्लोक स्पष्ट उल्लेख देते हैं कि नाटक की रचना दसवीं शताब्दी पूर्व हो चुकी थी।

इस विवाद ग्रस्त समस्या के निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ग्रन्थ की रचना चौथी - पांचवी शताब्दी में की गयी - साथ ही उसमें जिस घटना का उल्लेख है वह भारतीय इतिहास की अविस्मरणीय साम्राज्योचित परिकल्पना प्रस्तुत करने वाली घटना रही है जो कि आगे आने वाले युग को तथा इतिहास को प्रभावित करती गयी है - वास्तविकता तो यही है कि साहित्य अक्षय निधि होता है, युग युगान्त तक ऊपर रहने वाली निधि। अस्तु रचनाकार का स्थिति काल कुछ भी रहा हो, संस्कृत के महान नाटकों के रुप में मुद्राराक्षस एक महान उपलब्धि है।

नाटक लेखक नाट्यशास्त्र का ज्ञाता होने के साथ-साथ कौटिलीय अर्थशास्त्र का भी प्रकाण्ड ज्ञाता रहा है इसे मानने में किसी को आपत्ति नहीं। राष्ट्रीय जीवन की दार्शनिक

अभिव्यक्ति राजनीतिक आदर्शवादी तथा मानवतावादी रुप में से प्रस्तुत नाटककार का दृष्टिकोण निस्संदेह नाटक कार के व्यक्तित्व को अभिप्रमाणित करने में समर्थ हुआ है। नाटककार के व्यक्तित्व की यही महत्ता रही है कि अपने बहुमुखी ज्ञान के परिपार्श्व से नाटक को संयुक्त करके भी नाटककार ने उसे नाटक बना रहने दिया है - इतिहास या दर्शन शास्त्र या अर्थशास्त्र का ग्रन्थ मात्र नहीं।

नाटक के मूलस्रोत

मुद्राराक्षस नाटक के इतिवृत्त के रुप में कवि ने जिस घटना को चुना है वह भारतीय इतिहास की पर्याप्त महत्वपूर्ण एवं विख्यात घटना है। अस्तु मूलस्रोत के रुप में लेखक के समक्ष विविध धारणाओं का प्रस्तुत हो जाना कोई आश्चर्य का विषय नहीं।

नाटककार ने घटना का चयन नन्द साम्राज्य का अन्त तथा मौर्य साम्राज्य का उदय जो भारतीय इतिहास की दो युगों की संधि बेला रही है, से किया है मौर्य युग और उसकी प्रमुख ऐतिहासिक विशेषताओं वाले अध्याय में स्पष्ट संकेतित किया जा चुका है कि मौर्य साम्राज्य के इतिहास की विविध घटनाओं का आधार विष्णु पुराण, वायु पुराण जैन ग्रन्थ परिशिष्ट पर्वन, त्रिकांशेष महावंस दिव्यावदान आदि रहे हैं। गुणाढ्य की बृहत्कथा के रुपान्तर बृहत्कथामंजरी तथा कथा सरित्सागर में भी चन्द्रगुप्त और चाणक्य से सम्बन्धित कथाओं का उल्लेख मिलता है। कथानक जिसका चयन नाटककार ने किया है ऐतिहासिक ही नहीं, वरन् पर्याप्त प्रसिद्ध रहा है अतः स्वाभाविक था कि इन विविध ग्रन्थों में बिखरी हुई सामग्री को अपनी कल्पना के माध्यम से उसे नवीनता दे कर नाटक कार प्रस्तुत करता।

दशरुपककार धनंजय ने दशरुपक के प्रथम प्रकाश में उद्धृत करते हुए लिखा है कि मुद्राराक्षस का मूलस्रोत बृहत्कथा है - इसके आगे दशरुपक कार ने उस घटना का उल्लेख श्लोक के द्वारा किया है जिसमें चाणक्य ने कृत्या द्वारा नन्द का नाश किया।

इस तथ्य पर विद्वानों ने आपत्ति उठाई है जो तर्क संगत है। प्रस्तुत श्लोक संस्कृत में है जब कि बृहत्कथा पैशाची प्राकृत में है अतः ये अंश बृहत्कथा के नहीं माने जा सकते हैं, हाँ बृहतकथा का रूपान्तर जो कि बृहत्कथा मंजरी तथा कथासरित्सागर के नामों से हुआ उनमें अवश्य ऐसे उल्लेख हैं, किन्तु बृहत्कथा मंजरी तथा कथा सरित्सागर को इस नाटक का मूलस्रोत नहीं माना जा सकता क्योंकि ये कृतियां मुद्राराक्षस के परवर्ती काल की है। इतना निश्चित है कि वररुचि जिसका उल्लेख बृहत्कथा में आया है ३२० ई. पू. रहा था जबकि चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन स्थापित होने वाला था, यह भी निश्चित ही है कि गुणाढ्य का आश्रय दाता राजा सातवाहन वंशीय आन्ध्रराजा था। पैशाची

प्राकृत और संस्कृत के उद्धरणों के संबन्ध में तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि संभवत इन परवर्ती लेखकों ने प्राकृत का संस्कृत रुपान्तर करके विचार प्रस्तुत किए हो, दूसरे यह भी विद्वानों ने स्पष्ट कर दिया है कि छठी शताब्दी के बाद बृहत्कथा अपने मूल रुप में अनुपलब्ध थी अतः परवर्ती लेखकों द्वारा किए गए परिवर्तन आश्चर्य का विषय नहीं बनते, साथ ही ये विविध ग्रन्थ कथा ग्रन्थ है जिनके अन्तर्गत वास्तविकता के साथ कल्पना की संगति हो जाने पर नवीन उद्‌भावनाओं का प्रस्तुत हो जाना कोई असंभव बात नहीं प्रतीत होती।

इन कथा ग्रन्थों ने जो वार्ताएं उल्लिखित रही वे लेखक पर किंचित् प्रभाव डालने में समर्थ हो सकी हैं, वस्तुतः लेखक का मूलस्रोत बना है कौटिलीय अर्थशास्त्र क्योंकि कौटिल्य या चाणक्य की नीति के माध्यम से एक विरल नाट्य दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाला, संस्कृत साहित्य का यह अकेला ही नाटक है जो कि अतिशय विवादग्रस्त ऐतिहासिक कथानक की यथासंभव संरक्षा करते हुए उसका परिष्कार कर सका है - कौटिल्य जो कि चन्द्रगुप्त का समकालीन था अस्तु उसके अर्थशास्त्र की रचना भी चन्द्रगुप्त के शासन की सुव्यवस्था के लिए ही की गयी थी। मुद्राराक्षस में भी नाटक कार का लक्ष्य राजनीति कौशल प्रदर्शन करना अधिक है नाट्य शास्त्रीय कथानक आदि का वैभव दिखाना नहीं। पिर भी कवि का कौशल परिवेक्षणीय है कि वह कौटिल्य का व्यक्तित्व भी अपने ऊपर नहीं छाने देता उसकी राजनीति से सूक्ष्म संकेत भर प्राप्त करता है और उसे अपने समसामयिक राजतन्त्र का संस्पर्श दे कर मौलिकता देता चलता है -

कथा का वृत्त अवश्य पुराणों तथा जैन और बौद्ध ग्रन्थों से गृहीत है किन्तु उसकी आत्मा लेखक की अपनी आत्मा है जिसमें चाणक्य के व्यक्तित्व में अर्थशास्त्र के प्रणेता कौटिल्य का व्यक्तित्व समाहित होने पर भी लेखक का ही व्यक्तित्व बोलता है जो अपनी समकालीन राजनीति का प्रतिनिधित्व करता है। मुद्राराक्षस में लेखक ने चाणक्य को चन्द्रगुप्त से महान दिखाने का प्रयास किया है जिसके बारे में सभी पुराण तथा स्वयं कौटिलीय अर्थशास्त्र एक मत हैं। कामन्दकीय नीति सार जो कौटिल्य अर्थशास्त्र पर आधृत ग्रन्थ है उसमें भी स्पष्ट किया गया है कौटिल्य के प्रभाव से ही चन्द्रगुप्त मगध राज्य अधिगत कर सका तथा चाणक्य ने नन्दों से प्रपीड़ित धरती शस्त्र और शास्त्र सभी का उद्धार किया। यहां भी चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर अधिष्ठित कर देने पर चाणक्य के हृदय में जो सुख और शान्ति व्याप्त कर देने वाली भावना है वह उसी पुरानी परम्परा के आधार पर है।

अतः मूलस्रोत के संबन्ध में कहा जा सकता है कि लेखक ने प्रामाणिक व बिखरी हुई व्यापक सामग्री से अपना इत्तिवृत्त खोजा है जो पुरातनता के परिपार्श्व में

रह कर भी अपना एक नवीन आधार बनाता गया है तथा सत्यता के प्रति सजग रहने वाले नाटककार के कौशल के कारण जहां एक ओर इतिहासपरक दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सका है वहीं दूसरी ओर साहित्य के क्षेत्र में भी ऐसे रुपक की वृत्त रचना करने में समर्थ हुआ है जो उतनी ही उलझी है जितनी राजनीति। नाटक के मूलस्रोत मुख्यरुप से तद्युगीन प्रामाणिक इतिहास पुराण ग्रन्थ बृहत्कथा, महावंश, परिशिष्ट पवन कौटिल्यीय अर्थशास्त्र एवं कामन्दकीय नीतिसार रहे हैं - फिर भी प्रबन्ध रचना का साफल्य एक मात्र लेखक की औचित्य दृष्टि एवं प्रबल शक्ति के आधार पर रहा है।

संस्कृत नाटककारों की सापेक्ष्य विशेषताएं

संस्कृत नाटक अपने समग्ररुप में मनीष्यों के प्रातिमचक्षु तथ्यों के प्रशंसनीय पुंज की भांति उनकी साहित्यिक कला के चरम संभार के रुप में न केवल संस्कृत साहित्य पत्युक समग्र भारतीय साहित्य की प्रशस्त उपलब्धि माना गया है। संस्कृत नाटक कारों की आदर्शवादी दृष्टि मुख्यतया लोक धर्मिता की अपेक्षा नाट्यधर्मी की ओर अधिक उन्मुख रही है। कालिदास के नाटक जीवन के उदात्त तत्व का अभिनिवेश प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं युग चित्रण के अन्तर्गत भी उनकी भावनाओं का प्ररोचन मुख्यतया उदात्त दृष्टकोंण को ले कर आगे चलता है। इतिहास काव्य परम्परा से प्रभावित होने वाले संस्कृत के प्रारम्भिक नाटक कार मुख्यतया जीवन के आदार्शात्मक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने में ही सफल रहे हैं। भास और कालिदास के नाटकों में मुख्यतया प्राचीन आदर्शों, मान्यताओं और मर्यादाओं का ही आदर्शवादी रुप प्रतिबिम्बित मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत आध्यात्मिकता की प्रमुखता होने के कारण जीवन की वास्तविकता से परे सुखान्त दृष्टिकोण ही इन नाटककारों की दृष्टि में युग सापेक्ष्य रहा है। प्रारम्भिक संस्कृत नाटककारों के इस जीवन दर्शन में जिसमें समाज के प्रगति शील तत्व दब रहे थे गत्यात्मकता की अपेक्षा स्थिरता अधिक विद्यमान दिखाई देती यद्यपि रसात्मक परिवेश के कारण ये नाटक सहृदय भावुक के अपनी रसधारा में निमज्जित कर लेने में किसी अंश में न्यून कोटि के नहीं कहे जा सकते, उनके नाटकों की शाश्वतता का यही आधार बिन्दु है। तथापि संस्कृत के महत्तम नाटक कार कालिदास जीवन के विधान और संसार की कार्यप्रणाली के नियम में उद्विग्नता का तनिक भी अनुभव नहीं करते वे बिना किसी संदेह एवं असंतोष के ही भारतीय समाज व्यवस्था को स्वीकार कर लेते है।

एक सुनिश्चित ब्राह्मण व्यवस्था के आदर्शों को पूर्णतया कालिदास ने स्वीकारा है फिर भी मानव जीवन के गम्भीर प्रश्नों के विषय में कालिदास ने हमें कोई संदेश नहीं दिया है। यथार्थ जीवन की कठोरता से दूर उनके नाटक जीवन के उलझे प्रश्नों

को सुलझाने का कोई दृष्टि नहीं देते। जीवन के प्रति सुखान्त दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाले भवभूति ने जीवन की जटिल समस्याओं और उनके सुलझाने की कठिनाइयों का संघर्ष दिखाते हुए करुण रस प्रति अपनी भाव रख कर भी अपने नियम के अनुसार सामरस्य की ओर मुड़कर नाटक की नाट्यात्मकता को शिथिल सा बना दिया है। यह उनके द्वारा उठाया गया आभार तो रहा ही साथ ही इसके प्रति ब्राह्मण जीवन दर्शन भी उत्तरदायी कहा जा सकता है संस्कृत नाटक का समूचा इतिहास इस बात का साक्षी है कि ब्राह्मण जीवन दर्शन ने नाटक संबन्धी दृष्टिकोण को कितने गम्भीर रुप से संकुचित कर दिया है।

संस्कृत नाटकों में जीवन के प्रति नवीन आदर्शों की संस्थापना नयी मान्यताओं की सृष्टि नाटक संबन्धी आधुनिक दृष्टिकोण तथा जीवन के कठोर यथार्थ का मैनीफैस्टो प्रस्तुत करने वाले नाटक शूद्रक कृत मृच्छकटिकम् तथा विशाख कृत मुद्राराक्षस हमारे समक्ष अपवाद रुप में प्रस्तुत होते हैं। साहित्य को अपने समाज के प्रतिबिम्ब के रुप में प्रस्तुत करने वाले इन नाटककारों ने परम्परा से परे नाटकों का लोक धर्मी रुप प्रस्तुत करते हुए गम्भीर सामाजिक चेतना तथा व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। साहित्य इन नाटककारों के लिए कल्पना की उड़ान नहीं था प्रत्युत जीवन के भले बुरे रूपों का आकार था जिसमें मानव समाज के प्रगति शील तत्वों का क्रमिक प्रत्याख्यान प्रस्तुत होता है। संस्कृत के ये दोनों नाटक अन्य नाटककारों की सापेक्ष्य विशेषताओं की दृष्टि से इसीलिए विरल कहे जा सकते हैं कि इनके अन्तर्गत केवल धार्मिक चर्चाएं या उन्मुक्त प्रेम की मधुरिमा परिव्याप्त नहीं है प्रत्युत इनमें मानव मनोविज्ञान उत्कर्ष प्रदर्शित हुआ है। साथ ही समाज के विभिन्न रुपों का यथातथ्य निरुपण भी किया गया है। अब कवित्व का प्रोचन उदात्त जीवन न रह कर सामान्य जीवन बन जाता है और कवियों की रचनाएं हमें अवदात जीवन की ओर न ले जा कर जीवन के उन कोनों में ले जाती हैं जिनका होना तो जीवन में अनिवार्य है किन्तु जहां प्रकाश की अपेक्षा अन्धकार की मात्रा अधिक रहा करती है।

शूद्रक का मृच्छकटिकम् शिष्ट जनों के सामाजिक जीवन का आलेख्य प्रस्तुत करने में समर्थ है तो विशाख का मुद्राराक्षस राजनीतिक विनियोग की दृष्टि से तात्कालिक राजनीतिक पक्ष का उद्घाटन करने वाला अपने आप में अकेला नाटक है। शूद्रक अपने युग के जन सामान्य की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है और विशाखदत्त राजनीतिक जीवन से अपने बुद्धि वैभव को व्यक्त करता। वस्तु तत्व की दृष्टि से राजनीतिक कथावस्तु का चयन करने की दृष्टि से मुद्राराक्षस संस्कृत नाटकों की अपने आप में एक महान उपलब्धि कहा जा सकता है। दरबारी जीवन में पारस्परिक राजनीतिक चक्रों का प्रस्ततीकरण इस नाटक के द्वारा हुआ है। प्रस्तुत नाटक काव्य के दृष्टिकोण से न लिखा

जाकर नाटकीय विनियोग की दृष्टि से ही लिखा गया है। सैद्धान्तिक रुढ़यों को खण्डित करके प्रत्येक क्षेत्र में मौलिकता का रुप ले कर चलने वाला यह नाटक युगचित्रण का भी मौलिक एवं संघर्ष शील रुप प्रस्तुत कर सका है। नाटक के सात अंकों में मुख्य रुप चाणक्य और राक्षस की नीतियों का युद्ध वर्णित हुआ है। जो एक विशिष्ट राजक वातावरण को जन्म देता गया हो उसमें कालिदास या शूद्रक के नाटकों का रोमानी वातावरण नहीं, न हर्ष की नाटिकाओं की विलासवत्ता है, न भट्टनारायण के नाटक की भयानक दृश्यों की योजना ही फिर भी मुद्राराक्षस में अपनी निजी विशेषता है जो अन्य किसी संस्कृत नाटक में नहीं पायी जाती।

प्रभावात्मकता की दृष्टि से नाटक की वस्तु योजना पर्याप्त सुगठित है नाटक की गत्यात्मकता दो विरोधी व्यक्तित्वों के संघर्ष के कारण आद्यन्त बनी रही है - अपने व्यक्तित्व की केन्द्रशक्ति के रुप में नाटक कार के द्वारा राजनीतिक आदर्शवादिता सम्पूर्ण नाटक में अभिव्यक्त हुई है, रसाभिव्यक्ति में भी सामाजिक राजनीतिक जीवन की उन्नति शीलता का जो विवेचन हुआ है वह मुद्राराक्षस की अपनी अलग विशेषता है जो अन्य नाटकों मे उपलब्ध नहीं है।

संक्षेप में संस्कृत नाटक कारों की उपरिलिखित सापेक्ष्य विशेषताओं का अवलोकन करते हुए हम कह सकते हैं कि विशाख का मुद्राराक्षस युग जीवन के प्रति मौलिक दृष्टिकोण का परिचय देने वाला प्राणवान नाटक है जिसकी जीवन्त विशेषताएं समग्र नाटक को केवल नाटक की दृष्टि से ही व्यापी प्रभाव वाला नहीं बनाती प्रत्युत इसलिए कि साहित्य का वास्तविक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के लिए उसमे पर्याप्त शक्ति है। उसका घटना चक्र, जीवन के अनेकानेक गत्यात्मक चित्र, तथा पात्रों का चरित्रांकन ये सब ऐसी विशेपताएं हैं जो विपुल संस्कृत नाट्य साहित्य के क्षेत्र में विशाखदत्त को एक पृथक रूप में प्रस्तुत करती हैं। इस दृष्टि से मुद्राराक्षस का विरल वैशिष्ट्य अपने आप में एक मील स्तम्भ के रुप में परिकल्पित किया जा सकता है।

मौर्य युग का चित्रण करने वाले हिन्दी नाटककार और नाटक

विशाख के मुद्राराक्षस के द्वारा मौर्य युग को जो साहित्यिक व सांस्कृतिक रुप मिला हिन्दी नाटकों में आकर वह अनेक रुपों में अभिव्यक्त हुआ है आधुनिक काल की हिन्दी गद्य के विकास में नाटकों की अधिकाधिक रचनाएं तो हुई, साथ ही तद्युगीन जीवन का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने के लिए ऐतिहासिक कथावस्तु के प्रति नाटककारों की दृष्टि अधिक आग्रही रही है, इतिहास के विविध क्षेत्रों से कथावस्तु का चयन करने वाले नाटक कारों की दृष्टि का मौर्य युग की ओर जाना भी स्वाभाविक ही था, जिसका साहित्यिक प्रतिष्ठापन इन नाटकों की रचना के काफी समय पूर्व विशाखदत्त मुद्राराक्षस द्वारा कर

चुके थे - ऐतिहासिक घटनाओं का कालक्रम भंग न हो इसलिए इस काल की रचना करने वाले हिन्दी नाटकों को तीन वर्गों में विभाजित करना अपेक्षित प्रतीत होता है—

पूर्व मौर्य युग

मौर्य साम्राज्य युग

उत्तर मौर्य युग

पूर्व मौर्य युग

वितस्ता की लहरें

सिकन्दर के आक्रमण के समय खण्ड-खण्ड विभक्त भारत को एकता के सूत्र में बांधने का अप्रतिम कार्य करके विष्णुगुप्त या आचार्य चाणक्य ने जिस अप्रतिम मेधा का परिचय दिया उसका आधार ले कर विकसित होने वाला कथानक लक्ष्मीनारायण मित्र कृत 'वितस्ता की लहरें' नामक नाटक में परिव्याप्त है। पूर्व मौर्य युग का चित्रण करने वाले नाटक हिन्दी में अन्य भी लिखे गए हैं उदाहरण के लिए सुदर्शन कृत, 'सिकन्दर' लाला शालिग्राम का 'पुरु विक्रम' तथा हरिश्चन्द्र सेठ कृत' 'पुरु और ऐलेक्जेंरडर' आदि नाम लिए जा सकते किन्तु यहां हमारा अभिप्रेत मुख्य रुप में उन नाटकों को विवेचन बनाना रहा है जिनकी अधिकांश घटनाएं मौर्य साम्राज्य की स्थापना का हेतु बनी अर्थात् वे ही नाटक आधार परक बनाए गये हैं जिनमें चाणक्य और चन्द्रगुप्त का व्यक्ति उभर कर सामने आया है ।

हिन्दी नाटकों के रचना काल तक हमारे समक्ष ऐसी कोई समस्या नहीं आती जिससे नाटककारों का व्यक्तित्व परिचय समुपलब्ध न हो। प्राचीन व आधुनिक भारतीय व विदेशी तत्वों के योग से निर्मितक्तित्व वाले लक्ष्मीनारायण मिश्र की जन्मतिथि पौष शुक्ल १ सम्वत् १९६० विक्रमी समस्त विद्वानों द्वारा मान्य है। प्रारम्भिक जीवन से साहित्य के प्रति अगाध अभिरुचि ने लेखक को हिन्दी के प्रशस्त नाटककार के रुप में प्रस्तुत किया। विश्वजनीन तत्वों से आपूर्ण रहकर ही लेखक का व्यक्तित्व न केवल देश वरन समाज राष्ट्र और मानव -मानव के मध्य सद्भाव स्थापन का आधार बना है ऐसे ही व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उनके ऐतिहासिक व सामाजिक नाटकों के अन्तर्गत हुई हैं - मिश्र जी के गम्भीर पांडित्य अप्रतिम प्रतिभा भावुक कल्पना शीलता आदि से मिश्रित विचारधारा ने हिन्दी नाटकों को एक नवीन दृष्टि प्रदान की है। राष्ट्रीयता का ओजस्वी रुप मिश्र जी के व्यक्तित्व में व्यापक रुप से विद्यमान है। प्रबल राष्ट्रीय भावना के परिणामस्वरुप ही उनके ऐतिहासिक नाटकों में अपूर्व जीवन्तता विद्यमान है। समस्या

नाटकों की अधिकाधिक रचनाओं द्वारा मिश्र जी ने हिन्दी जगत् के लिए एक नूतन सरणि प्रस्तुत की जो सामयिक दृष्टिकोण से आवश्यक थी। कुल मिला कर कहा जा सकता है कि हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में मौलिकता तथा नवीनता की ससृंष्टि के साथ मिश्र जी ने साहित्य का वह दाय प्रस्तुत किया जिसके आधार पर साहित्य के क्षेत्र में मिश्र जी और उनका शाश्वत महत्व निर्धारित हो चुका है।

नाटक के मूल स्रोत

संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक नाटक "वितस्ता की लहरें" जगद्‌विजयी सिकन्दर और कैकय नरेश पुरु के युद्ध की कथा ले कर रचा गया है। नाटक के मूल स्रोत के संबन्ध मे भी हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में संस्कृत नाटकों जैसी कोई समस्या नहीं प्रस्तुत होती। जिस युग में हिन्दी नाटकों की रचना हुई है उस युग तक आते आते इतिहास की प्रामाणिक खोज भारतीय और विदेशी दोनों ही विद्वानों द्वारा अधिक स्पष्ट रुप में हो चुकी थी। वितस्ता की लहरें नामक नाटक की रचना के पूर्व इसी कथावस्तु को ले कर रचे गए नाटकों में लाला शालिग्रम के 'पुरुविक्रम' हरिश्चन्द्र सेठ के 'पुरु' और अलेक्जेंडर' तथा सुदर्शन के 'सिकन्दर' नामक नाटक उल्लेख है किन्तु इन पूर्ववर्ती नाटक कारों द्वारा ली गई कथावस्तु पर ही अपने नाटक की रचना करके मिश्र जी ने नई मान्यताएं प्रस्तुत करके अपने दृष्टिकोण का परिचय दिया है। यद्यपि इस नाटक के मूल में लेखक की दृष्टि अधिकांश रुप सांस्कृतिक एकीकरण की ओर अधिक उन्मुख रही है इसीलए इतिहास तत्व की रक्षा अधिक नहीं हो सकी है तथापि इतिहास प्रसिद्ध घटना को ले कर लेखक ने जिस रूप की उद्‌भावना की है सामयिक संदर्भ में इतिहास की जैसी व्याख्या की है, उसके रचनात्मक मूल्य से निरपेक्ष नहीं रहा जा सकता।

नाटक की भूमिका में स्वयं लेखक ने स्पष्ट किया है इस नाटक का आधार वितस्ता के तट पर यवन सेना का पहुंचना चोरी से वितस्ता पार करना और कैकय वीर पुरु के साथ उसका युद्ध है। नाटक कार ने योरोपीय इतिहास कारों द्वारा प्रस्तुत की गयी भारतीय इतिहास की मान्यताओं को बिल्कुल प्रश्रय नहीं देना चाहा है। अर्थात् यारोपीय इतिहासकारों द्वारा की गयी यह व्याख्या कि सिकन्दर भारत विजयी हुआ, इसका खण्डन लेखक ने अवश्य किया है वे विश्वास करते हैं कि सिकन्दर के आक्रमण से संबन्धित कोई भी उल्लेख पुराण नहीं देते और न ही प्राचीन भारतीय इतिहास में इस आक्रमण को स्वीकारा गया है। अस्तु इतिहास की प्रसिद्ध घटना सिकन्दर का आक्रमण ये अवश्य स्वीकारते हैं। किन्तु इस शर्त के साथ उस आक्रमण द्वारा भारत और भारतीय संस्कृति को कोई विशेष क्षति नहीं पहुंची। इतने पर भी लेखक ने विदेशी इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत की गयी मान्यताओं से लेखक पूर्णतया विमुख नहीं रह सका है। उदाहरण के

लिए शपथ लेने के उपरान्त भी जब सिकन्दर अश्मक दुर्ग के बालको और नारियों पर निर्मम अत्याचार करता है उसका उल्लेख डियादोरस ने स्पष्ट रुप से किया है। सिकन्दर की बर्बरता का जो उल्लेख लेखक ने किया है वह प्लूटार्क के आधार पर है - सिकन्दर का यह आचरण उसके सामरिक यश पर एक काला धब्बा है।

चोरी से वितस्ता पर का उल्लेख एरियन के वक्तव्य पर आधृत प्रतीत होता है - एरियन ने लिखा है - सिकन्दर ने मार्ग चुराने का निश्चय किया और अपने ग्यारह हजार योद्धाओं को ले कर रात के अंधेरे में जब कि घनघोर वर्षा हो रही थी, झेलम पार कर गया। चोरी से नदी पार करने का उल्लेख भारतीय इतिहासकार स्मिथ ने भी प्रस्तुत किया है - 'सिकन्दर ने मार्ग चुराने का निश्चय किया - जन घोषणा करके शत्रु की सतर्कता को फुसलाने की चेष्टा की कि वह मौसम के बदलने तक रुक जाना चाहता है और इस घोषणा की सत्यता को रंग देने लगा। उसकी गतिविधि तूफान वर्षा एवं बिजली से छिप गयी। सिकन्दर के पास पुरु का साथ देने का संदेश भेजा जाना भी कर्टियस के आधार पर है।

नाटक के पात्रों में किया गया शशिगुप्त का उल्लेख पाश्चात्य विद्वानों के आधार पर ही किया गया प्रतीत होता है। विदेशी इतिहास कारों ने जिसे सिसिकोहस या सैंड्रोकोहस के नाम से अभिहित किया है वही शशिगुप्त के नाम से प्रयुक्त किया गया है शशिगुप्त नाम प्रयुक्त करने में हरिश्चन्द्र सेठ के नवीन अनुसंधान के आधार पर प्रस्तुत की गयी धारणा का प्रभाव भी प्रतीत होता है।

विष्णुगुप्त या कौटिल्य के संबन्ध मे लेखक ने महावंस परिशिष्ट पर्वन पाटलिपुत्र की कथा आदि का आधार लिया है जिनमें स्पष्ट उल्लेख है कि चाणक्य तक्षशिला वासी ब्राह्मण था और उसी ने चन्द्रगुप्त को मौर्य साम्राज्य पर अधिष्ठित किया। विष्णुगुप्त की अप्रतिम मेधा का प्रदर्शन समस्त पूर्ववर्ती ऐतिहासिक व साहित्यिक कृतियों के आधार पर किया गया है विष्णुगुप्त मौर्य अरिस्टाटिल की नीतियों की जो टकराहट लेखक ने प्रस्तुत की है उस पर बहुत कुछ मुद्राराक्षस का प्रभाव माना जा सकता है जहां नन्द का अमात्य राक्षस और चाणक्य दोनों अपनी मेधा का प्रयोग करते हुए अपने माध्यम से राजकुमारों को अपने लक्ष्य तक पहुंचना चाहते हैं। प्रस्तुत नाटक में नन्द वंश का उल्लेख नहीं आया है संभवतः लेखक ने उसी परम्परा में दो नीतिविदों की नीतियों द्वारा दो संस्कृतियों की टकराहट प्रस्तुत की है।

तत्कालीन परिस्थितियों के चित्रण हेतु सिकन्दर के आक्रमण के उत्तर भारत के छोटे-छोटे गणतान्त्रिक राज्यों का जो विवरण लेखक ने प्रस्तुत किया है उसका आधार महाभारत, पाणिनि और कौटिल्य द्वारा उल्लिखित गणतान्त्रिक राज्य कहे जा सकते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि लेखक ने सांस्कृतिक उत्कर्ष की ओर अधिक दृष्टि रखने के कारण कल्पना का प्रचुर प्रयोग किया है। इससे ऐतिहासिक सत्य स्पष्ट होने की अपेक्षा दब गए हैं फिर भी इस सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक नाटक इतिहास का वृत्त नहीं होता वह एक साहित्यिक कृति होता है जिसमें लेखक परिस्थितियों और उद्देश्य के अनुरुप काल्पनिकता की सृष्टि करता चलता है, 'वितस्ता की लहरें' में अपने लक्ष्य की पूर्ति करते हुए लेखक ने जिन ऐतिहासिक आधारों को अपनाया वे पूर्णतया प्रामाणिक इतिहास के आधार पर है भारतीय संस्कृति के उत्कर्ष की दृष्टि से लेखक की आकांक्षा यह है कि मानवता के घाव पर शीतल विलेपन लगे और वितस्ता की लहरों में अनुराग का जल लहरें।

मौर्य साम्राज्य युग

चन्द्रगुप्त (बद्रीनाथ भट्ट)

मौर्य साम्राज्य काल का चित्रण प्रस्तुत करने वाले नाटककारों में कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम बद्रीनाथ भट्ट का नाम आता है। भट्ट जी की प्रकृति बड़ी विनोद प्रिय थी। इसीलिए इनके नाटकों में स्थान-स्थान पर हास्य एवं व्यंग्य के स्वरुप उपलब्ध होते है। इनकी कतिपय रचनाएं तो विशुद्ध व्यंग्यात्मक एवं हास्य प्रधान हैं यथा -चुंगी की उम्मीदवारी या मैम्बरी की धूम-लबड़घोंघों, विवाह विज्ञापन, मिस अमरीकन। इनके अतिरिक्त कुरुवन दहन, चन्द्रगुप्त, तुलसीदास, और दुर्गावती इनकी अन्य कृतियां हैं। भट्ट जी का ध्यान अपनी रचनाओं में मनोरंजन की ओर अधिक और युगीन परिस्थितियां की ओर प्रायः कम ही रहा करता था

नाटक के मूल स्रोत

ऐतिहासिक नाटकों के अंकुरण काल में लिखित प्रस्तुत नाटक मौर्य साम्राज्य की स्थापना के बाद की घटनाओं का चित्र प्रस्तुत करता है। मुख्य रुप में इस नाटक में नाटककार का उद्देश्य प्राचीन भारतीय गौरव को प्रस्तुत करना रहा है। प्रस्तुत नाटक के मूलस्रोत के संबन्ध में कहा जा सकता है कि तत्कालीन साहित्यिक वातावरण में जब कि व्यावहारिक नाटक मण्डलियों का प्रभुत्व अधिक था ऐतिहासिक नाटक में सुव्यवस्थित रुप वैसे ऐतिहासिक उल्लेखों का प्रस्तुत करना असंभव था फिर इस नाटक में कल्पना का प्रयोग अधिक हुआ है। अतः नाटककार ने किन मूल स्रोतों को अपनाया है इस सम्बन्ध में निश्चित रुप से कोई वक्तव्य नहीं दिया जा सकता केवल दो या तीन घटनाए ऐतिहासिक संदर्भ में प्रस्तुत हुई हैं ये दो या तीन घटनाएं जैसे सिल्यूकस का आक्रमण चन्द्रगुप्त तथा यवन कन्या का परिणय आदि सभी इतिहासकारों द्वारा मान्य है। ऐतिहासिक

नाटक के द्वारा इतिहास की व्याख्या का दृष्टिकोण या इतिहास की व्याख्या के आधारों पर ऐतिहासिक नाटक रचने की ओर प्रस्तुत नाटककार की दृष्टि नहीं गयी। प्रहसन की भांति प्रस्तुत किए गये प्रसंग नाटक की ऐतिहासिकता को और भी समाप्त करने वाले प्रसंग रहे हैं। अतः बदीनाथ भट्ट के चन्द्रगुप्त के विषय में कहा जा सकता है कि मौर्य साम्राज्य का चित्रण करने वाले हिन्दी नाटकों की परम्परा में प्रस्तुत नाटक प्रारम्भिक कड़ी के रुप में आता है किन्तु इस नाटक के ऐतिहासिक दृष्टिकोण का असंबद्ध रुप नाटक को उच्चकोटि के ऐतिहासिक नाटकों के महत्तव की दृष्टि से सार्थक सिद्ध नहीं कर पाता। नाम निर्देश के रुप में ही प्रस्तुत नाटक का मौर्य साम्राज्य के परिप्रेक्ष्य में विवरण आता है।

चन्द्रगुप्त - जयशंकर प्रसाद

(परिचय)

भारतीय इतिहास के मौर्य युग का सुव्यवस्थित प्रौढ़ रुप प्रस्तुत करने में प्रसाद कृत चन्द्रगुप्त का नाम आता है। माघ शुक्ला १२, १९४६ को काशी के सुंघनी साहु के घराने में जन्मे कवि और नाटक कार जयशंकर प्रसाद का व्यक्तित्व सभी के आकर्षण का बिन्दु रहा है। सारे जीवन संघर्षो के बात्याचक्र में जूझते रहने के उपरान्त भी प्रसाद ने अपने व्यक्तित्व का जो साहित्यिक रूप प्रस्तुत किया वह निःसन्देह स्मरण की वस्तु है शान्त गम्भीर सागर जो अपनी आकुल तरंगों को दबा कर धूप में मुस्करा उठा है, या फिर गहन आकाश जो झंझा और विद्युत को हृदय में समा कर चांदनी की हंसी हंस रहा है। ऐसा ही कुछ प्रसाद का व्यक्तित्व था। कवि नाटककार कहानी लेखक, उपन्यास लेखक और निबन्ध लेखक सभी के रुप प्रसाद की साहित्यिक प्रतिभा उभर कर सामने आई और उनकी कृतियों को अग्रणी रुप मिला है। उस समय जब कि देश में राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर रही थी, इतिहास की गौरवमयी परम्परा से प्रभावित प्रसाद की उर्वरक कल्पना ने उसका अप्रतिम वैभव प्रस्तुत कर दिखाया है। जीवन में समरसता की साधना करने वाले प्रसाद ने विषमता में रह कर भी समरस व्यक्तित्व का रूप प्रस्तुत किया है उनके जीवन का दर्शन ही यही रहा भयावह विभीषिकाओं को सहने के उपरान्त भी आनन्द की खोज में लगे रहने वाले प्रसाद के व्यक्तित्व को आंकने के लिए वाणी के स्वर सदा ही मूक सिद्ध होंगे, उनके साहित्य के मूल चेतना में भी ऐसा ही आग्रह है जीवन विकास के सूक्ष्म निरीक्षण के साथ-साथ अपनी कृतियों के माध्यम से उसका साक्षात्कार पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने वाले प्रसाद केवल साहित्यकार ही नहीं अपने युग के प्रवर्तन एवं केवल अपने युग की नहीं वरन समस्त युगों की श्रेष्ठ विभूति के रुप में सदैव सर्वस्मरणीय रहेंगें।

नाटक के मूल स्रोत

मौर्य साम्राज्य का चित्रण करने वाले नाटकों में चन्द्रगुप्त ऐतिहासिक ओतों की दृष्टि से महत्वपूर्ण रचना माना जा सकता है यद्यपि कथानक संबन्धी दृष्टिकोंण ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्ण निर्दोष नहीं कहा जा सकता किन्तु उस दोष का कारण भी नाटककार द्वारा ग्रहीत मूल स्रोतों के तत्व हैं। सम्पूर्ण कथानक मुख्यतः तीन घटनाओं पर आधृत है नन्द कुल का उन्मूलन, सिकन्दर का आक्रमण और सिल्यूकस की पराजय। नाटक में नाटककार द्वारा प्रस्तुत मौर्य वंश संबन्धी लम्बी आख्या से सिद्ध हो जाता है कि लेखक ने इतिहास की बिखरी हुई सामग्री, बौद्ध ग्रन्थ, जैन ग्रन्थ, पुण्य पुराण, कथासरित्सागर, कौटिल्य अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीति सार, मुद्राराक्षस, टीकाकार ढुण्डिराज विदेशी इतिहास कारों, डायोडोरस जस्टिन, प्लूटार्क स्मिथ, टाड आदि के उल्लेखों से सामग्री ग्रहण कर उसका गम्भीर अध्ययन करने के उपरान्त कथानक की सृष्टि की है। नाटककार की दृष्टि इस ओर अधिक रही है कि इतिहास प्रसिद्ध तीनों घटनाएं समयानुसार कल्पना द्वारा नियोजित होने पर भी एक ही सूत्र में आबद्ध रहें और सारा बिखरा कथानक इन्हीं के चारों और केन्द्रित रहे।

प्रथम अंक की प्रथम घटना में चाणक्य तक्षशिला के अर्थशास्त्र के अध्यापक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसका आधार महावंश टीका है जिसमें उल्लेख आता है कि चाणक्य वाद-विवाद करने के लिए पुष्पपुर गया था। इसी अंक और इसी दृश्य की एक अन्य घटना "चन्द्रगुप्त" की तक्षशिला में चाणक्य के द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के सबंन्ध में विद्वान सहमत नहीं है कि यह इतिहास की प्रामाणिक घटना है किन्तु बौद्ध कथाएं ऐसा भी उल्लेख प्रस्तुत करती हैं कि राजकीलम् को देखने के उपरान्त चाणक्य चन्द्रगुप्त को अपने साथ ले गया और वहां उसने शिक्षा दीक्षा दिलाई चाणक्य जिसे तक्षशिला नामक नगर का निवासी (तक्कसिला नगरवासी) बताया गया है, बालक को लेकर अपने घर लौटा और ७ या ८ वर्ष तक उस प्रख्यात् विद्यापीठ में उसे शिक्षा दिलाई जहां जातक कथाओं के अनुसार उस समय की समस्त विद्याएं तथा कलाएं सिखाई जाती थीं। वहां चाणक्य ने उसे अप्रविधिक विषयों और व्यावहारिक तथा प्राविधिक कलाओं की भी सर्वांगीण शिक्षा दिलाई (बहुसज्जाभावंच : उग्गहित सिप्पकल्च)२ आम्भीक और सिंहरण का विवाद, अलका द्वारा दिए गए वीरता के निर्भीक यद्यपि काल्पनिक रूप में प्रस्तुत है तथापि युगीन ऐतिहासिक संदर्भों के परिपार्श्व में है।

द्वितीय दृश्य में वसन्तोत्सव की घटना में अमात्य वक्रनास के भ्रातुष्पुत्र राक्षस को नन्द अपना अमात्य नियुक्त करता है इसका आधार एक तो पुराण ग्रन्थ हैं विष्णु पुराण में उल्लेख है कि वकनास सर्वार्थसिद्धि का ब्राहण मंत्री था दूसरा आधार मुद्राराक्षस

है मुद्राराक्षस में राक्षस का नन्द के अमात्य के रूप में चित्रित हुआ है किन्तु पुराण के वकनास से संबन्ध जोड़ने की असंगति के संबन्ध में प्रसाद ने जिस स्वच्छन्दता का उपयोग किया है उस विषय में पौराणिक सामग्री के प्रति प्रसाद आग्रही स्वभाव कहा जा सकता है। साथ ही मुद्राराक्षस में इतना उल्लेख अवश्य है कि राक्षस नन्द का स्वाभाविक अमात्य था और घटनाओं की दृष्टि से मुद्राराक्षस की घटना और चन्द्रगुप्त की घटना का कोई मेल नहीं है। चन्द्रगुप्त की घटनाएं पहले की हैं और मुद्राराक्षस की घटनाएं पर्याप्त बाद के समय की है।

नन्द को जारज पुत्र के प्रस्तुत करने की कल्पना विविध इतिहास कारों की मान्य धारणा के आधार हैं किन्तु जारज पुत्र की कल्पना के सम्बन्ध में पुनः विवाद खड़ा होता है। एक तो यह कि पुराणों की आख्या के अनुसार महापद्मनन्द का अन्तिम पुत्र धननन्द का उल्लेख प्रसाद ने किया है। किन्तु जारज होने का उल्लेख पुराणों में नहीं है। पुराण नन्दों को निम्नकुलोद्‌भव बताते हैं, जैन ग्रन्थ आवस्सक सुप्तं में नन्द को नापित दास बताया है।२ ग्रीक इतिहासकारों तथा भारतीय पुराणों और अनुश्रुतियों के आधार पर विकसित्र प्रसाद की मान्यता से स्पष्ट हो जाता है कि नन्द को निम्नकुलोद्‌भव सिद्ध करने के लिए उसे जारज शब्द से उपमित किया है। नन्द के कूट शासन के लिए जो उल्लेख प्रस्तुत किया है उसका आधार कर्टियस डियोडोरस प्लूटार्क आदि का दृष्टिकोण रहा है। नन्द राजाओं द्वारा किये चाणक्य और चन्द्रगुप्त के प्रति अत्याचारों का आधार ही मौर्य साम्राज्य की स्थापना का हेतु बना था इसका आधार मुख्यरूप से चाणक्य कथा और कथा सरित्सागर रही है प्रसाद ने उसमें परिवर्तन करके नाटकीय विनियोग के अनुरूप बना दिया है। "कथासरित्सागर" की अपेक्षा चाणक्य कथा का आधार अधिक स्पष्ट रूप में सामने आया है।

चन्द्रगुप्त के संबन्ध में "वृषल" शब्द का प्रयोग मुद्राराक्षस का आधार और विशेषतः ढुण्ढिराज के उपोद्घात के आधार पर है। किन्तु प्रसाद ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि वह मौर्य वंशीय क्षत्रिय था। बौद्धों के प्रभाव में आने से इनके श्रौत संस्कार छूट गए हैं। परन्तु इनके क्षत्रिय होने में कोई संदेह नहीं।

ग्रीकों के पोरस और पर्वतक को प्रसाद ने एक ही माना है इस सम्बन्ध में कोई निश्चित आधार नहीं, प्रस्तुत हो पाया है कि वे दोनों एक ही रहे हैं अथवा दोनों। भूमिका में स्वयं प्रसाद ने फिलिप्स द्वारा तक्षशिला-धीश के षड़यन्त्र से पुरू की हत्या दिखाई है। महर्षि दाण्ड्यायन के उल्लेख का आधार यूनानी इतिहास कारों का वृत्त रहा है कि सिकन्दर आश्रमों में निवास करने वाले तपस्यियों, ब्राह्मणों के चमत्कार से अभिभूत था। इसी कारण वह दाण्ड्यायन से मिलने को आतुर था। नाटक में सिकन्दर के लिए दाण्ड्यायन

द्वारा जो उपेक्षाभाव व्यक्त हुआ है वह ग्रीक इतिहास पर आधारित है 'सिकन्दर मेरा सिर काट सकता है पर मेरी आत्मा को नहीं'। वह ऐसी धमकी उन लोगों को दे जो स्वर्ण और धन-धान्य के इच्छुक हैं ब्राहण न तो स्वर्ण चाहता है और न मृत्यु से भयभीत होता है। इसलिए जाओ और सिकन्दर से कहना कि दंण्ड-मिस उन इच्छाओं का दास नहीं है जिनके तुम लोग हो यदि तुम्हें आवश्यकता हो तो तुम स्वयं दण्डमिस के पास आ सकते हो।१ किन्तु चन्द्रगुप्त के भावी सम्राट के रूप में दाण्ड्यायन की भविष्य वाणी का उल्लेख नहीं है।

द्वितीय अंक में अतिशय काल्पनिकता का उपयोग होने पर भी चन्द्रगुप्त का सिकन्दर को अयोग्यता की सूचना देना प्लूटार्क के आधार पर है युद्ध नीति और रण नीति का विवरण कौटिल्यीय अर्थशास्त्र के आधार पर है। गूढ़ प्रणिधि या चेट पद्धति भी कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार है। यवन सेना का रातोंरात वितस्ता पार कर ग्रीक इतिहासकारों एरियन और स्मिथ के अनुसार है। पर्वतेश्वर की सिकन्दर से उक्ति कि "जैसा एक नरपति अन्य नरपति के साथ करता है, तथा सिकन्दर से मैत्री का उल्लेख डायोडोरस और एरियन के अनुसार है। मालवों और क्षुद्रकों के संघर्ष व युद्ध परिषद् की घटना का आधार भी ग्रीक इतिहास ही है। राक्षस को बन्दी बनाए जाने की परिकल्पना कौटिलीय अर्थशास्त्र के मन्त्रयुद्ध एवं दण्डनीति की छाया प्रतीत होती है। चन्द्रगुप्त द्वारा क्षत्रप फिलिप्स के वध की काल्पनिक संभाव्यता कर्टियस के आधार पर है। राक्षस से अंगुलीयक मुद्रा ग्रहण करने की कल्पना का आधार मुद्राराक्षस है। मुद्राराक्षस में चर सिद्धार्थक यमघट के बहाने चन्दनदास के घर पहुंचकर राक्षस की स्त्री के हाथ से गिरी अंगूठी उठा लेता है।

प्रसाद ने चन्द्रगुप्त में अपनी कल्पना से कुछ परिवर्तन अवश्य किया है पर आधार मुद्राराक्षस ही है।

शक्टार का उल्लेख कथा सरित्सागर के आधार पर है सौ पुत्रों के साथ शक्टार को बन्दी बनाकर अन्धकूप में नन्द ने डलवा दिया था। नन्द की सभा में चाणक्य का अपमान और नन्दवंश का अन्त भी कथाओं और अनुश्रुतियों के आधार पर है। इनमें विशेषतः कथासरित्सागर कौटिल्य अर्थशास्त्र में चाणक्य का कथन, चाणक्य कथा आदि उल्लेख है। वररूचि का बन्दी बनाया जाना भी कथासरित्सागर के आधार पर है किन्तु प्रसाद ने अपनी कल्पना द्वारा उसमें परिवर्तन अवश्य किया है।

पर्वतेश्वर का कल्याणी द्वारा वध किया जाना यद्यपि मुद्राराक्षस की विषकन्या के आधार पर है पर उसे मुद्राराक्षस की ही भांति न लेकर प्रत्यक्षतः कल्याणी द्वारा वध किया गया दिखाया गया है। विषकन्या का रूप सूच्य कथानक के अन्तर्गत रखा है।

विजयोत्सव की परिकल्पना का आधार मुद्राराक्षस है वहां भी चाणक्य कुद्ध होकर विजयोत्स का निषेध करता है। यहां भी निषेध किया गया है। किन्तु यहां चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व का उभार अधिक स्पष्ट रूप में सामने आया है। अन्तिम दृश्यों में सिल्यूकस का युद्ध एवं संधि भी भारतीय एवं ग्रीक इतिहासकारों के विवरण के आधार पर सिल्यूकस की पुत्री का चन्द्रगुप्त के साथ विवाह ग्रीक और भारतीयों की मैत्री का प्रतीक भी ऐतिहासिक सत्य के रूप में प्रस्तुत हुआ है। परन्तु यह अभियान निष्फल रहा और दोनों में संधि हो गई इस सन्धि की शर्तों के अनुसार सिल्यूकस अरकोसिया (कंदहार) और परोपामिसे (काबुल) की क्षत्रपियों और उसके साथ अरिया (हैरात) तथा गैडोसिया (बलूचिस्तान) के कुछ भाग चन्द्रगुप्त को दिए। मैत्रीपूर्ण वैवाहिक सम्बन्धों के विषयों में यद्यपि मतभेद हैं फिर भी कुछ इतिहास कार उसे मान्य ठहराते हैं।

प्रसाद के चन्द्रगुप्त के विषय में संक्षेपतः कहा जा सकता है कि रोमानी दृष्टिकोण की प्रधानता तथा काल्पनिकता का अतिशय प्रयोग किए जाने पर भी प्रसाद ने चन्द्रगुप्त नाटक के माध्यम से इतिहास सम्बन्ध अनुसंधान परक दृष्टिकोंण प्रस्तुत किया है। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के इतिहास की प्रामाणिक घटनाएं साहित्यिक परिपार्श्व में प्रसाद की कवित्व पूर्ण प्रतिभा और कल्पना के समन्वय से अभिव्यक्त हुई है। इतिहास ऐतिहासिक सत्य एवं अवसरानुकूल इतिहास का संभाव्य रूप प्रसाद के चन्द्रगुप्त में आया है, इस दृष्टि से प्रसाद का चन्द्रगुप्त ऐतिहासिक मूलश्रोतों की दृष्टि से प्रौढ़ प्रयास कहा जा सकता है।

शशिगुप्त - सेठ गोविन्ददास

परिचय :-

बीसवीं शती के नाटककार के रूप में जिन नाटककारों का नाम उल्लेखनीय है उनमें सेठ गोविन्ददास प्रमुख हैं वस्तुत : प्रसाद स्कूल के बाद नाटकों में जो नवात्थान प्रारम्भ होता है उसके अन्तर्गत डा. रामकुमार वर्मा और सेठ गोविन्द दास के नाटकों के आधार पर इन साहित्य कारों को इस नवयुग का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

भारतीय नाट्य शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में पश्चिमी नाट्य कला के समन्वित रूप का जो आरम्भ प्रसाद द्वारा किया गया था उसका प्रौढ़ और सुव्यवस्थित सेठ गोविन्द दास के नाटकों में देखा जा सकता है। नाटक, उपन्यास आत्मकथा, काव्य, जीवनी, यात्रा, संस्मरण निबन्ध आदि के रूप में सेठ जी का साहित्यिक व्यक्तित्व उभर कर हिन्दी के क्षेत्र में आया है। नाटकों के क्षेत्र में भी उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक समस्यामूलक तथा जीवनी सभी कोटि के नाटक लिखे हैं। विविध नाटकों में विषयानुरूप उनका व्यक्तित्व स्पष्ट हुआ है। प्रसाद की ही भांति भारतीय संस्कृति के व्यामोह तथा उसके नवीनीकरण की ओर सेठ जी की दृष्टि रही है रंगमंचीय प्राविधान राष्ट्रीय चेतना विचारों की मौलिकता पात्रों की सजीवता और यथार्थता तथा सुखान्त परिणति से युक्त सेठ जी के नाटक उनके बहुमुखी प्रतिभायुक्त व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। स्वतन्त्रता संग्राम के इष्ट प्राप्ति के लिए आत्मसमर्पित कर देने वाली उनकी प्रखर भावना उनके नाटकों व साहित्य में स्पष्ट झलकती है राजनीति के द्वारा सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप में उनका व्यक्तित्व परिणित हुआ है और जनजीवन का चित्रण करने की उनकी अभिवृत्ति स्पष्ट हुई है। प्रतिभा मौलिकता और रोचकता से आपूर्ण हिन्दी नाट्य साहित्य के प्रशस्त परिमार्जक के रूप में सेठ जी का व्यक्तित्व सदैव चिरस्मरणीय रहेगा।

नाटक के मूल स्रोत

मौर्य युग के चित्रण में इतिहास संबन्ध नवीन अनुसन्धान का विवरण प्रस्तुत करने वाले शुद्ध ऐतिहासिक नाटक के रूप में शशिगुप्त नाटक का उल्लेख किया जाता रहा है। पिष्ट पेषण की अपेक्षा ऐतिहासिक घटनाओं को नवीनता से मिश्रित करने की दृष्टि से डा. हरिश्चन्द्र सेठ की मौर्य वंश सम्बन्धी नवीन खोज का आधार लेकर प्रस्तुत नाटक की वृत्त रचना की गयी है। सेठ जी ने स्वयं भूमिका में इस प्रेरणा को स्वीकारा है। 'श्री डा. हरिश्चन्द्र सेठ की इस काल की नयी खोजों ने मुझे कुछ ऐसा आकर्षित किया कि मैं इस रचना के लोभ का संवरण न कर सका।'

शशिगुप्त नाटक नायक के नाम पर लिखा गया है जिसमें सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि मौर्य वंश का संस्थापक अश्वक जाति का अधिपति शशिगुप्त ही था। शशिगुप्त उसका प्रारम्भिक नाम था मगध राज्य अधिकृत करने के उपरान्त उसने अपना नाम चन्द्रगुप्त रखा। इस प्रकार यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि चन्द्रगुप्त और शशिगुप्त एक ही व्यक्ति थे। इतिहास परक नवीन आधार तो इस रूप में सर्वप्रथम सामने आया है कि चन्द्रगुप्त के संबन्ध मुरा दासी के संबन्ध में फैले हुए इतिहासिकारों के भ्रम को दूर करते हुए चन्द्रगुप्त को मगध निवासी न मान कर पशचिमोत्तर भारत का निवासी माना है तथा चाणक्य और चन्द्रगुप्त का प्रारम्भ से ही परिचय दिखाया है।

चाणक्य के द्वारा संगठित हो कर युद्ध करने के लिए दी गई प्रेरणा समस्त इतिहासकारों की धारणा के अनुसार है परन्तु चन्द्रगुप्त जैसे महान् नेता ने जिसमें संगठन की श्रेष्ठतर क्षमता थी शीघ्र ही भारतीय सैनिक परिस्थिति के उन दोषों तथा कमजोरियों को दूर कर दिया, शशिगुप्त का कथन ही व्यक्त करता है कि प्रारम्भ में चन्द्रगुप्त सिकन्दर से युद्ध करने के लिए फारस गया था किन्तु वहां के लोगों के हार जाने पर सिकन्दर से मिल गया है। नन्द के महाविलासी रूप का चित्रण इतिहास कार की मान्य धारणा के अनुसार है कि नन्द की विलासिता ही नन्द वंश के अन्त का हेतु बनी।

अश्वकों पर किए गए जन संहार के उल्लेख का आधार भारतीय व पाश्चात्य इतिहास कारों की ही धारणा हे अपनी वीरांगना रानी विलयोफिस के नेतृत्व में आश्वकायनों ने अन्त तक अपने देश की रक्षा का दृढ़ संकल्प किया अपमान के जीवन की अपेक्षा उन्होंने गौरव के साथ मर जाना ही उचित समझा।

सिकन्दर से चन्द्रगुप्त के मिल जाने की योजना का साक्ष्य चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त को सिकन्दर का क्षत्रप बनने का आग्रह स्पष्ट करता है। सिकन्दर से चन्द्रगुप्त के मिलने की साक्षी प्लूटा के आदि के विदेशी स्रोत भी सिद्ध करते हैं। यूनानी सैनिकों द्वारा किए भारत के संबन्ध में वार्तालाप का आधार ग्रीक इतिहास ग्रन्थ हैं। हेलन द्वारा किए गए भारत प्रेम का वर्णन प्रसाद के चन्द्रगुप्त के आधार पर किया गया प्रतीत होता है। माम्भीक के सिकन्दर की ओर मिलने की अवधारणा अन्य पूर्ववर्ती नाटकों तथा इतिहास की अन्य मान्य धारणाओं के आधार पर है। पंचनद प्रदेश के अधिपति पोरस और पर्वतक को एक मानने की वृत्ति का आधार ग्रीकों का इतिहास और प्रसाद का चन्द्रगुप्त है यह पर्वतक कदाचित वही व्यक्ति था जिसे यूनानियों ने राजा पोरस कहा है। हेलन के प्रति चन्द्रगुप्त को विमुख करने के लिए विषकन्या का उल्लेख मुद्राराक्षस आदि के आधार पर है।

वितस्ता के तट पर हुआ युद्ध पुनः नवीन अनुसंधान का आग्रह परक दृष्टिकोण व्यक्त करता है डा. हरिश्चन्द्र ने ही यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि पोरस की विजय हुई थी अधिकांश योरोपीय इतिहासकारों ने अतिरन्जना पूर्ण विवरण के आधार पर सिकन्दर की वीरता का ही गान किया है और भ्रमवश उन्हें ऐतिहासिक सत्य के रूप में माना गया है। डा. सेठ ने प्राचीन यूनानी एथिओपिक पाठ का उद्धरण देते हुए स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि सिकन्दर पराजित हुआ था एवं पोरस के आगे प्रलाप करने लगा था कि उसके सैनिकों को मुक्त किया जाय। सिकन्दर ने ही पर्वतक के पास सन्धि प्रस्ताव भेजा, यह धारणा भी डा. सेठ के अनुसन्धान के आधार पर है। समय की स्वामिभक्ति एवं मेधावीरूप प्रायः सभी इतिहास कारों की मान्य धारण के आधार पर ही शत्रु पक्ष के सैनिकों को निरूत्साहित करने की योजना चाणक्य के अर्थशास्त्र की कूटनीति का आधार मानी जा सकती है। कूटनीति द्वारा पर्वतक को अपनी ओर मिला कर मगध राज्य की प्राप्ति तथा उसके उपरान्त चन्द्रगुप्त का मार्ग निष्कण्टक करने हेतु उसका पथ प्रायःसभी नाटकों एवं इतिहास ग्रन्थों की परम्परा में है। शक्टार के सात पुत्रों का उल्लेख प्रसाद की कथासरित्सागर की परिवर्तित धारणा के अनुसार है। विषकन्या की परम्परा भी मुद्राराक्षस के आधार पर है। एवं शक्टार द्वारा ही नन्द का वध भी प्रसाद के चन्द्रगुप्त के साक्ष्य पर है।

सिल्यूकस का आक्रमण सन्धि एवं उसकी कन्या के परिणय का आधार ग्रीक व भारतीय इतिहास समस्त साक्ष्य एवं ऐतिहासिक सत्यों के अनुरूप है।

शशिगुप्त नाटक के मूलस्रोत के सम्बन्ध में, संक्षेपतः कहा जा सकता है कि नाटक कार डा. सेठ के अनुसन्धान परक नवीन दृष्टि कोंण के पूर्वाग्रह से युक्त है, और वही उसका मुख्य आधार बना है, अवान्तर रूप से इस युग के संबन्ध में ग्रीक व भारतीय इतिहास कारों द्वारा निर्णीत तथ्य पूर्ववर्ती नाटक कार प्रसाद व डी. एल. राय के चन्द्रगुप्त तथा मुद्राराक्षस का प्रभाव भी प्रस्तुत नाटक की घटनाओं में परिव्याप्त है।

कौमुदी महोत्सव (डा. रामकुमार वर्मा)

परिचय— ऐतिहासिक नाटककार के रूप में ख्यातिलब्ध डा. रामकुमार वर्मा का ऐतिहासिक एंकाकी कौमुदी महोत्सव इस परिप्रेक्ष्य में दृष्टव्य है। डा. वर्मा एकांकी अनेक नाटकों की रचना करके अपने नव्य दृष्टिकोंण को व्यक्त करने में सफल रहा है। प्रख्यात कवि, नाटककार और आलोचक तीनों ही के क्षेत्रों में डा. वर्मा के प्रयास अप्रतिम कहे जा सकते हैं। ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में दृष्टव्य है कि इतिहास का गम्भीर चिन्तन मनन करने के उपरान्त पात्र के मनोविज्ञान के स्वरूप को उभारने की ओर आपकी दृष्टि विशेष उन्मुक्त रही है इस प्रकार ऐतिहासिकता के परिपार्श्व में प्रस्तुत होने वाली साहित्यिक

कृतियां "इतिहास रस" की दृष्टि से अधिक सफल रही है। इस युग का चित्रण करने वाले डा. वर्मा के नाटकों में कौमुदी महोत्सव (एकांकी) विजय पर्व और अशोक का शोक, तथा स्वर्ण श्री (एकांकी) उल्लेख्य हैं।

नाटक के मूल स्रोत

कौमुदी महोत्सव एकांकी के कथानाक की योजना कुसुम पुर विजय के उपरान्त मनाने गए समारोह की घटना को आधार बना कर की गयी है प्रस्तुत घटना प्रकारान्तर से प्रायः इस युग का चित्रण करने सभी नाटकों में किसी न किसी रूप में प्रस्तुत हुई है। विशाख के मुद्राराक्षस, प्रसाद व डी. एल. राय के चन्द्रगुप्त के नाटकों में आई हुई इस घटना का आधार लेकर नाटककार ने अपनी स्वतन्त्र चिन्तन पद्धति का परिचय दिया है। एकांकी की लम्बी भूमिका में तीनों नाटकों में प्रयुक्त इस घटना का उल्लेख करते हुए नाटक कार ने स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि इन नाटकों में चन्द्रगुप्त का व्यक्तित्व यथासंभव रूप में चित्रित नहीं हो सका है और इसी आधार पर डा. वर्मा ने चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व का वास्तविक ऐतिहासिक रूप प्रस्तुत किया है। एकांकी के मूल स्रोतों के संबन्ध में स्वयं लेखक का वक्तव्य है इस संबन्ध में बौद्ध तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मैगस्थनीज़ तथा चन्द्रगुप्त के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले समस्त ग्रन्थों के अध्ययन को मैंने प्रमुख स्थान दिया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अनुशीलन कर मैंने तत्कालीन वातावरण की अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने की चेष्टा की है। मैंने अपना कथानक मुद्रा राक्षस की कथावस्तु के अनुसार ही रखा है जिसमें कुसुमपुर की विजय के उपरान्त "कौमुदी महोत्सव" के मनाए जाने का आयोजन है। पाटलिपुत्र का भौगोलिक ज्ञान मैंने मेगस्थनीज़ और हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता से लेकर कौमुदी महोत्सव की सजावट अपनी कल्पना से प्रस्तुत की है।

चन्द्रगुप्त मौर्य को वृषल शब्द के माध्यम से नीच मान कर उसे राजोचित मर्यादाओं से हीन सिद्ध करने वाले ऐतिहासिक प्रमादसे भिन्न दृष्टि कोंण को रखते हुए नाटककार ने प्रसाद की ही भांति चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय सिद्ध करने का प्रयास किया है वृषल के संबन्ध में भी नाटक कार ने जो अपनी आख्या प्रस्तुत की है उसकी चर्चा पिछले अध्याय में ही की जा चुकी है।

समाहर्ता, कार्यान्तिक, अन्तपाल जैसे कौटिलीय अर्थशास्त्र के शब्दों का प्रयोग वातावरण की जीवन्तता को सार्थक बनाने के लिए किया गया है। सम्पूर्ण घटना का मुख्य आधार मुद्राराक्षस है किन्तु नाटककार ने इतिहास के अन्य उल्लेखों के आधार पर अपना निर्णय प्रस्तुत किया है। नन्द की विलासिता के कारण मगध धरती का नन्दन कानन बना जिसके मंदिर वातावरण में रमते हुए प्रजा पर क्रूर अत्याचारिता के कारण

धननन्द उपेक्षा और विनाश का हेतु बना यह धारणा भारतीय व ग्रीक इतिहासकारों की धारणाओं के आधार पर प्रयुक्त हुई है।

चन्द्रगुप्त ने तक्षशिला में शिक्षा पाई थी इसका उल्लेख बौद्ध कथाओं के आधार पर है "अलका" के रूप में विष कन्या की परिकल्पना तथा राक्षस के चर के रूप में वसुगुप्त और चाणक्य की नितियों द्वारा ही चन्द्रगुप्त का मार्गनिष्कंटक करने के लिए इन दोनों का अन्त चाणक्य की कूटनीति तथा मुद्राराक्षस प्रसाद व डी.एल. राय के आधार पर है किन्तु यहां चाणक्य की कूटनीति के साथ चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व का वास्तविक उभार परिलक्षणीय है।

कौमुदी महोत्सव एकांकी के संबन्ध में परिलक्षणीय है कि छोटी सी घटना को आधार बना कर लिखे जाने वाले प्रस्तुत एकांकी में भी बड़े नाटक की सी प्रवाह मयता, घटनाओं का यथातथ्य प्रत्यक्षीकरण ऐतिहासिक वातावरण की परिपूर्णता आदि सभी विशेषताएं विद्यमान हैं। इसी लिए एकांकी होते हुए भी युगीन संदर्भ में इस एकांकी का उल्लेख आवश्यक प्रतीत हुआ है कि आने वाली परम्परा में परम्परा को मानते हुए भी परम्परा से मुक्ति के प्रयास के रूप में चित्रित प्रस्तुत एकांकी निस्संदेह तद्‌युगीन दृष्टिकोंण को स्पष्ट करने में पर्याप्त सहायता दे सका है।

आचार्य विष्णुगुप्त (पं. सीताराम चतुर्वेदी)

परिचय– अभिनव भारत की उपाधि से विभूषित अभिनव नाट्य के प्रणेता के रूप में आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी का नाम उल्लेखनीय है। समीक्षा शास्त्र, नाट्यशास्त्र आदि विषयों पर ग्रन्थ के प्रणयन के साथ साथ ही एक नाटककार के रूप में आचार्य चतुर्वेदी का नाम लिया जाता रहा है। मौर्य एवं उत्तर मौर्य युग का चित्रण करने वाले इनके नाटकों में आचार्य विष्णुगुप्त दन्तमुद्रा एवं सेनापति पुष्यमित्र उल्लेखनीय है! ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में इनकी अपनी नवीनधारणा रही है कि ऐतिहासिक नाटक चूंकि साहित्यिक कृति है इसलिए इतिहास का चित्रण होने पर भी उसे नाटक ही रहना चाहिए इतिहास ग्रन्थ नहीं इसी धारणा को आधार बना कर आपने अपने ऐतिहासिक नाटकों की सर्जना की है।

नाटक के मूल स्रोत

आचार्य विष्णुगुप्त में नाटककार इतिहास से सम्मत तथ्य कि चाणक्य की सहायता से ही चन्द्रगुप्त मगध राज्य अधिगत कर सका, के आधार पर चाणक्य या विष्णुगुप्त के नाम पर अपने नाटक का परिचय प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने

मान्य ऐतिहासिक धारणाओं एवं अनुश्रुतियों को समन्वित करते हुए अपने नाटक का वृत्त प्रस्तुत किया है।

प्रारम्भ में चाणक्य को दान शाला के अध्यक्ष के रूप में चित्रित करने की परिकल्पना तथा उसका अपमान विशेष रूप से बौद्ध अनुश्रुतियों तथा मुद्राराक्षस की आधार पर है अन्तिम राजा धननन्द का उल्लेख भी इसी आधार पर है कि चाणक्य के समय धननंद वहां का राजा था। मुद्राराक्षस में प्रयुक्त चाणक्य की उक्ति "अग्रासनातोडवकृष्टम्" (१-२) इन्हीं बौद्ध अनुश्रुतियों की प्रतिध्वनि है यद्यपि वहां स्पष्ट नहीं है कि दानशाला के अध्यक्ष के पद से उसे हटाया गया था या बौद्ध के हेतु श्रेष्ठ व ब्राह्मण के आसन से हटाया गया था।

धननन्द के द्वारा चन्द्रगुप्त को अजापाल का पुत्र बताने की धारणा बौद्ध अनुश्रुतियों के आधार पर है सुरक्षा के विचार से इस अनाथ बालक को उसके मामाओं ने एक गौशाला में छोड़ दिया जहां कि गड़रिए ने अपने पुत्र की तरह उसका लालन पालन किया।

चन्द्रगुप्त और चाणक्य का अपमान मुद्राराक्षस और कथासरित्सागर के आधार पर है।

द्वितीय दृश्य में मुरा का बच्चे के प्रति चन्द्रगुप्त की दोषयुक्त आन्तरिक नीति के सम्बन्ध में वार्तालाप बौद्ध ग्रन्थ महावंश का छायानुवाद है। जैन ग्रन्थ परिशिष्ट पर्वन में भी इसी से मिलती जुलती कथा का संकेत है। राजकीलम करते समय मेघा पर मुग्ध होकर चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त का प्रतिग्रहण बौद्ध अनुश्रुतियों पर आधृत है। प्रलम्बक और त्रिदण्डी के रूप में तापसिक गुप्तचर की परिकल्पना का आधार कौटिलीय अर्थशास्त्र है।

मगध के शासक नन्द के द्वारा वृक्षों और पत्थरों पर कर लगाकर स्वर्ण संग्रह तथा गंगा की तली कोष बनाए जाने का उल्लेख महावंश के आधार पर किया गया है।

द्वितीय अंक में संन्यासी द्वारा सिकन्दर के प्रति उपेक्षा भाव का रूप ग्रीक इतिहासकारों तथा प्रसाद के चन्द्रगुप्त की परिकल्पना के मूल पर आश्रित है।

पर्वतेश्वर को बन्दी बनाए जाने के उपरान्त सिकन्दर और पर्वतेश्वर के मध्य हुए वार्तालाप उसका राज्य लौटाने की धारणा का मूल स्रोत एरियन और जस्टिन के

वृतान्त है। इसी अंक में क्षुद्रक, मालव, शिवि योधेय और पर्शु आदि संघों का वृतान्त महाभारत तथा पाणिनि के उल्लेख है।

सिकन्दर के सैनिकों का आगे बढ़ने से इन्कार कर मान्य ऐतिहासिक धारणाओं पर आश्रित है, सैनिकों के होने रोने और चिल्लाने के विवरण का आधार प्लूटार्क और एरियन के वृत्त कहे जा सकते हैं। ग्रीक राज के व्याख्यान का फल केवल सैनिकों का करूण विलाप हुआ।

सिल्यूकस का संधि प्रस्ताव, उसकी कन्या का चन्द्रगुप्त से परिणय अन्य सभी वृत्त पूर्ववर्ती नाटक कारों की ही भांति है। पर्वतेश्वर और ग्रीकों के पोरस को इस नाटक में भी एक ही माना गया है।

अतिशय काल्पनिकता के परिपार्श्व में आचार्य चतुर्वेदी ने प्रस्तुत नाटक में इतिहास जिन मूलस्रोतों को आधार बनाया है वे सर्वमान्य सुलझे हुए तथ्य हैं इस दृष्टि से समग्र नाटक का प्राविधान पर्याप्त स्पष्ट है किन्तु काल्पनिक उद्भावनाओं के द्वारा तद्युगीन वातावरण का वैसा चित्र प्रस्तुत न हो सका है जैसा अपेक्षित है ।

मौर्य युग का दूसरा युगान्तर कारी मोड़ अशोक के काल द्वारा प्रारम्भ होता है हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में अशोक के वृत्त पर भी अनेक नाटक विरचित हुए है उल्लेख्य नाटकों में लक्ष्मीनारायण मिश्र का "अशोक" सेठ गोविन्ददास का "अशोक" डा. रामकुमार वर्मा का "विजय पर्व" एवं "अशोक का शोक" चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का "अशोक" दशरथ ओझा का "प्रियदर्शी अशोक" आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का दन्तमुद्रा तथा नयी नाट्य प्रणाली की दृष्टि से अज्ञेय कृत "उत्तर प्रियदर्शी" प्रमुख है। अशोक का वृत्त बौद्ध अनुश्रुतियों एवं इतिहासकारों द्वारा जिन रूपों में प्रस्तुत किया गया है उसे उन नाटककारों ने साहित्यिक प्रतिभा का संस्पर्श दे कर अपने नाटकों में चित्रित किया है।

अशोक (लक्ष्मीनारायण मिश्र)

मूलस्रोत— सांस्कृतिक दृष्टिकोण की प्रधानता लिए हुए लक्ष्मीनारायण मिश्र के इस नाटक में अशोक के महान चरित्र को चित्रित करने की चेष्टा की गयी है। बौद्ध ग्रन्थों में वर्णित अशोक भाई का क्रूर रूप जिसके कारण " चण्डाशोक" या "कालाशोक" की उपाधियां मिली उनके निवारण का प्रयत्न किया गया है। लक्ष्मीनारायण मिश्र की दृष्टि सुख्य रूप से ऐतिहासिक साक्ष्य को प्रस्तुत करने के प्रति अधिक आग्रही नहीं रही है, इतिहास के गड़े मुर्दे उखाड़ना, नाटककार अपना कर्तव्य नहीं समझता, इसीहिए लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में इतिहास प्रसिद्ध घटना का आश्रय अवश्य मिलता है;न्तु इतिहास की सामग्री चयन की ओर नाटककार की दृष्टि विशेष उन्मुक्त न होने के कारण

नाटक में मूल श्रोत अपने स्वाभाविक रूप में बहुत कम स्थलों पर विद्यमान मिलते हैं। अशोक नाटक में मिश्र जी की दृष्टि मुख्यत: बौद्ध धर्म का प्रकर्ष एवं उसी के आधार पर मानवतावादी भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण व्यक्त करने के प्रति आग्रही रही है।

बिन्दुसार द्वारा अशोक के विद्रोह दबाने के लिए अकेले भेजने की धारणा दिव्यावयद आधार पर है। प्रासंगिक कथा के रूप में आने वाले यूनानी शासक एण्टिऑक्स इतिहासकारों की मान्य घारणा के अनुरूप है। इसका आधार भारतीय एवं ग्रीक इतिहासकारों के साक्ष्य हैं। भारतीय साक्ष्यों में १३वें शिला प्रज्ञापन में "अतियोक" नाम सो एण्टिऑक्स का उल्लेख आया है। अशोक के भाई के सम्बन्ध में वींतराग भाई की अवधारणा दिव्यावदान के ही आधार पर है किन्तु यहां नाम में काल्पनिक्ता है। अशोक उज्जयिनी का कुमार शासक बनाया गया इसका मूल सिंहली परम्पराएं है।

राज्य विस्तार की अदम्य आकांक्षा से अशोक ने कलिंग युद्ध किया यह सभी इतिहासकारों की सर्वमान्य धारणा के ही आधार पर है। कलिंग युद्ध की अवधारणा नाटककार ने की है किन्तु कारण में कल्पना प्रस्तुत की है।

नाटक के अन्तिम अंशों का मूल स्रोत अशोक के राज्य काल में उत्कीर्ण कराए गए तेरहवें अभिलेख का विवरण है, जिसमें स्पष्ट उल्लेख है कि कलिंग युद्ध की भीषणता से उसका मन विरक्ति से भर उठा। और इसी के बाद अधिकांश रूप से उसने जीव हत्या बन्द करा दी। सम्बोधि यात्रा के उपरान्त वह प्रव्रजित बन गया।

अशोक-सेठ गोविन्द दास :

मूलश्रोत— सेठगोविन्द दास के नाटकों में ऐतिहासिक दृष्टिकोंण ऐतिहासिक अनुसन्धान पर दृष्टिकोंण ले कर स्पष्ट होते रहे हैं। अशोक में प्रयुक्त ऐतिहासिक सामग्री उन सभी स्रोतों से गृहीत है जो अप्रामाणिक एवं प्रामाणिक दोनो ही रूपों से अशोक के इतिहास ज्ञान में सहायता देती है।

कथानक का प्रारम्भ तक्षशिला विद्रोह से होता है जिसके लिए सुसीम असमर्थ है अस्तु उसे दबाने के लिए अशोक तक्ष-शिला भेजे जाते हैं। यह विवरण दिव्यावदान की अनुश्रुति के अनुसार है। बिन्दुसार के लिए प्रयुक्त शब्द पंतजलि म.भा. के "अमित्रघात" उसके ग्रीक रूपान्तर के आधार पर प्रयुक्त हुआ है अग्रामात्य अशोक के भाई एवं माताओं के नाम दिव्यावदान की परम्परा के अनुरूप हैं।

अशोक ने बौद्ध धर्म की विधिवत् दीक्षा कलिंग विजय के उपरान्त ली थी, किन्तु अभिषेक के चौथे वर्ष से ही सधम्म के प्रति आकर्षण का भाव पालि वृत्तों के आधार

पर है, महेन्द्र और संघमित्रा का बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ भिक्षु भिक्षुणी बनना मान्य ऐतिहासिक धारणाओं के आधार पर हैं कलिंग युद्ध अशोक के जीवन की प्रामाणिक ऐतिहासिक घटना अन्य नाटककारों की भांति इतिहास का यथावत् आधार लेकर यहां भी प्रस्तुत हुई है। कलिंग विजय के उपरान्त नर संहार के प्रति भीषण व्यामोह, मानस परिवर्तन, मान्य तथ्यों पर आधृत है। राधेगुप्त अशोक के शासन काल में भी अग्रामात्य रहे उसका भी प्रमाण दिव्यावदान प्रस्तुत करता है।

तीसरे अंक के अन्तिम अंशों का आधार अशोक के अभिलेख हैं। धम्म प्रचार बौद्ध संगीतियों का अधिवेशन, लोक कल्याणार्थ साम्राज्य के समस्त कोष को व्यय करने की वृत्ति का प्रमाण उसके अनेक अभिलेख प्रस्तुत करते हैं।

चौथे अंक का कथावृत दिव्यावदान के कृणालावदानं के अनुरुप है- दिव्यावदानं में उल्लेख है कि तिष्यरक्षिता ने कुणाल के सुन्दर नेत्रों पर अनुरक्त होकर कुणाल द्वारा उपेक्षित किए जाने पर कुणाल के सुन्दर नेत्र निकलवा लिए थे।

अशोक नाटक में सेठ गोविन्द दास का दृष्टिकोण अशोक के व्यक्तित्व का प्रकटीकरण करता रहा है वह अशोक जो मानवता का उपासक अशोक था इसीलिए जिन बुरे कर्मों के कारण उसे चण्डाशोक उपाधि मिली उनका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। बौद्ध धर्म का प्रकर्ष एवं अशोक द्वारा उसके प्रचार हेतु किए गए कार्यों की ओर नाटककार की दृष्टि अधिक रही है एवं प्रामाणिक श्रोतों से उपयुक्त सामग्री ग्रहण करके नाटक कार विशुद्व ऐतिहासिक नाटक की रचना करने में सफल हो सका है।

अशोक (चन्द्रगुप्त विद्यालंकार)

नाटक के मूल श्रोत— हिन्दी नाटककारों में ऐतिहासिक नाटककार के रूप में चन्द्रगुप्त विद्यावलंकार का नाम भी उल्लेखनीय है। चन्द्रगुप्त जी के प्रस्तुत नाटक मे अशोक के जीवन वृत्त मनोवैज्ञानिक परिपार्श्व में प्रस्तुत किया गया है पात्रों के अन्तर्द्वन्द और बहिर्द्वन्द द्वारा ऐतिहासाकिता के परिप्रेक्ष्य में साहित्यिक अन्तर्भूमियों का स्पष्टीकरण किया गया है— तक्षशिला विद्रोह जिसका प्रमाण दिव्यावदान प्रस्तुत करता है, कि कथा से नाटक प्रारम्भ होता है। अशोक का विद्रोह दबाने के लिए जाना एवं विद्रोह को सफलता पूर्वक दबा प्रायः सभी ऐतिहासिक साक्ष्यों की परम्परा में है। लक्ष्मी नारायण मिश्र के नाटक की भांति ऐतिहासिक प्रसंगों की उद्‌भावना इस नाटक में भी बहुत कम की गयी है, पात्रों के मनोवैज्ञानिक प्रकर्ष की ओर नाटककार का विशेष सिंहली परम्पराओं के आधार पर है— परंपराओं और अनुश्रुतियों में अशोक के एक वीतराग भाई का

उल्लेख है प्रस्तुत नाटक तिष्य अशोक के इसी भाई के रुप में आया जो दिव्यावदान में विताशोक या विगताशोक के नाम से प्रस्तुत हुआ है।

बिन्दुसार के मरने पर नगर को अपने अधीन कर भाई को बन्दी बनाकर या मरवा कर शासन तन्त्र अपने हाथों में अशोक ने ले लिया ऐसी आख्या महावंश में मिलती है।

चण्डगिरि के संबन्ध में भी दिव्यावदान साक्ष्य प्रस्तुत करता है, दिव्यावदान में उल्लेख है कि अशोक के चण्ड कर्मो को न करवाए देखकर अमात्यों ने उसे सुझाव दिया कि यह कर्म स्वयं न करके किसी अन्य के द्वारा करवाओ तो इस पाप कर्म के भागी तुम न होंगे, अमात्यों के कथन को मानकर अशोक ने अनुचरों को बध्यघातक खोज लाने की आज्ञा दी उन अनुचरों क्रूरवर्मा चण्डगिरि मिला जो कि इस कार्य को करने के लिए माता पिता की अनुमति न मिलने पर उनका ही वध कर आया था।१ वह चण्डगिरि सारे जम्बूदीप का वध करने में समर्थ था प्रस्तुत नाटक का चण्डगिरि संभवत: यही दिव्यावदान का चण्डगिरि है जिसे नाटक कार ने यत्किंचित परिवर्तित रुप में प्रस्तुत किया है।

कलिंग युद्ध की इतिहास प्रसिद्ध घटना जो भीषण नर संहार के साथ अशोक के चण्डाशोक रुप को व्यक्त करने वाली हुई। प्रस्तुत नाटक में भी उन्ही परम्पराओं में आई हैं- कलिंग विजय के उपरान्त बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की घटना भी सभी ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुरुप हैं- चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के अशोक में नाटककार का आग्रह पात्रों के मनोविज्ञान के साथ मार्मिकता लाने की ओर अधिक रहा है अत: अशोक के इतिहास के मूलश्रोत के तथ्य इस नाटक में भी पूर्णत: उपलब्ध नहीं होते। अतिशय काल्पनिकता के आग्रह के कारण यह नाटक बहुत कुछ काल्पनिक ऐतिहासिक नाटकों की कोटि में पहुंच जाता है।

विजय पर्व (डा. रामकुमार वर्मा)

नाटक के मूल स्त्रोत— अशोक के समग्र जीवन की आख्या प्रस्तुत करने वाला नाटक विजय पर्व इस युग के ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा में महत्वपूर्ण दृष्टिकोण से युक्त कहा जा सकता है ऐतिहासिक संदर्भ में ऐतिहासिकता को क्षति पहुंचाए बिना ही रसात्मक्ता के परिवेश से युक्त प्रस्तुत नाटक नाटककार की अप्रतिम प्रतिभा शक्ति का परिचायक है।

अमात्य मण्डल द्वारा सर्वसम्मति से अशोक सम्राट बनाए जाने का आधार दिव्यावदान हैं। अंशोक का अंगरक्षक चण्डगिरि भी संभवत: दिव्यावदान का ही चण्डगिरि जिसकी चर्चा पीछे की जा चुकी है। अशोक की पत्नी देवी या महादेवी का उल्लेख सिंहली परम्परा तथा पुत्र महेन्द्र एवं संघमित्रा के उल्लेख दिव्यावदान के आधार पर हैं- ज्योतिषी के समक्ष अशोक का अपने प्रारम्भिक जीवन के सबन्ध में भविष्यवाणी

का उल्लेख दिव्यावदान की पृष्ठभूमि में हैं। गुप्तचर विभाग एवं कूटनीति की मन्त्रणाओं का आधार कौटिलीय अर्थशास्त्र है जिसे नाटक कार अपनी चिन्तन मनन पद्धतिके आधार पर साहित्यिक सस्पर्श देकर प्रस्तुत किया है। कलिंग युद्ध बौद्ध धर्म में प्रव्रजित लोगी अवधारणा, दिव्यावदान एवं अभिलेखों के साक्ष्य पर है। जिसे नाटककार ने कल्पना के परिपार्श्व मे पात्रों के मनोविज्ञान का चरम रूप देकर प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण नाटक का मूलाधार मुख्य रुप से अनुश्रूतियों में दिव्यावदान तथा प्रमाणिक ऐतिहासिक साक्ष्यों में अशोक के वृत्त सम्बन्धी सामग्री रही है काल्पनिकता के परिवेश में समस्त इतिवृत आने पर भी ऐतिहासकि वातावरण को क्षति नहीं पहुंची है। नाटककार का दृष्टिकोण मुख्यतः अशोक के जीवन के उस महान वंश को चित्रित करता रहा है जिस ओर पूर्ववर्ती नाटककरों की दृष्टि नहीं जा सकी थी जो अपेक्षित थी।अशोक का विजय पर्व वही वास्तविक विजय पर्व है, जो उसके सारे जीवन की दिशा को परिवर्तित कर सका है।

अशोक का शोक

'अशोक का शोक' का कथानक कलिंगयुद्ध की घटना से प्रारम्भ होता है। विजय पर्व के कथानक में यत्किंचित् परिवर्तन के साथ प्रस्तुत नाटक का वृत निर्मित हुआ है। अस्तु मूलस्रोत के सम्बन्ध मे नाटक कार की दृष्टि और चिन्तन पद्वति प्राय यही रही है जो विजय पर्व के अन्तर्गत थी, पात्र चित्रण शैली, एवं रसात्मकता के परिवेश का अन्तर है।

दन्तमुद्रा - आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

बौद्व अनश्रूतियों में वर्णित अशोक के प्रारम्भिक जीवन के चण्डाशोक कालाशोक रुप का चित्रण करने वाला नाटक दन्तमुद्रा का ऐतिहासिक आधार निश्चित रुप से क्या हैं? कहा नहीं जा सकता, स्वयं नाटक कार ने भूमिका में स्वीकारा है जिस कहानी का आधार उसने लिया है उसका ऐतिहासिक अनुपलब्ध रहा है, साथ ही ऐतिहासिकता की अपेक्षा काल्पनिकता का प्रश्रय उसमें अधिक लिया गया है इस नाटक की कथावस्तु का आधार भी सुदर्शन की न्यायमन्त्री शीर्षक कहानी है, यद्यपि उसका कोई ऐतिहासिक आधार तो कहीं प्राप्त नहीं हो सका किन्तु नाटक के संविधान के लिए कलिंग युद्ध के पूर्व अशोक की क्रूरता की गाथाओं से इस प्रकार की कथा की कल्पना कर लेना कोई दोष नहीं होगा। १

नाटककार के वक्तव्य से ही सिद्व हो जाता है कि उसका कोई विशेष ऐतिहासिक आधार नहीं रहा है एवं उसमें काल्पनिकता की अतिशयता विद्यमान है नाटक कार का

दृष्टिकोण मुख्यत अशोक के इन अशोभन कार्यों का निदर्शन रहा है जिनके कारण वह चण्डाशोक कहलाया।

उत्तर प्रियदर्शी (अज्ञेय)

हिन्दी के नए साहित्यिक क्षेत्र में सशक्त साहित्य सर्जक के रुप में अग्रगण्य सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय कृत उत्तर प्रियदर्शी नाटक नव्य हिन्दी नाट्य विद्या के परिपार्श्व में उल्लेख है जो कथा वस्तु एवं विद्या दोनों ही दृष्टि कोणों से नव्य रुप प्रस्तुत करता है।

नाटक के मूल स्त्रोत :

नीति नाट्य शैली में लिखित अज्ञेय का उत्तर प्रियदर्शी भारतीय इतिहास के संदर्भ में आधुनिक युग बोध की अत्यन्त सशक्त प्रतीक कथा के रुप में हमारे समक्ष आता है। ऐतिहासिक आधार के रुप में क्रूर अशोक के चण्डाशोक रुप को मनौवैज्ञानिक दृष्टि से उत्तर देने का प्रयास नाटककार ने किया है नाटक की भूमिका में लेखक ने स्वयंमेव प्रेरणा या स्रोत के सम्बन्ध में वक्तव्य प्रस्तुत किया है अशोक की आध्यात्मिक कायाकल्प की प्रक्रिया मे नाटककार की संवेदना जिन तथ्यों को आधार बनाया है उसका उल्लेख भूमिका में किया है—मृत्यु से साक्षात्कार के बिना अमरत्व नहीं मिलता, नरक की पहचान के बिना नरक मुक्ति का कोई अर्थ नहीं, कठोपोनिषद के नचिकेता से लेकर डिवाइना कामेडिया के दान्ते तक इसके अनेक साक्षी हैं।

सम्पूर्ण नाटक में अशोक के कर्मो का साक्षी देने वाले जिस नरक का उल्लेख है उसका ऐतिहासिक आधार दिवयावदान की अनुभूति फाह्यान कृत भारत यात्रा का उल्लेख एवं ह्वेनसांग के भारत प्रवास के उल्लेख हैं।

नाटककार का दृष्टिकोण मुख्यत नाटककार के ही शब्दो में अशोक के व्यक्तित्व को मनौवैज्ञानिक उभार देना था विजय लाभ पर पहले अहंकार, फिर अहंकार के ध्वस्त होने पर नए मूल्य का बोध नयी दृष्टि का उन्मेष—

कुणाल (कैलास नाथ भटनागर)

अशोक के उपरान्त मौर्य साम्राज्य अपने पूर्ववर्ती सुव्यवस्थित रुप से न रह सका। अशोक के उत्तराधिकारियों में शासन तन्त्र चलाने की दृष्टि से कोई विस्तृत उल्लेख नहीं मिलता- अशोक के अंन्यान्य पुत्रों में कुणाल का उल्लेख मिलता है।

कुणाल के विस्तृत का स्पष्ट उल्लेख इतिहास ग्रन्थों में समुपलब्ध नहीं। दिव्यावदान की अनुस्रुतियों में कुणाल के जीवन का उल्लेख मिलता है- दिव्यावदान के कुणालावदानं की गाथा का आधार लेकर भी कैलाशनाथ भटनागर ने कुणाल नाटक की रचना की है।

दिव्यावदान की कथा के अनुसार कुणाल की माता का नाम पद्मावती था। कुणाल के परमशोभन नेत्रो के कारण ही अमात्यों ने कहा कि इसके नेत्र कुणाल पक्षी के सदृश हैं अत इसका कुणाल नाम रखा जाए।

इसी दिव्यावदान की कथा के अनुसार अशोक की अग्रमहिषी उस समय तिष्यरक्षिता थी तिष्यरक्षिता ने कुमार कुणाल के नेत्रों की सुन्दरता पर आसक्त होकर प्रणय निवेदन किया किन्तु शीलवान कुमार कुणाल के द्वारा अस्वीकार किए जाने पर दुष्चक्र द्वारा तिष्यरक्षिता ने कुणाल के दोनों नेत्र निकलवा दिए।

सारा कथानक दिव्यावदान की इसी कथा के आधार पर है नाटकीयता और रसात्मकता के परिवेश को अधिक जीवन्त बनाए रखने के लिए नाटककार ने यथासंभव परिवर्तन किए हैं किन्तु इससे ऐतिहासिकता एवं ऐतिहासिक वातावरण को क्षति नहीं पहुंची है।

उत्तर मौर्य युग -

मौर्य युग और शुंग वंश की श्रृंखला को जोड़ने वाले उत्तर मौर्य युग का प्रतिनिधित्व करने वाले नाटकों की दृष्टि से आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का 'सेनापति पुष्यमित्र' और डॉ० रामकुमार वर्मा का 'स्वर्णश्री' उल्लेख्य हैं।

मौर्य वंश के अन्तिम सम्राट बृहद्रथ की हत्या कर देने वाले सेनापति के मौर्य वंश का अन्त करके शुंग वंश की नींव डाली। इतिहास की इसी घटना का उल्लेख इन नाटकों में किया गया है।

सेनापित पुष्यमित्र

मूलस्त्रोत— उत्तर मौर्य युग के इस नाटक का मूल स्त्रोत मुख्य रुप से पुराण ग्रन्थ पंतजलि का महाभाष्य, दिव्यावदान हर्षचरित में आई हुई घटना का उल्लेख है। सेनापति पुष्यमित्र द्वारा मौर्य साम्राज्य समाप्त करने की वृत्ति का नाटककार समर्थन करता है किन्तु सेनापति पुष्यमित्र द्वारा की गयी राजहत्या के कंलक के धोने के प्रयास मे इतिहास विरुद्ध कल्पना प्रस्तुत की हैं, किन्तु आधार वे ही हैं- वायु और विष्णु पुराण

स्पष्ट उल्लेख देते हैं कि ये सेनापति पुष्यमित्र अन्तिम राजा बृहद्रथ को मार कर राज्य करेगा।

बाण के हर्षचरित मे उल्लेख है कि पुष्यमित्र ने सारी सेना के समक्ष बृहद्रथ को मार डाला।

इसी प्रकार दिव्यावदान का अशेषदानं साक्षी देता है कि जब पुष्यमित्र ने राजा की हत्या की उस समय मौर्य वंश नष्ट हो गया। बृहद्रथ की हत्या के उपरान्त पुष्यमित्र ने सम्राट की उपाधि नहीं धारण की यह धारणा इतिहास सम्मत हैं।

यवनों के आक्रमण के उल्लेख का आधार गार्गी संहिता पतंजलि महाभास्य, एवं कालिदास कृत मालविकाग्निमित्रम् हैं ! साथ ही इस यवन आक्रमण का उल्लेख ग्रीक इतिहास कारों ने भी प्रस्तुत किया हैं! ये सभी ग्रन्थ प्रमाण देते हैं कि पुष्यमित्र के काल में मगध पर यवनों के आक्रमण हुए। आचार्य चतुर्वेदी के अन्य नाटकों की भांति इस नाटक में भी काल्पनिकता का अतिशय प्रयोग, ऐतिहासिक आधारों का परिवर्तित रुप भ्रम उत्पन्न करने वाला है किन्तु नाटक कार की दृष्टि नाटकीय संविधान हेतु यथासंभव परिवर्तन करने के प्रति आग्रही रही है।

स्वर्णश्री - मूलस्रोत

निरुत्साही राजा बृहद्रथ के समय में कोई भारत की स्वर्ण और श्री को पुनः प्राप्त करने के लिए सेनापति पुष्यमित्र द्वारा जो कार्य किया गया उस कार्य की कथा प्रस्तुत एकांकी का आधार है। कथावस्तु का बिन्दु वे ही ग्रन्थ और उनकी घटना का उल्लेख है जो यह प्रमाणित करत हैं कि पुष्यमित्र ने अन्तिम सम्राट बृहद्रथ की हत्या की थी अर्थात् यहां भी नाटककार की कथा के मूलस्रोत के रुप में पुराण ग्रन्थ महाभाष्य दिव्यावदान बाण कृत हर्षचरित की अनुश्रुति प्रस्तुत हुई हैं, पर नाटककार की कल्पना के प्रयोग से कौतूहल की सृष्टि एवं ऐतिहासिक वातावरण की जागरुकता ने उस घटना को और भी व्यापी प्रभाव वाला बना दिया है। नाटककार का दृष्टिकोण मुख्य रुप से पुष्यमित्र के कार्यो द्वारा भारत में वैदिक धर्म की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने तथा बृहद्रथ के काल में आए अनाचारों को दूर करता रहा है, इस ऐतिहासिक अवधारणा के यथातथ्य चित्रांकन के कारण प्रस्तुत एकांकी अपने आप में एक महान् उपलब्धि के रुप में कल्पित किया जा सका है।

हिन्दी नाटककारों की सापेक्ष्य विशेषताएं :

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में गद्य के अभूतपूर्व विकास के साथ नाट्य साहित्य का विलक्षण प्रवर्तन इस काल के साहित्य सृष्टाओं का परम् अवदात तत्व कहा जा सकता है। देश , समाज, राजनीति संस्कृति सभी क्षेत्रों में जहां इस समय युगान्तरकारी रूप प्रस्तुत हो रहा था साहित्यिक क्षेत्र में भी नाटक विशेषत: ऐतिहासिक नाटकों की ओर नाटककारों की ओर दृष्टि जाना स्वाभाविक था क्योंकि सामयिक समस्याओं को अतीत के संदर्भ में रख कर जीवन्त रुप देने हेतु ऐतिहासिक नाटक के अतिरिक्त कोई दूसरी विधा शायद उतनी सार्थक न सिद्ध होती। राष्ट्र समाज और मानवता के नवनिर्माण की जो रेखाएं साहित्यकारों के मन में सिंच रही थी, उस युग में आकर इतिहास के उर्जस्वित रुप के साथ स्पष्ट होती गयी। इस युग तक आते आते इतिहास की व्याख्या भी प्रस्तुत की जाने लगी थी।इतिहास उद्देश्य परक बुद्वि गम्य और सार्थक शवक्ति के रूप में परिकल्पित किया गया। अस्तु नाटककारों की विचारधारा इतिहास की विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में अपना आधार खोज सकी है। हिन्दी के ऐतिहासिक नाटककारों की प्रवृत्तियों का सामूहिक आकलन करने से यह स्पष्ट होता है कि अतीत उनके लिए मात्र जिज्ञासा की चीज नही था। वर्तमान को उन्होंने जिया था संकटों संघरोषों को झेला था और अपने ऊपर पड़ने वाले दबावों को महसूस किया था।

भारतेन्दु युग से ही आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य की विविध विद्याओं का शुभारम्भ हुआ अस्तु हिन्दी नाटकों में ऐतिहासिक नाटककार की दृष्टि उन्ही का नाम का सर्वप्रथम आता है। भारतेन्दु युग में राष्ट्र, समाज सभी क्षेत्रों में एक विशिष्ट प्रकार का जो अन्तर्मंथ चल रहा था। उसकी अभिव्यक्ति तद्‌युगीन साहित्य में होना स्वाभाविक था। अंग्रेजों के आगमन और उनके द्वारा फैलाए गए अनाचारों की मुक्ति का प्रयास, स्वाधीनता की पुकार, राष्ट्रीय और नैतिक चेतना का जागरित रुप, आदि विषयों का प्रस्तुतीकरण इतिहास की कथावस्तु ले कर नाटकों में किया गया हैं।

ऐतिहासिक नाटकों के विकास काल का प्रारम्भिक अंकुरित रुप होने के कारण इतिहास का व्यापक दृष्टिकोण भारतेन्दु और उनके स्कूल के नाटककारों के समक्ष नहीं रहा है क्योंकि समाज सुधार की जो भावना साहित्यकारों के अन्तर मे बैठ गयी थी इस हेतु साहित्य प्रयोजन व्यवहार की ओर ध्यान रखते हुए साहित्य की रचना उनके लिए आवश्यक हो गया था, दूसरी और पारसी थियेट्रिकल कम्पनियों का प्रभुत्व भी बढ़ने लगा था अत: प्रेक्षकों की रुचि के अनुरुप विषय वस्तु को परिवर्तित करना स्वाभाविक हो गया था। इतिहास की प्रामाणिकता की ओर इस युग के नाटककारों

का ध्यान आकर्षित नहीं हुआ इसीलिए इतिहास का उत्कृष्ट रुप इस युग में नही मिलता इस युग के नाटककारों की दृष्टि मुख्यतया आदर्शात्मक रही है– फिर भी विकास काल के प्रारम्भिक नाटकों की दृष्टि से ऐतिहासिक नाटकों का जो प्रारम्भ भारतेन्दु द्वारा किया परवर्ती युगों तक आते क्रमशः और अधिक सुस्पष्ट और प्रौढ़ होता गया है, साथ ही चिन्तन पद्धतियां भी इतिहास के बदलते दृष्टिकोणों के आधार परिवर्तित होती गयी है।

ऐतिहासिक नाटकों के उत्थान काल या प्रसाद युग में आकर इतिहास प्रामाणिक और सांस्कृतिक धरातल पर चरण न्यास करता है साथ ही वर्तमान के संदर्भ में इतिहास के दृष्टिकोण का आग्रह और अधिक प्रबल होता गया है इसी आग्रह के परिणाम स्वरुप ही प्रसाद ने विशाख की भूमिका मे लिखा था। "मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किय है जिन पर वर्तमान साहित्यकारों की दृष्टि बहुत कम पड़ती हैं "। प्रसाद का अतीत दर्शन छायावादी रोमानी दृष्टिकोण से अभिप्रेरित रहा है, किन्तु ऐतिहासिक यथार्थ से वे किंचित मात्र विमुख नहीं हुए हैं, भारतीय संस्कृति के बिखरे अवयवों को जोड़ कर उन्होंने अपनी भावुकता चिन्ता और कल्पना द्वारा उसमें प्राण संचार किया। उनकी रोमानी जीवन दृष्टि और यथार्थ के आग्रह ने आदर्शपरक यथार्थ दृष्टिकोण की सृष्टि नाटकों में की– उनके नाटकों मे परिव्याप्त तद्युगीन विचारधारा, अतीत का पुनरुद्धार इतिहास का परिप्रेक्ष्य , काव्य का मधु संभृत रुप सब कुछ यथार्थ के डण्ठलों पर आदर्श की घनी हरियाली और नाटकों के गम्भीर 'टोन' का सीधा सम्बन्ध इसी जीवन दृष्टि से हैं।

इस प्रकार प्रसाद युगीन नाटकों का दृष्टिकोण मुख्यतया ऐतिहासकि यथार्थवाद और आदर्शवाद के समरस् रुप की ओर रहा है इतिहास के माध्यम युग की सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याएं प्रस्तुत और इन सबसे भी ऊपर एक ही तार मानवता बाद को फूलमाला की सूत्र की अनुस्यूत कर देना इस युग की सापेक्ष विशेषताओं की अन्यतम विशेषता मानी जा सकती हैं। इसके साथ ही एक महत्वपूर्ण उपलब्धि इस युग की थी और वह पूर्व और पाश्चात्य नाट्य शास्त्र के तत्वों के सम्मिश्रण से अभिनव नाट्य शैली का अन्वेषण किन्तु यहां इतना कहना अनपेक्षित न होगा इन विशेषताओ को जितना अधिक मार्जित रूप प्रसाद की प्रातिभा के प्रश्रय से मिला, उसका इस युग के अन्य नाटककारों में वैसा डरूप नहीं मिलता है, अन्य नाटक कार इतिहासकार के वैज्ञानिक अनुसंधान पर दृष्टिकोण की ओर नहीं झुके हैं। अतः उनका दृष्टिकोण सीमित दृष्टिकोण है जिसमें न तो इतिहास की प्रमाणिकता की कोई परख हो सकी और साहित्यिक क्षेत्र में कोई प्रशस्त उपलब्धि हो सकी। जहां प्रसाद वर्तमान

के संदर्भ में अतीत की जांच परख कर रहे थे वही लक्ष्मीनारायण मिश्र जैसे नाटककार इतिहास के गड़े मुर्दे उखाड़ना साहित्य के लिए उपयुक्त नहीं समझते हैं। इसी कारण प्रसाद के परवर्ती अनेक नाटककारों ने इतिहास के मान्य तथ्यों को परिवर्तित करने में पूरी स्वचछन्दता बरती है। इन नाटककारों के नाटको में इतिहास के प्रति व्यक्ति वादी आग्रह प्रमुख रहा है फिर भी इतिहास की व्याख्या के अन्तर्गत इतिहास के सांस्कृति परिप्रेक्ष्य से वे विमुख नहीं हुए हैं।

ऐतिहासिक नाटकों का तीसरा मोड़ ऐतिहासिक नाटकों की सापेक्ष्य विशेषताओं का प्रकर्षकाल माना जा सकता है। इस काल में इतिहास का नवनिर्माण किया गया इतिहास की पर्याप्त खोज के उपरान्त उसे सुनियोजित कल्पना के परिपाश्र्व में रखा गया है, साहित्यकार को यह प्रतीति हुई कि इतिहास के विविध उपकरण एकत्रित किए जाएं जिससे हमारे इतिहास के वास्तविक स्वरुप का साक्षात्कार हो सके। हमारे इतिहास के विविध उपकरणों को एकत्रित करने की आवश्यकता है। न जाने कितने शिलालेख हैं, दान पत्र हैं, वंशावलियां हैं, ख्याति हैं, सिक्के हैं, वास्तु और ललित कलाओं के रुप हैं मूर्ति चित्र संगीत और काव्यगत उल्लेख हैं जिसके आधार पर तथ्यों का संयोजित किया जा सकता है। और इस प्रकार विपत्तियों के घने बादलों में विद्युत की भांति तड़प उठने वाली देश की कीर्ति रेखा चमक उठी है।

स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार अनुश्रुतियों और किवंदन्तियों के घेरे से बाहर निकल कर इतिहास के वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक रूप की ओर आकर्षित हुआ है, प्रसादेतर युग से जब तक के ऐतिहासिक नाटक इतिहास के इसी दृष्टिकोण से प्रभावित हुए हैं। सेठ गोविन्ददास डॉ० रामकुमार वर्मा जैसे मनीषियों ने अपने नाटकों के माध्यम से इतिहास को प्रक्रिया के रुप में प्रस्तुत किया। मात्र तथ्यों को कालक्रमानुसार संयोजन नहीं। सामयिक समस्याओं का प्रस्तुतीकरण भी इस युग के नाटकारों के सापेक्ष्य विशेषता के रुप में परिकल्पित किया जा सकता है। इस युग का दृष्टिकोण यद्यपि मुख्यतया यथार्थ परक रहा है तथापि आदर्शवादी दष्टिकोण के भी उदाहरण न मिले ऐसा नहीं है- इतिहास को विद्युत रुप देने की धारणा इस युग के नाटककारों में अपेक्षाकृत कृत विरल रुप में ही उपलब्ध होती हैं। इस युग के नाटककारों की सापेक्ष्य विशेषताओं की एक अन्यतम उपलब्धि जिसके संकेत प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों से ही मिलने प्रारम्भ हो गए थे, पात्रों के मनोविज्ञान में अधिकाधिक विश्लेषण करते हुए उन्हें उभारने का सतत् प्रयास हैं। नैतिक एवं सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण को अपनाते हुए भी ऐतिहासिक नाटकों की सृष्टि की गयी है।

नव्य हिन्दी नाटकों में विशेषत: नयी कविता, नयी कहानी की प्रवृत्तियों से प्रभावित साहित्यकारों के दृष्टिकोण इतिहास की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के प्रस्तुतीकरण की ओर रहा है, आधुनिक भाव बोध का तीखा संकेत, जीवन की विसंगतियों के संदर्भ इतिहास परिप्रेक्ष्य में रख गये हैं यद्यपि इन साहित्यकारों द्वारा इतिहास के वृत्तों का चयन अपेक्षाकृत न्यून मात्रा में किया गया है।

समग्रत: समापन की दृष्टि से कहा जा सकता है कि संस्कृत नाटकों की अपेक्षा अपनी सापेक्ष्य विशेषताओं की दृष्टि मे हिन्दी नाटक की परम्परा अधिक समृद्ध रही है, नाटककारों के बदलते परिप्रेक्ष्य युग जीवन के बदलते प्रतिमान, आदि विविध दृष्टिकोणों से नाटककारों की चिन्तन पद्धति अभिनव रुप धारण करती गयी है यद्यपि भारतीय चिन्तन पद्धति एवं जीवन दर्शन में सुखान्त भावना का स्वर अधिक व्यापी होने के कारण आदर्शवादी दृष्टिकोण को ही प्रमुखता मिली है फिर भी संस्कृत नाटकों की तुलना में हिन्दी नाटकों की उपलब्धि इतिहास के अन्य विविध रुपों की दृष्टि से भी अन्यतम है।

आलोच्य नाटकों का ऐतिहासिकता अर्थ ऐतिहासिकता और काल्पनिकता की दृष्टि से तुलनात्मक मूल्यांकन

ऐतिहासिक नाटक यद्यपि इतिहास के वृत पर आधारित होता है, किन्तु उसे साहित्यिक कृति का रूप देने के लिए साहित्यिक कलात्मकता आवश्यक होती है। ऐतिहासिक नाटक कार की चिन्तन प्रक्रिया नाटक को उत्कृष्ट रूप देने, विवरणों को जीवन्त बनाने, घटनाओं को नाटकीय संवेदना से युक्त करने के लिये साहित्यिक कलात्मकता एवं कल्पना का प्रश्रय लेती चलती है। अस्तु स्वाभाविक है कि ऐतिहासिक नाटकों के संदर्भ ऐतिहासिक अर्धऐतिहासिक एवं कल्पना से युक्त हो ऐतिहासिकता विशेष रूप से तथ्यों के चयन की दृष्टि, चरित्र की विशेषताओं तत्कालीन वातावरण की ओर उन्मुख रहती है, अर्धऐतिहासिकता के अर्न्तगत जनश्रुतियां, प्रभाव, परंपरा और रुढ़ियां आती हैं जो धीरे-धीरे परिपक्वरूप धारण करके नाटक कार के लिए प्रमाणिक श्रोत का आधार बनती हैं, काल्पनिकता के परिपार्श्व में नाटककार आदर्श की प्रतिष्ठा, रसात्मकता एवं चमत्कार की उद्‌भावना करते हुए नाट्य रचना मे प्रशस्त बनाता है। मौर्य युग का चित्रण करने वाले संस्कृत वादी नाटककार ने ऐतिहासिक नाटक की इसी रचना पद्धति का आधार ले कर अपने नाटकों की रचना की। मौर्य वंश की प्रमुख उल्लेख घटनाओं पर यहां संस्कृत व हिंदी दोनों ही नाटक कारों की रचना पद्धति पर तुलनात्मक रुप से विचार किया जा सकता है।

(क) चंद्रगुप्त और चाणक्य का संबंध

मौर्य युग का चित्रण करने वाले संस्कृत व हिन्दी दोनों ही नाटककारों की दृष्टि मौर्य साम्राज्य के आधार बिन्दु चंद्रगुप्त और चाणक्य पर परिकेन्द्रित रही है। चंद्रगुप्त और चाणक्य के ही क्रियाकलापों के चारों ओर समस्त घटना विधान सूर्य मंडल के ज्योतिरंध्र की भांति छाया रहा है। ऐतिहासिक आधार प्रमाण देते हैं कि चाणक्य की सहायता से चंद्रगुप्त ने मगध राज्य अधिगत किया था, अतः स्वाभाविक है कि चंद्रगुप्त और चाणक्य का निकट संबंध रहा हो हिंदी व संस्कृत दोनों ही नाटकारों की दृष्टि इस ओर गई है ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं आदर्श की भिन्नता होने के कारण अंवंसशनुकूल काल्पनिकता की भी सृष्टि की गई है।

विशाल कृत मुद्राराक्षस की कथा मगधविजय के उपरान्त चंद्रगुप्त का राज्य स्थापित होने से प्रारंभ होती है। चंद्रगुप्त ने चाणक्य की सहायता से नंद वंश का अंत किया। इसकी ऐतिहासिक साथी पुराणग्रंथ कोटिलीय अर्थशास्त्र प्रस्तुत करते हैं, नाटक

कार की अवधारणा इन्ही ग्रंथों पर आधृत प्रतीत होती हे जिसे हम ऐतिहासिकता की श्रेणी में रख सकते है।

दृस्टव्य है कि मुद्राराक्षस के रचना तक प्रमाणिक साथी के रूप में पुराणग्रंथ एवं अनुश्रुतियों एवं किम्बदंतियों को आधार बता कर लिखे कथा ग्रंथ (बृहत्कथा, महावंस, परिशिष्ट प्रर्वत) आदि का ही बाहुल्य रहा अतरएव सत्यता एवं कल्पना का वैसा संगत और प्रमाणिक विश्लेषण अंसभव प्रतीत होता है जैसा कि हिंदी नाटक कारों की वृत रचना के आधार पर किया जा सकता है, नाटक कार का लक्ष्य मुख्यतया कौटिलीय अर्थशास्त्र की साम्राज्यवादी राजनीति के चिंतन मनन की ओर अधिक रहै है एवं उसी के प्रयोक्ता के रुप में चाणक्य के व्यक्तित्व को प्रधानता देते हुए नाटक कार ने समस्त घटना चक्र की कल्पना की है - राजनीति का सर्वातिशय प्रयोग दिखलाने के कारण काल्पनिकता का बाहुल्य समग्र नाटक मे अधिक है।

प्रथमतः चंद्रगुप्त के वंश के बारे में नाटक कार कोई निश्चित मत नहीं प्रस्तुत करता यद्यपि इसी नाटक में अमात्य चाणक्य द्वारा प्रयुक्त बृजल शब्द का आधार ले कर चंद्रगुप्त का वंश निश्चित करने के लिए विचारकों द्वारा पर्याप्त दहापोह किया गया है - टीकाकार दृष्टिराज ने जो विवरण प्रस्तुत किया है उसके अनुसार चंद्रगुप्त का पिता मौर्य था और स्वाथसिद्धि ने अनपा सेनापति अपने नंद पुत्रों को न बना कर मौर्य को बनाया था इस पर नंद बन्धुओं ने दल से मौर्य तथा उसके सब पुत्रों को मरवा डाला, केवल चन्द्रगुप्त भाग निकला, नंदों का एक दूसरा शत्रु चाणक्य भी था, समान शत्रुता के कारण ये दोनों मित्र बन गए।

वस्तुतः टीकाकार ने स्वार्थसिद्ध की एक पत्री मुद्रा को वृषलात्मजा कह कर चंद्रगुप्त के वृषलत्व रूप की व्याख्या करते हुए उसे निम्न कुल वाला सिद्ध किया गया है, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अप्रमाणिकता की बात यही है कि जहां इतिहास के सभी श्रोत पुराणग्रंथों से ले कर विदेशी इतिहासकारों के वृत तक नंदों के निम्नकुलों वैभव बताते हैं तथा चंद्रगुप्त को क्षत्रिय या अभिजात कुलोत्पन्न सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं वही मुद्राराक्षस का नाटक कार पूर्वाग्रह और पक्षपात से ग्रस्त होने के कारण चंद्रगुप्त को कुलहीन सिद्ध करता है।

इसके विपरीत कहीं-कहीं यह चेष्टा की गई है कि उसे वृष्ल न कह कर नन्दाक्य या मौर्य पुत्र कहा जाये। मलयकेतु उसे स्वामिपुत्र भी कहता है

चंद्रगुप्त के प्रारंभिक जीवन की साथी के बारे मुद्राराक्षस के कोई उल्लेख पुराणों से समता नहीं रखते इस प्रकार चंद्रगुप्त के उल्लेखों के संबंध में प्रमाणिक श्रोत के रूप

में मुद्राराक्षस का महत्व बन पड़ जाता है। राजनीति प्रयोग एवं पूवाग्रहों के कारण नाटक कार कल्पना तिशयता की ओर मुड़ा है।

चंद्रगुप्त और चाणक्य एक साथ रंगमंच पर दो अंको में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं। तृतीय अंक में तथा सप्तम अंक में - तृतीय अंक में राजा बनाए जाने के उपरान्त चंद्रगुप्त हर्षोत्सव के लिए व संतोत्सव की घोषणा करता है यही चंद्रगुप्त और चाणक्य का पारस्परिक संबंध प्रकट होता है। चाणक्य को अपनी नीति की सफलता के लिए कृतक कलह का आयोजन करना है अतः वह महोत्सव बंद कर देने की आज्ञा दे देता है। मैभुक्षी महोत्सव मनाए जाने की कल्पना नाटककार की अपनी कल्पना है जिसके माध्यम से चंद्रगुप्त और चाणक्य के व्यक्तित्व को उभारने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत नाटक में चाणक्य ही सर्वतियन्ता बनकर प्रस्तुत हुआ है। मौर्य सम्राट के रूप मे चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास नहीं हो सका है। संपूर्ण नाटक के अंतर्गत चंद्रगुप्त का प्रभाव वैसा नहीं है जैसा अपेक्षित है। चंद्रगुप्त का मनोविज्ञान स्वाभाविक प्रकर्ष पर नहीं हैं, क्योंकि उसके लिए कोई स्थान ही नहीं रह गया है वह तो नाटक कार के ही शब्दों में - चाणक्य की बुद्धि से ही संचालित है। वह सचिवायत सिद्धि है। गुप्त एवं अमात्य चाणक्य द्वारा राज्य प्राप्त किए जाने पर चंद्रगुप्त पूर्णतया चाणक्य प ही निर्भर है, तभी राक्षस को यह विश्वास है कि वह न तो अपना ही राज्य भार किसी को दे सकता है और ही स्वयं आक्रमण का बदला ले सकता है - स्थित चक्षु विकल चंद्रगुप्त अप्रत्यग लोक व्यवहार से रत है। इसीलिए राक्षस उसे मंडधी या अप्रत्यक्ष लोक व्यवहार वाला भी कहता है अर्थात् चंद्रगुप्त को राज्य भोग के लिए मिला है। राज्य पालने के लिए नहीं।

इतिहास का वह चंद्रगुप्त जो अपनी वीरता के कारण जगद्विजेता ासिकन्दर द्वार भी पशंसित हुआ मुद्राराक्षस में आ कर इन गुणों से बिल्कुल ही न हो गया, ऐसे ही उल्लेखों के कारण चंद्रगुप्त को चाणक्य के हाथ की कठपुतली कहा गया है। ऐतिहासिकता की अपेक्षा काल्पनिकता की सृष्टि भी अस्वाभाविकता ले कर प्रस्तुत हुई है कृत्रिम कलह भी मात्र अभिनय के लिए ही कल्पित की गई है ऐसा प्रतीत होता है कि यदि चंद्रगुप्त को कृतक कलह का आश्वासन न मिलता तो संभवतः चाणक्य द्वारा कौमुदी महोत्सव मनाए जाने का निषेध किए जाने पर वह सर्वतोभावेने चाणक्य की आज्ञा का प्रतिपालन करता है मलयकेतु एवं राक्षस का संघर्ष तथा चाणक्य की कूटनीति को उभारने के लिए प्रस्तुत अंश की कल्पना की गई है। इतने पर भी जब चंद्रगुप्त के व्यवहार के कारण चाणक्य अपना क्रोधी रूप प्रकट करता है चाणक्य अन्यव्यस्थित हो कर कह उठता है - अरे क्या सचमूच ही आर्य कुपित हो गए। इसके उपरान्त भी उसके अतंस में पश्चाताप् की लहर उठती रहती है।

मुद्रा राक्षस में चंद्रगुप्त अपने पोषण केवल से शुत्र का अतिक्रमण नहीं कर सका है। आर्य चाणक्य ने बिना शत्रु संघ को युद्ध के बिना ही परास्त कर डाला है। इसकी स्वयं उसे लज्जा है। चाणक्य पर उसे पूरा भरोसा है कि उनका साथ मिलते रहने पर बिना धनुस पर पृत्यचा चढ़े ही संसार की समस्त विजयें अनायास प्राप्त हो जाती है। नाटक कार ने अपने आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए तथा चमत्कारिकता की उद्‌भावना हेतु कौमुदी महोत्सव की कल्पना की है और चंद्रगुप्त के व्यक्तित्व की व्याख्या की है वह चंद्रगुप्त जो पूर्णतः चाणक्य के इंगितों द्वारा परिचालित है (आर्य चाणक्य की राजनीति की आवर्त में वीर चंद्रगुप्त तिनके की तरह चक्कर काट रहा है।

चंद्रगुप्त और चाणक्य के पारस्परिक संबंधों के विषय में हिंदी नाटक कारों द्वारा प्रस्तुत उद्‌भावनाएं व्यापक दृष्टिकोण का परिचय देती है, प्रसादकृत चंद्रगुप्त ऐतिहासिक अर्धऐतिहासिक एवं काल्पनिक वृत के परिपार्श्व में पर्याप्त स्पष्ट आधार दे सका है - इसी प्रकार सेठ गोविन्ददास का शशिगुप्त, प्राचार्य सीताराम चतुर्वेदी का आचार्य विष्णुगुप्त एंव डा. रामकुमार वर्मा कृत कौमुदी महोत्सव में मह चाणक्य और चंद्रगुप्त के व्यापक संबधों का परिचय पाते हैं यद्यपि व्यापक संबधों का रूप देने के लिए नाटककारों ने कल्पना का आश्रय अधिक लिया है।

प्रसाद चंद्रगुप्त को क्षत्रिय वंश का सिद्ध करने का प्रयास किया है, नंदों से उसका कोई रक्त संबंध नहीं स्थापित किया। यह वृतांत समकालीन ऐतिहासिक संदर्भो मे जो यह कहते हैं कि उसका जन्म एक मामूली घराने में हुआ था वे यह भी नहीं बताते कि उसका जन्म नंदवंश या निम्न कुल में हुआ था। साथ ही भारतीय पुराण ग्रंथ महावंश एवं कौटिलीय अर्थशास्त्र नंदों के ही निम्नकुलीन अब होने का विवरण देते है। पर्वतश्वर द्वारा चंद्रगुप्त के वृषल कहे जा से संबंध में भी प्रखांड ने भूमिका मे अपनी धारणा व्यक्त की है और स्पष्ट भी किया है। वृषल शब्द से चंद्रगुप्त का क्षात्रियत्व ही भासित होता है यही मालूम होता है कि जो क्षत्रिय लोग वैदिक क्रियाओं से उदासीन हो जाते थे उन्हें धार्मिक दृष्टि से वृषलत्व प्राप्त होता था।

चाणक्य द्वारा चंद्रगुप्त को गुप्त कुल में शिक्षा दिए जाते का प्रमाण भी ऐतिहासिक आधारों पर है। यद्यपि इस प्रसंग को कतिपय विज्ञान ऐतिहासिक नहीं मानते फिर भी प्रमाण ऐतिहासिक ही है। मगध के निर्वासित राजकुमार के रूप में चंद्रगुप्त को प्रस्तुत करने की अवधारणा अनुश्रुतियों और परंपराओं के आधार पर है।

चाणक्य और चंद्रगुप्त का पारस्परिक संबंध मुख्य रूप से तृतीय और चतुर्थ अंक में परिलक्षित होता है। प्रसाद का रोमानी दृष्टिकोण घटनाओं की संवेदनीयता एवं पात्रों के मनोविज्ञान को उभारने में काफी सफल रहा है चंद्रगुप्त के ऊपर चाणक्य का

नियंत्रण एंव उसकी आज्ञापालन की वृत्ति प्रसाद की अपनी परिकल्पना पर है। अपने माता-पिता को देखते ही चंद्रगुप्त का ममत्वमय रूप चाणक्य के एक आदेश से ही नियंत्रित हो उठता है। चंद्रगुप्त सफलता का एक ही क्षण होता है, आदेश से और कर्तव्य से बहुत अंतर है। यद्यपि इन अंकों में चाणक्य और चंद्रगुप्त का स्पष्ट वार्तालाप नहीं हुआ है। चंद्रगुप्त जहां स्वतंत्रता पूर्वक वक्तव्य प्रस्तुत करता है वहां चाणक्य उपेक्षित का व्यवहार उसके प्रसंग बदल देता है, चाणक्य और चंद्रगुप्त के पारस्परिक संबंधों की उद्‌भावना का आधार प्रसाद की अपनी परिकल्पना पर आधृत है, कौमुदी महोत्सव का प्रसंग मुद्राराक्षस के आधार पर है, चतुर्थ अंक में कल्याणी के आत्मघात के उपरान्त चाणक्य चंद्रगुप्त को निस्कंटक घोषित करता है। चंद्रगुप्त का विचलित भाव जान कर विवाद न करने के लिए कठोर आदेश दे देता है।

विजयोत्सव निषेध में भी चंद्रगुप्त और चाणक्य की वार्ता अधिक मुखर नहीं हो सकी है, चंद्रगुप्त का रोष यहां मुद्राराक्षस की तुलना में विजयोत्सव की अपेक्षा माता-पिता के चले जाने पर है जो कि प्रसाद की पूर्ण काल्पनिक अवधारणा है। चंद्रगुप्त यहां भी चाणक्य के द्वारा परिचालित है। चाणक्य चंद्रगुप्त के भले के लिए ही सब कुछ सोचता है। यद्यपि माता-पिता का चला जाना चंद्रगुप्त को बुरा लगा है किंतु चाणक्य के कर्म की कसौटी परिणाम में भलाई प्रस्तुत करने वाली है! माता-पिता का रहना उसकी दृष्टि में चंद्रगुप्त के एकाधिपत्य में बाधक है। चाणक्य के नियंत्रण में चंद्रगुप्त स्वीकारता है मेरी सत्ता कठपुतली सी है।

चतुर्थ अंक में आगे चल कर केवल दो संवादों में चंद्रगुप्त कठोर बन कर वार्ता करता है जो काफी स्वाभाविक बन पड़ा है, चंद्रगुप्त के भावी कार्यकलापों को कल्याणमय बनाने की मंगलाशंसा के मुक्त चाणक्य अपने ब्राह्मणत्व पर गर्वित हो कर सब कुछ त्याग कर चल देता है, यद्यपि अंत में परिस्थितियों से धवनात होने पर पश्चाताप में वेदना ही उभरती है।

चंद्रगुप्त और चाणक्य के संबंधों का प्रसाद कृत विवरण मुख्यतया उनकी अपनी कल्पना द्वारा विरचित है या फिर मुद्राराक्षस और डी.एल.राव के त्वो का यत्किंचित आभास मात्र है किन्तु अपनी भौतिक प्रक्रिया और स्वतंत्रकल्पना पर प्रसाद ने किसी भी पूर्ववर्ती नाटक कार की अवाधारणा को आरोपित नहीं होने दिया है।

चंद्रगुप्त के बुत्त का विवरण देने वाला दूसरा प्रमुख नाटक शशि गुप्त है जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि प्रस्तु नाटक मुख्यतया हरिश्चंद्र सेठ के नवीन अनुसंधान पर आधारित है। शशिगुप्त चंद्रगुप्त ही है तथा वह अंश्वक जाति का अधिपति था इसका विवरण इतिहास कार भी देते है - आश्वकायतो ने अपने यूनानी शासक का

जीना दूभर कर दिया वह शिक्षिकों दूस अर्थात् शशिगुप्त नायक भारतीय देश द्रोही था जो यूनानी साम्राज्यवाद का भारतीय एजेन्ट था। दृस्टव्य है कि सेठ गोविन्द दास का आग्रह ऐतिहासिक साक्ष्यों का यतातया विवरण देने की ओर अधिक रहा है। इसलिए प्रस्तुत नाटक में वास्तविकता की अवधारणा भी अवश्य गई है परन्तु अधिक सीमा में नहीं।

शशिगुप्त में भी चंद्रगुप्त को नंद वंशीय नहीं बताया गया है - नए अनुसंधानों के आधार चंद्रगुप्त को परिचमोत्र भारत का निवासी बताया गया है। साथ ही चाणक्य और चंद्रगुप् में प्रारम्भ से ही घनिष्ठ संबंध दिखाया है। चाणक्य और चंद्रगुप्त इस नाटक में नवीन व्यक्तित्व ले कर आते है। प्रारम्भ में चंद्रगुप्त का स्वतंत्र व्यक्तित्व स्पष्ट होता है जब गुरु देव की आज्ञा मिलने पर भी क्षत्रय बनने की अपेक्षा युद्ध के लिए आग्रह करता है। यद्यपि आगे चल कर वह चाणक्य की आज्ञा मान लेता है और अपनी योजना के अनुसार सिकंदर का विरोध बन बैठता है। - चंद्रगुप्त सिकन्दर से मिला था। इसका विवरण तो अन्य इतिहास कार भी देते है किन्तु क्षत्रय बनने का उल्लेख हरिशचंद्र सेठ के अनुसंधान के ही आधार पर है।

शशिगुप्त चाणक्य की आज्ञा से सिकन्दर का शारणागत अवश्य बन जाता है किन्तु उसके स्वाभाविक व्यक्तित्व का परिचय उसकी गतिविधियों से मिलता है। यहां भी चाणक्य चंद्रगुप्त के कल्याण के लिए अपनी आज्ञा से उसके परिचालित करता है।

चंद्रगुप्त और चाणक्य के विद्रोह से सिकन्दर सिंध और मकरान के मरुस्थल हो कर भागा साथ ही इन प्रदेशों से सिकन्दर के विरुद्ध ब्राह्मणों को उत्तेजित किया गया इसका ऐतिहासिक साक्ष्य डा. सेठ की नवीन अनुसंधति पद्यति पर है।

चंद्रगुप्त और चाणक्य के मध्य वैमनस्य की भावना प्रस्तुत नाटक में नहीं उभारी गई है। बस एक स्थल पर पर्वतक की हत्या के उपरान्त शशिगुप्त स्पष्ट शब्दों मे चाणक्य से वार्तालाप करता है विविध तथ्यों के स्पष्टी करण के उपरान्त चाणक्य के प्रति नतमस्तक हो जाता है। चाणक्य कुपित यहां भी हुआ है किन्तु क्रोध की भावना अधिक तीव्रता पर नहीं है। साथ ही शशिगुप्त को छोड़ कर अनायास ही वह चला नहीं जाता है।

एक नवीन परिकल्पना इस नाटक में प्रस्तुत की गई है। अन्य नाटकों की अपेक्षा विषयोत्सव की घोषणा यहां चाणक्य करता है। एवं उत्सव बंद होने की घोषणा चंद्रगुप्त करता है।

डा. रामकुमार वर्मा कृत कौमुदी महोत्सव जो कि मुद्रा राक्षस की घटना के आधार पर है चंद्रगुप्त और चाणक्य के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक रूप ले कर प्रस्तुत होता

है। चाणक्य और चंद्रगुप्त का व्यक्तित्व समाहर्ता बसुगुप्त के शब्दों में सर्माट के बाहुबल और आचार्य की चाणक्य की नीति की क्षमता से आयुतसिद्ध रूप से संबद्ध है।

चंद्रगुप्त ने तक्षशिला में शिक्षा पाई यह ऐतिहासिक संदर्भ में है। किन्तु यह एक नवीन कल्पना प्रस्तुत हुई है कि तक्षशिला मे ही चाणक्य और चंद्रगुप्त की परस्पर मैत्री हुई - इतिहासकार तो इस विषय में ही एक मत नहीं कि चाणक्य ने चंद्रगुप्त को शिक्षा दिलाई। अनुश्रुतियां और परंपराए बताती है। राजकी लाभ करते समय चाणक्य ने चंद्रगुप्त को देता था और उसे अपने साथ ले गया था।

चाणक्य और चंद्रगुप्त का पारस्परिक वैमनस्य यहां नाटकीय कौतूहल की अवधारणा से युक्त हो कर आया है। चंद्रगुपत का स्वतंत्र व्यक्तित्व यहां स्पष्ट रूप में उभरा है विवाद की स्वाभाविकता लाने में चंद्रगुपत और चाणक्य के कठोर वार्तालाप सफल हुए है। मौर्य चंद्रगुप्त हिमादि की तरह सुदृढ़ है जिसे महामंत्री चाणक्य की कुटिल राजनीति रूप आधियों के झोंके एक कण भर भी विचलित नहीं कर सकते। सम्राट् का स्वाभाविक व्यक्तित्व यही स्पष्ट रुप में दिखलाई देता है - इसी प्रकार चाणक्य का ब्राह्मणत्व भी गर्जन करता दिखाई देता है दोनों के व्यक्तित्व अनपे आपके महान उपलब्धि है। नाटककार की कल्पना के परियार्श्व में जो ऐतिहासिक सत्य प्रतिफलित हुआ है, दोनों ही महापुरुषों के व्यक्तित्व को अपनी-अपनी महानता में प्रस्तुत कर सका है।

चंद्रगुप्त मौर्य की सम्राट के रूप में तथा चाणक्य की तत्कालीन नीति विशारद के रूप में जो मर्यादा अभिव्यक्ति हुई है वह नाटक कार की मौलिक प्रतिभा की परिचालक है।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का नाटक आचार्य विष्णुगुप्त शुंड काल्पनिक ऐतिहासिक नाटक है अस्तु ऐतिहासिक संदर्भ उसमें अनुपलब्ध ही है यत्र तत्रं प्रमाणिक उल्लेख है वे मुख्य संदर्भ उसे अनुपलब्ध ही है यत्र का प्रमाणिक उल्लेख है वे मुख्य रूप से अनुश्रुतियों और परंपराओं पर आधृत है।

चंद्रगुप्त मौर्य को यहां भी क्षत्रिय सिद्ध करने का प्रयास किया गया है, राजकीडन करते हुए चंद्रगुप्त को चाणक्य ले गया था यह अवधारणा महावंश के आधार पर है। १. विष्णुगुप्त का नियंत्रण यहां भी चंद्रगुप् पर है। मातृमहो से ग्रस्त चंद्रगुप्त के मोह को कीलित करने का आदेश देते हुये। आत्माये पृर्थिवा त्येजत की लोक कल्याण के प्रति कल्याण के प्रति शुभेषा व्यक्त करता है।

प्रमाणिक उल्लेखों से सिद्ध हो है कि चाणक्य का एक अन्य नाम विष्णुगुप्त भी था। और संभवत: यही उसका वास्तविक नाम़ था कौटिल्य या चाणक्य उसके पैतृक

नाम है। नाटक कार ने इसी आधार पर अपन नाटक का नाम शशिगुप्त रखा है। चद्रगुप्त मगध पर आक्रमण के पूर्व सिकन्दर से मिला था यह धारणा ऐतिहासिक संदर्भ में है।

चाणक्य और चंद्रगुप्त के मध्य विवाद प्रस्ततु नाटक में नहीं हुआ है, दोनों के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट होने का अवसर नहीं मिल सका है।

(ख) नंद वंश का शासन काल और उसकी प्रमुख घटनाएं

मुद्राराक्षस की कथा का विन्यास नंद वंश के विनाश की घटनाओं के बाद की परिस्थितियों एवं क्रियाकलापों पर निर्मित है, अतः इसमें नंद वंश की प्रमुख घटनाओं का विस्तार से उल्लेख नहीं मिलता है। चाणक्य या अन्य पात्रों के वार्तालाप द्वारा उक्त काल की घटनाओं की सूचना भर मिलती है।

चाणक्य ने यज्ञासन से हटाए जाने के उपरान्त नंद वंश के नाश की प्रतिज्ञा की थी और अवसर पाते ही अपनी कूटनीति के द्वारा उसका नाश भी कर डाला था इस मान्य ऐतिहासिक तथ्य की सूचना नाटक मे मिलती है।

इतिहास के प्रमाणों से सिद्ध होता है कि नंद अपने क्रूर कृत्यों से जनता के लिए अप्रिय बना था। लोकविश्रुत नंद की इसी अप्रियता के कारण प्रस्तुत नाटक में नंद को पृथिवी के रोग की भांति बताया गया है नंद धन का लोभी था इसका उल्लेख महावंश तथा अन्य ग्रंथों से मिलता है - धन के लोभी होने का विवरण मुद्राराक्षस भी देता है। चंद्रगुप्त की नंद के साथ तुलना करते समय स्पष्ट किया गया है कि नंद गुप्त न तो नंद के समान उत्सिक है और न कुसचिव दृष्टि भार है।

नंदवंश के संबंध में इतनी प्रमाणिक बातें मिलने के उपरान्त एक नवीन उल्लेख केवल मुद्राराक्षस में मिलता है वह यह कि नौ नंदों के बध के उपरांत भी नंद वंश की अंतिम शाखा के रूप में स्वार्थ सिद्धि का उल्लेख है जिसे तपसी बन कर भाग जाने के उपरांत भी चाणक्य ने मरवा डालता है।

दृष्टि राज के उपोदघात में स्वार्थ सिद्धि नामक व्यक्ति का उल्लेख आया है, स्वार्थ सिद्धि की पत्नी सुनदा के ९ पुत्र - तब नन्द कहलाए तथा मुरा का मौर्य मौर्य चंद्रगुप्त का पिता था। इसका प्रमाण संभवतः टीकाकारको नाटक में चंद्रगुप्त को मौर्य जाने से मिला है। इस प्रकार स्वार्थ सिद्धि चंद्रगुप्त का दादा सिद्ध होता है। इसी आधार पर चंद्रगुप्त को नदवंश की संतान कहा गया है। क्योंकि नाटक मे स्वार्थसिद्ध को नंद कहा गया है। पुरावीप में केवल नौ नंदों का उल्लेख है। विष्णु पुराण में स्वार्थसिद्धि एवं उसके बूढ़े मंत्री वक्रनास का उल्लेख अवश्य है किन्तु उसे नंद नहीं कहा गया है

बृत्कथा के रूपान्तर भी इस स्वार्थसिद्धि नामक दसवे नंद का उल्लेख नहीं करते - इससे सिद्ध होता है। गुणाढ्य की बृहत्कथा में भी स्वार्थ सिद्धि का कोई उल्लेख नहीं रहा होगा - यह भी दृष्टव्य है कि केवल कुछ ही उल्लेखों को छोड़ कर पूर्व वर्ती ग्रन्थों की कथाओं के तथ्यों तथा मुद्राराक्षस के तथ्यों से कोई अधिक मेल नहीं बैठता है।

प्रसाद के चंद्रगुप्त में नंद वंश के शासन काल की प्रमुख घटनाओं में चाणक्य का अपमान, सिकन्दर का आक्रमण एवं मगध प्रयाण की उसकी योजना तथा चाणक्य की कूटनीति द्वारा नंद वंश के अंत का उल्लेख है।

चंद्रगुप्त में नंद वंश का परिचय प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में मगध सम्राट के विलास कानन के व संतोत्सव से उपलब्ध होता है। नंद विलासी एवं प्रमत था। यह ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। राक्षस को नंद के अमात्य रुप से चित्रित करना मुद्राराक्षस के आधार पर है किन्तु वंसतोत्सव के अवसर पर नंद का अमात्य बनाया जाना काल्पनिक है। राक्षस को प्रसाद ने अमात्य वक्रनास का भ्रातृ-पुत्र बताया है। विष्णु पुराण के उल्लेख बताते है। वक्रनास स्वार्थसिद्धि का ब्राह्मण मंत्री था किन्तु आधारों पर राक्षस से वक्रनास का सर्वत्र प्रसाद ने जोड़ा है स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। संभवतः ब्राह्मण अमात्यों की परम्परा को ठोस आधार देने के लिए प्रसाद ने ऐसी कल्पना की है - कूटनीति में चाणक्य की सी शक्त्ल रखने वाला, राक्षस ललित वृत्तियों को ओर उन्मुख रह कर अभिनयादि करता था यह भी प्रसाद की कल्पना पर आधारित है।

नंद के कुल के विषय में प्रसाद प्रतिवंशी के मुख से नंद को महापद्यम का जाटज पुत्र कहा है। यह मुख्य रूप से ग्रीक इतिहास कारों की धारणा पर है। क्योंकि पुराणों के उल्लेख बताते हैं कि प्रथम नंद शासक महापद्यमन नंद शूद्री गनविभव था प्रसाद ने अपनी भूमिका में भी अन्य प्रमाणिक ऐतिहासिक उल्लेखों के आधार पर अंतिम नंद सम्राट को धननंद बताया है। संभव हो सकता है उसकी हीनता द्योतिक करने के लिए प्रसाद ने जाटज शब्द का प्रयोग किया है। चंद्रगुप्त नाटक में जिस नंद का वर्णन है वह नंद वंश का अंतिम शासक है और प्रसाद की मान्यताओं के अनुसार धननंद है। अंतिम शासक यही धननंद शूद्रागनद् भव था या नहीं इसका कोई प्रमाणिक विवरण नहीं मिलता।

नंद बौद्ध या किसी अन्य धर्म का अनुयाय इसका विस्तृत विवरण इतिहास में अनुपलब्ध है। यह माना जा सकता है कि तदयुगीन बौद्ध ब्राह्मण संघर्ष का जीवन्त्व रूप देने के लिए प्रसाद ने अपनी कल्पना का आश्रय ले कर नंद का बौद्ध रूप में चित्रित किया होगा।

नंद ने चाणक्य का अपमान किया इसका विवरण कथा सरित्सागर, चाणक्य कथा मुद्राराक्षस आदि ग्रंथ प्रस्ततु करते है। चाणक्य का नंद द्वारा अपमान प्रसाद ने भी दिखाया है किन्तु उसे अपनी कल्पना द्वारा परिवर्तित कर दिया है। राष्ट्र के हित चिन्तन की आकांक्षा से चाणक्य अपने निर्वासित पिता के अवधृत ब्रह्मस्व की चर्चा करता है और स्वयं उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है उद्धत नंद अपने सेवकों द्वारा शिखा पकड़ कर चाण्क्य को बाहर निकलवा देता है। शिखा पकड़ कर निकाले जाने की चर्चा के सम्मान की रक्षा करने के कारण किया गया है, चाणक्य कथा और कथासरित्सागर के उल्लेख इससे पृथक है।चाणक्य को बंदी बनाया जाना एवं चंद्रगुप्त द्वारा उसकी मुक्ति भी काल्पनिक है। चाणक्य कथा के आधार पर है। चन्द्रगुप्त का अपमान भी अनपे गुरु पर्वतेश्वर द्वारा नंद की कन्ता के परिणय की अस्वीकृति काल्पनिक है।

नन्द के क्रूर शासन का उल्लेख इतिहास सम्मत मान्यताओं पर है। शकटार के अंधकूप में बंधी होने की अवधारणा का आधार कथासरित्सागर है, किन्तु यहां प्रसाद ने उसे किंचित् परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है। शकटार के सौ पुत्रों के स्थान पर सात पुत्रों का उल्लेख है। वहां शकटार की मुक्ति वररुचि करते है-यहां शकटार की मुक्ति स्वयंमेव अपने प्रयासों द्वारा हुई है। नंद बध के लिए शकटार और चाणक्य की मैत्री कथासरित्सागर के आधार पर है ग्रीक इतिहासकारों द्वारा वर्णित सिकन्दर का आक्रमण एवं उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थियों के आधार पर मगध विद्रोह के अवसर पर शकटार द्वारा नन्द का वध एवं उसी के द्वारा चंद्रगुप्त को सम्राट घोषित कहना प्रसाद की अपनी अवधारणा के अनुसार है क्योंकि इसके द्वारा ऐतिहासिक वातावरण अधइक सजीव बन सका है।

नंद वंश के शासन काल की अन्य प्रमुख घटना सिकन्दर के आक्रमण की योजना थी, प्रथम अंक के प्रथम दृश्य से ही सिकन्दर के द्वारा आक्रमण किए जाने की भावी स्थितियों का उल्लेख प्रस्तुत किया गया है—यद्यपि इस दृश्य की घटना में काल्पनिकता का संस्पर्श अधिक मात्रा में है तथापि प्रमुख पात्रों के वार्तालाप से पर्याप्त ऐतिहासिक तथ्य समुपहब्ध होते हैं। उनका आधार मुख्यतया ग्रीक इतिहास है।

ग्रीक इतिहास कार बताते है- गांधार नरेश ने उत्कोष के रूप में स्वर्ण ले कर सिकंदर के लिए भारत में प्रवेश का द्वार खोल देने दिया था। चंद्रगुप्त नाटक में गांधार राजकुमार द्वारा अर्गला खोल देने का प्रकरण इसी अवधारणा पर है - चाणक्य और आम्मीक का पारस्परिक विवाद प्रसाद की अपनी कल्पना पर है -ग्रीक इतिहास कार्टों के उल्लेख बताते हैं कि सातवों ने संगठित होकर सिकन्दर के विरुद्ध युद्ध किया। इसी

प्रकार कठ एक और वीर जाति थे जो अपने शौर्य के लिए दूर-दूर तक प्रख्यात थीं। मातव सिंहरण आम्मीक के प्रति जो आक्रोश व्यक्त करता है वह इस प्रसंग में देखने पर अत्यन्त स्वाभाविक प्रतीत होता है। इसी प्रकार जलका के वीरत्व भरे भाव यद्यपि काल्पनिक है तथापि ऐतिहासिक संभाव्यता की रक्षा करने में सहायक हैं। ऐतिहासिक संदर्भ बताते है इस युद्ध में पुरुषों के साथ स्त्रियां भी लड़ी थी। कठ जाति की बालाओं ने ग्रीकों के विरुद्ध प्रलयंकर युद्ध किया। छठे दृश्य में पुनः सिकंदर के आक्रमण काल की योजनाओं का विवरण है, इस दृश्य मे भी काल्पनिकता के पररिपार्श्व में ऐतिहासिक संदर्भ रखे गए है, ओहिंद में सेतु बनाए जाने की अवधारणा प्रसाद की अपनी विचारधारा के अनुरूप है। इतिहास से सिद्ध होता है कि ग्रामीक से मैत्री हो जाने के उपरान्त सेना ने ओहिंद पर नौकाओं से बने पुल को पार किया था। अन्य उल्लेख भी यही सिद्ध करते हैं कि पहले से पुल को सिकंदर ने लकड़ियां आदि डलवा कर सुदृढ़ बनवाया था। मालविका द्वारा उसका मानचित्र बनवाया जाना सिंहरण एवं यवन का विवाद एवं युद्ध काल्पनिक हैं। ये समस्त काल्पनिक उद्‌भावनाएं राजनीतिक वातावरण को सार्थक बनाने वाली है। दूसरे इनसे ऐतिहासिकता को विशेष क्षति नहीं पहुंची है।

ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ विशेष संदर्भ आठवें दृश्य में भी समुपलब्ध है। अलका के द्वारा गांधार में विद्रोह मचाए जाने का विवरण इतिहासकारों के उन उल्लेखों के आधार पर है जो यह बताते हैं कि सिकन्दर के आक्रमण के समय स्त्रियां भी पुरुषों के साथ लड़ी थी।

दसवें दृश्य के प्रारम्भ में ही सिल्यूकस और अलका का पारस्परिक वार्तालाप काल्पनिक है। सिल्यूकस द्वारा चंद्रगुप्त की कथा भी कल्पना के आधार पर है। दाण्ड्यापन और सिकंदर के मध्य हुई वार्ता ऐतिहासिक है और ग्रीक इतिहास पर आश्रित यह पिछले अध्याय में भी स्पष्ट किया जा चुका है। सिकंदर से चंद्रगुप्त पंजाब में मिला था यह भी ऐतिहासिक संदर्भ है नाटकीयता के आग्रह से प्रदाह ने इस प्रसंग का उल्लेख यहां प्रस्तुत किया है।

द्वितीय अंक के प्रारंभिक दृश्य की अधिकांश घटनाएं काल्पनिक है। ऐतिहासिकता का आधार मात्र इतना ही है कि चंद्रगुप्त ने सिकन्दर को रूष्ट किया था जिसके कारण उसे पंजाब से भागना पड़ा। इसके बाद ही सिकन्दर के विरुद्ध विद्रोह रचा गया और वह मगध पर आक्रमण न कर सका।

द्वितीय दृश्य की भी प्रारंभिक घटनाएं काल्पनिक है जिन्हें नाटकीयता वृद्धि के लिए ही परिकल्पित किया गया है। सिकन्दर और पर्वतेश्वर ने साथ झेलम के तट पर हुए युद्ध में चाणक्य और चंद्रगुप्त भी थे, इसका कोई प्रमाणिक विवरण नहीं है। कल्याणी,

चंद्रगुप्त, अलका आदि के क्रिया-कलाप कौटिलीय अर्थशास्त्र के गूढ़ प्रणिधि योजना के आधार पर है। यवन सेना के रातों रात वितस्ता पार करने का उल्लेख पूर्ण ऐतिहासिक है जिसका समर्थन भारतीय एवं ग्रीक दोनों ही इतिहासकार करते हैं। युद्ध का विवरण एवं पर्वतेश्वर तथा सिकंदर का वार्तालाप भी ऐतिहासिक है। कल्याणी का युद्ध स्तल मे जाना पूर्णकाल्पनिक है। यवनों से मैत्री देख कर कल्याणी द्वारा पर्वतेश्वर का अपमान भी काल्पनिक है।

चौथे दृश्य में मालविका और चंद्रगुप्त के वार्तालाप की योजना पूर्ण काल्पनिक है। यहां भी ऐतिहासिक सत्य यही है कि झेलम के तट पर भारतीयों के युद्ध के बाद एक तो भारतीयों के अपरिमित पराक्रम को देख कर दूसरे चाणक्य की कूटनीतियों के सफलीभूत हो जाने पर यवन सेना शिथिल पड़ने लगी थी और यवन सैनिकों ने विपाशा के तट से आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया था। परिणामतः उसकी सेना दो भागों में विभक्त हो कर जल और थल मार्ग से लौटी। यहां प्रसाद ने केवल जल मार्ग से सेना के लौटने का उल्लेख किया है। जल मार्ग से सेना के लौटने का समाचार जान कर ही मालव और शुंडकों ने युद्ध का निश्चय किया तथा सौभूति और शिविराज्यों को धंस करते हुए सिकंदर ने मालवों के साथ युद्ध किया था। चन्द्रगुप्त ने शुंडकों का सेनापतित्व किया था, इसका कोई उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता संभवतः चंद्रगुप्त के चरित्र का उत्कर्ष दिखाने के लिए प्रसाद ने ऐसी अवधारणा प्रस्तुत की है।

गुरु विजय के उपरान्त सिकंदर ने गांधार और पुरराज्यों का वैवाहिक संबंधों में बाधा था। इसी ऐतिहासिक सत्य को ठोस आधार देने के लिए संभवतः प्रसाद ने पर्वतेश्वर की भागिनी से आंभीक के विवाह की आस्था प्रस्तुत की है।

मालवों और शुंडकों के स्कंधावार में की गई युद्ध परिषद् भी ऐतिहासिक है। मालव युद्ध में पर्वतेश्वर की सहायता ऐतिहासिक संभाव्यता के अनुरूप है, इतिहास के उल्लेखों से सिद्ध होता है कि कुछ प्रदेशों को जीतने के लिए पर्वतेश्वर ने सिकंदर को सहायता दी थी। अस्तुत स्वाभाविक रहा होगा कि मालवों के साथ युद्ध किए जाने में भी पर्वतेश्वर ने सिकंदर को सहायता दी हो।

मालवों के संधि विग्रहिक अमात्य से यवन के मिलने जाने की योजना ऐतिहासिक संदर्भ में है। स्मथ ने स्पष्ट किया है कि लौटते समय सिकंदर नहीं चाहता था कि वीर जातियों से युद्ध करे वह इन जातियों के बीच अपना आतंकित रुप दिखा कर ही अभिमान के साथ लौट जाए। चन्द्रगुप्त के द्वितीय अंक के आठवें दृश्य में यवन सैनिक का कथन कि देव पुत्र ने आज्ञा दी है कि मालव-नेता मुझ से आ कर भेंट करें और मेरी जल - यात्रा की सुविधा का प्रबंध करें। इसी संदर्भ में है।

मालव दुर्ग के युद्ध की घटना मे इतिहास की मान्यताओं को प्रसाद ने यत्किंचित परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है इतिहास के अनुसार सिकंदर स्वयं तीन सैनिको के साथ एक सीढ़ी की सहायता से दुर्ग की दीवार पर चढ़ा था चारों ओर सनंद मालव सेना को देख कर वह दुर्ग के अन्दर कूद गया उसका एक सैनिक आहत हुआ साथ ही एक तीर द्वारा सिकन्दर भी घायल हुआ। बड़ी कठिनाई से सिकन्दर के प्राण बच सके।

मालव दुर्ग में अलका का युद्ध करना एवं सैनिकों का मारना तथा सिकन्दर द्वारा अलका को पकड़ने का प्रयास, सिकन्दर सिंहरण का द्वंद आदि घटनाएं कल्पना पर आश्रित है। मालव शुंडकों के युद्ध सिकन्दर पराजित हुआ था यह भी ऐतिहासिक घटना है। तीसरे अंक की घटनाएं बताती हैं कि स्वयं सिकन्दर ने ही मालवो के पास संधि प्रस्ताव भेजा था, कर्टियस बताता है कि युद्ध के बाद मालवों और यवनों ने मिल कर उत्सव मनाया था जिसमें सिकन्दर ने भी भाग लिया था। इस अंक में उत्सव आदि की योजनाएं जैसे अलका सिंहरण का विवाह यद्यपि प्रसाद की काल्पनिक मान्यताओं के अनुरुप है तथापि घटनाओं का संयोजन ऐतिहासिक संदर्भों की रक्षा करने वाला है।

फिलिप्स की हत्या ऐतिहासिक मान्यताओं के अनुसार है इतिहास बताता है कि सिकन्दर के भारत से लौटते समय फिलिप्स जब उसे विदा करने गया था वहीं से लौटते समय किसी ने उसकी हत्या कर दी। यहां कार्नेलिया के साथ चंद्रगुप्त के परिणय एवं फिलिप्स के साथ चंद्रगुप्त के द्वंद की कल्पना प्रसाद के घटनाओं की नाटकीयता में वृद्धि करने के उद्देश्य से की है।

सेठ गोविन्द दास के शशि गुप्त नाटक मे नंद वंश के शासन की प्रमुख घटनाओं में सिकन्दर के आक्रमण का वर्णन विस्तार से है। नंद राजा के विषय में केवल तीन दृश्यों से परिचय मिलता है - नंद के विषय में ऐतिहासिक संदर्भ है कि वह महाविलासी था नंद का इस प्रकार का चरित्र नाटक कार ने ग्रीक इतिहास कारों की मान्यता के अनुरुप है। सिकन्दर के आक्रमण की सूचना मंत्री द्वारा पाकर भी नंद विलासिता में मग्न रहा वह नाटककार की कल्पना के अनुसार है। नंद की विलासिता का नाटकीय रुप इसके द्वारा उभारा गया है।

चंद्रगुप्त और चाणक्य का नंद द्वारा अपमान किया गया, इसका कोई उल्लेख इस नाटक में नहीं है - और न ही यह उल्लेख है कि चाणक्य ने अपने प्रतिकार के लिए नन्द वंश का अंत किया था – यहां शकटार अपने पुत्रों के वध के लिए नंद से प्रतिकार करता है। राक्षस की स्वामि-भक्ति प्रमाणिक संदर्भों में मुद्राराक्षस एंव प्रसाद के चंद्रगुप्त के आधार पर है। राक्षस और शकटार का वार्तालाप नाटककार की कल्पना

के आधार पर है। इसी वार्तालाप में नाटक कार ने एक और नई कल्पना प्रस्तुत की है कि शकटार राक्षस से निवेदन करता है कि या तो तुम शकटार को आज्ञा दो कि वह नंद का वध कर अपने सातों पुत्रों के वध का प्रतिकार ले या इस हुटिका से शकटार का वध करो।

पुत्रों के वध के प्रतिकार की अवधारणा मूल्यतया अनभूतियों पर आश्रत है, कथासरत्सागर में आए शकटार सौ पुत्रों के स्थान पर सात पुत्रों का उल्लेख नाटककार ने प्रसाद की मान्यताओं के आधार पर किया है। शकटार के बाण द्वारा नन्द का वध होता है। सात पुत्रों के वध का प्रतिकार के लिए वह सात बाण मारता है। यह नाटककार की काल्पनिक मान्यता है। शकटार द्वारा नन्द के वध का उल्लेख प्रसाद ने भी किया वहां शकटार नंद का वध छुरा मारकर करता है।

यह पहले भी बताया जा चुका है कि डॉ.हरिश्चंद्र सेठ के नवीन अनुसंधान का आधार ले कर इस नाटक में सेठ गोविन्ददास ने कतिपय इतिहास संबंधी नई मान्यताओं की स्थापना की है – सिकन्दर के आक्रमण के विवरण के उल्लेखों में भी अन्य इतिहासकारों की मान्यताओं के साथ प्रमुखता डा. सेठ की मान्यताओं को दी गई है।

शशिगुप्त का फारस में अपनी सेना ले कर जाना और सिकंदर के विरुद्ध करना ऐतिहासिक संदर्भ में है। प्रारम्भ में ही देश द्रोही आंभीक का वर्णन भी ऐतिहासिक मान्यताओं के आधार पर है। अश्वकों ने वीरता पूर्वक आखिरी दम तक युद्ध किया था- यह भी इतिहास के परिपार्श्व से रखा गया है। सिकन्दर ने अश्वकों पर अत्याचार किए थे यह भी इतिहास की धारणाओं के आधार पर है अश्वकों ने आत्मसमर्पण किया था यह तो इतिहास भी बताता है अतः नाटककार ने काल्पनिकता की सृष्टि कर अधिपति शशिगुप्त को जो सिकंदर की शरण में भेजा है वह ऐतिहासिक संभाव्यता के अनुरुप है- किन्तु मौर्य चंद्रगुप्त सिकन्दर की शरण में गया था इसका कोई उल्लेख इतिहास नहीं करता।

दूसरे दृश्य में भारत की चीटियों और वटवृक्ष के बारे में यवन सैनिकों के वार्तालाप का आधार ग्रीक इतिहास है - किन्तु सैनिकों का यह असामाविक वार्तालाप नाटकीय प्रभावात्मकता को नष्ट कर देने वाला है। सिल्यूकस की पुत्र हेलन का शशि गुप्त के प्रति आकर्षण प्रसाद की कार्नलिया - चन्द्रगुप्त के प्रणय की मान्यताओं पर है। आंभीक और हेलन का वार्तालाप, सिल्यूकस और हेलन का वार्तालाप काल्पनिक है।

दूसरे अंक के दूसरे दृश्य में सिकंदर को अवतार रुप में चित्रित करना, तथा पर्वतक की राजधानी के पुरवासियों का कौतूहल भरा पारस्परिक वार्तालाप-काल्पनिक

होने के साथ नाटक में निरर्थक चित्रण पद्धति का द्योतक है। इसी वार्तालाप में ईरान में सिकन्दर द्वारा किए गये अत्याचार वारयवहु की हत्या आदि के उल्लेख ऐतिहासिकता के परिपार्श्व में है।

भारतीय पराक्रम में चरम रुप से सिकंदर का साक्षात्कार झेलम के तट पर हुआ था, भारतीय सैनिकों के हाथियों ने यवन सैनिकों को रौंद डाला - इसकी साक्षी इतिहास प्रस्तुत करता है।

यही डा. सेठ के नवीन अनुसंधान व अवधारणाओं के आधार पर नाटक कार ने यह सिद्ध किया है कि झेलम के तट पर हुए युद्ध में पर्वतक विजयी हुआ था। डा. सेठ द्वारा उल्लिखित यूनानी वृत्तांतों के प्राचीन एथिओपिक पाठों के आधार द्वारा घटना को प्रमाणिक ऐतिहासिक रुप प्रदान किया है। सिकंदर ने ही पर्वतक के पास संधि प्रस्ताव भेजा था यह भी घटना ऐतिहासिक है और एरियान की मान्यताओं के आधार पर है। सिकंदर के आक्रमण के समय सेल्यूकस की पुत्री का उपस्थित होना प्रसाद की मान्यताओं के आधार पर है इतिहास इसका कोई विवरण नहीं देता।

चाणक्य और चंद्रगुप्त ने ही लोगों को भड़का कर सिकन्दर की सेना मे विद्रोह फैलाया था यह भी ऐतिहासिक घटना है। द्वितीय अंक के पांचवें दृश्य में सिकंदर और पर्वतेश्वर के साथ हुआ वार्तालाप काल्पनिक है। इसी दृश्य में पर्वतक के कथन से कि मगध की जनता में महात्मा बुद्ध के अहिंसा सिद्धान्त का बहुत प्रचार है। नंद वंश और उसके शासन काल में बौद्ध धर्म के प्रचार को द्योतित करने का आभास मिलता है - यह प्रसाद की मान्यताओं के आधार पर है।

शशि गुप्त द्वारा किया गया विप्लव एवं क्षत्रिय निकतौर की हत्या ऐतिहासिक घटना है- क्षत्रिय निकतौर की हत्या के उल्लेखों में ही इतिहासकारों ने अश्वकों के नेता सिसिकोट्टस या शशि गुप्त की चर्चा की है।

सिकंदर के सैनिकों ने पिपाशा के तट से आगे बढ़ने से इनकार कर दिया था - और सिकंदर के बहुत कुछ कहने सुनने का भी उन पर प्रभाव न पड़ा है - सिकंदर के बाल काट डालने, कपड़े उतार फेंकने के स्वभाव का चित्रण काल्पनिक है। सिकन्दर के पास चाणक्य का साधु रुप में जाना सिकंदर का भविष्यवाणी पूछना प्रसाद के चंद्रगुप्त में महर्षि दांड्यापन की घटना के आधार पर है यहां नाटककार ने उसे किंचित् परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है। सिल्यूकस और शशि गुप्त का युद्ध भी काल्पनिक है।

पिथान द्वारा सिंध के ब्राह्मणों पर किये गए अत्याचार इतिहास के विवरण में नहीं मिलते। मकरान के मरुस्थल में यवन सैनिकों को अनेक कठिनाइयों का सामना

करना पड़ा था इसके विवरण सभी इतिहासकारों ने प्रस्तुत किए हैं। हेलन और शशिगुप्त का वार्तालाप काल्पनिक है। सेनापति पिथान द्वारा सिकंदर को दी गई सूचना पर्वतक और शशि गुप्त में मैत्री हुई है काल्पनिक और अस्वाभाविक है। इसी सूचना को पा कर सिकंदर की मृत्यु हुई यह कल्पना नाटकीयता में बाधक प्रतीत होती है।

लक्ष्मी नारायण मिश्र का नाटक 'वितस्ता की लहरें' मुख्य रुप से सिकंदर के आक्रमण काल की घटना का उल्लेख करता है। मिश्र जी का दृष्टि कोण मुख्यतः नाटकों में इतिहास का इतिकृत प्रस्तुत करना न हो वरन् ऐतिहासिक घटना को अपनाते हुए भी समग्रतः साहित्यिक रचना का प्रस्तुतीकरण रहा है इसी कारणवश ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा करते हुए काल्पनिकता का अतिशय प्रयोग किया गया है। नाटक कार का दृष्टिकोण मुख्य रुप से सांस्कृतिक रहा है। इसी दृष्टिकोण की पूर्ति में नाटककार इतिहास के तथ्यों को सुरक्षित नहीं रख सका।

विष्णुगुप्त की मेधा का प्रदर्शन इस नाटक में अधिक हुआ है इसकी हेतु इस काल की घटनाएं अपेक्षाकृत कम चित्रित हुई है। प्रथम अंक की समस्त घटनाएं प्रायः काल्पनिक है, इनका कोई ऐतिहासिक उल्लेख नहीं मिलता, प्रारम्भ मे ही युवराज रुद्रदत, तक्षशिला के शरणार्थियों तथा दारपवहु की कन्याओं को वितृस्ता के घाट से ले जाने में युवराज का पहुंचना राजवधू रोहिणी से विष्णु गुप्त का मिलना काल्पनिक घटनाएं है।

सिकंदर ने मिस्र तथा ईरान का ध्वंस किया था। दारपबहु की कन्या आतंकामा अपनी भगिनी और सहपाठियों के साथ ग्रीक सेनापतियों की काम साधिका बनी - नाटक में इस घटना को ऐतिहासिक रुप में रखा गया है - अन्य दो भगिनियों के संबंध में नाटक कार ने काल्पनिकता का प्रयोग किया है, उन दोनों का भद्रबाहु एवं रुद्रदत से परिणय नाटककार की अपनी कल्पना है। तारा और रजनी के उल्लेख भी नाटक कार की मानसिक सृष्टि हैं।

आम्मी के द्वारा गांधार की स्वतंत्रता बेचे जाने एवं उसकी मदद से सिकंदर के पैर जमने की अवधारणा ऐतिहासिक है -तक्षशिला के नागरिकों का पलायन ऐतिहासिक संभाव्यता के आधार पर है - इसके आगे की घटनाएं कल्पनाश्रित हैं - आचार्य विष्णुगुप्त द्वारा राजबधू रोहिणी से दारपबहु की कन्याओं के लिए शरण मांगना वितस्ता की लहरों में सिकन्दर के संकल्प डूब जाने की घटना काल्पनिक है। सिकन्दर से भारत प्रवेश करते समय मार्ग में पड़ने वाली जातियों के प्रति बर्बरता दिखाई थी। यह ऐतिहासिक संदर्भ है।

अश्वकों के संबंध में प्रस्तुत की गई घटना भी ऐतिहासिक है जिसे नाटककार ने परिवर्तित रुप दे कर प्रस्तुत किया है. सिकन्दर ने अश्वक जाति के लोगों को धोखा दे कर उन पर आक्रमण किया था। यहां नाटरकार ने दिखाया है कि वीरतापूर्वक लड़ने रहने पर भी यवनी की विजय नो होने पर यवनराज ने अपने सैनिकों को लौटने को कह दिया, अश्मकों के आश्वस्त लो जाने पर सिकन्दर ने उन पर आक्रमण कर दिया। अंतिम क्षण तक अश्मक जाति के लोग लड़े यहां तक कि उनकी रानी ने भी अपने नेतृत्व में युद्ध करा। रानी सुघोषा की परिकल्पना इतिहास की क्लियोफोस के परिवर्तित नाम के रुप में की गयी है।

सिकन्दर के आक्रमण के समय जो विविध गणतांत्रिक जातियां थीं, जिनके छोटे-छोटे राज्य थे उनमें से अधिकांश ने सिकंदर की शक्ति का आतंकित रुप देख कर आत्मसमर्पण कर दिया इतिहास यह बताता है। मिश्र जी ने इन कबीले सरदारों के आत्मसमर्पण की घटना का उल्लेख किया है।

अगले अंक में आम्मीक के देशद्रोही रुप के संबंध में पुरु का कथन इतिहास सम्राट है इतिहास उल्लेख करता है कि पंचनन्द नरेश की अपरिमित शक्ति देखकर तक्षशिलाधीश ने सिकन्दर की सहायता प्राप्त करने हेतु आत्म समर्पण किया। पुरु स्वीकार करता है कि उससे वर के कारण आम्मीक ने क्रूर यवन के लिए भारत का सिंह द्वार खोल दिया था किन्तु आगे की अन्य घटनाएं जैसे अग्निवर्ण और मातंग द्वारा पारस की राजकुमारी का उद्धार, आर्त्तकामा के उद्धार के समय मातंग की मृत्यु, आचार्य विष्णुगुप्त द्वार पुरु को परामर्श देना सब कल्पित है।

सिकन्दर के आक्रमण के समय गांधार में बौद्ध कुषाणकों के माध्यम से बौद्ध मत के प्रचार की कल्पना ऐतिहासिकता के विरुद्द है दृष्टव्य है कि बौद्ध मत का व्यापक प्रचार मौर्य काल में विशेषतः अकोश के काल में हुआ। नंदों के विषय में मात्र इतिहासकारों की संभावना रही है कि वे बौद्ध या जैन थे।

अगले अंक में मिश्र जी ने खण्ड-खण्ड विभक्त अभिसार कैकय, मालव तथा कठ आदि प्रदेशों के शासकों को सैक्य के लिए जो आमंत्रण प्रस्तुत किया है वह पूर्ण ऐतिहासिक न होते हुए भी लेखक की राष्ट्रीय चेतना का द्योतक है इससे ऐतिहासिकता को विशेष क्षति नहीं पहुंची है।

चाणक्य ने पुरु को यवन नरेश से युद्ध करते समय योग दिया था, यह नाटक कार की अपनी कल्पना है। सम्भवतः उस युग के राजनीतिक ऐक्य के रुप का साक्षात्कार कराने के लिये नाटककार ने आचार्य विष्णुगुप्त को वहां प्रस्तुत किया है।

सिकंदर की प्रेयसी तापा द्वारा पर्सिपोलस के राजमहल का जलाया जाना ऐतिहासिक मान्यताओं के अनुरुप है भारत आक्रमण के समय तापा को उपस्थित करना नाटककार की कल्पना के आधार पर है। पुरु के पास मैत्री के लिए सिकंदर ने अपना दूत भेजा था वह ऐतिहासिक घटना है, किन्तु उस दूत मण्डल में शशिगुप्त भी साथ था यह उल्लेख ऐतिहासिकता को क्षति पहुंचाने वाला है। यद्यपि शशिगुप्त सिकंदर की ओर मिल अवश्य गया था किन्तु पुरु के पास सिकंदर की मैत्री का संदेश ले कर आया इसका कोई विवरण इतिहास में नहीं मिलता। पुरु के द्वारा जो उत्तर दूत मण्डल को दिया गया वह भी इतिहास विरुद्ध कल्पना है।

अभिसार की सहायता के लिये कैकय की दस सहस्त्र सेना का प्रस्थान आचार्य विष्णु गुप्त द्वारा सेना को लौटा देना, ये घटनाएं काल्पनिक हैं। पुरु के द्वारा वितस्ता की धार के मध्य मिलना अभिसार का सहायता न प्रदान करना मुख्य रुप से विष्णुगुप्त की मेधा के प्रदर्शन के उद्देश्य से नियोजित किये गये हैं।

शशिगुप्त द्वारा पुरु को परामर्श देना कि वह सिकन्दर की विशालवाहिनी को नंद की सेना से युद्ध करने का अवसर दे आदि उल्लेख नाटक कार की कल्पना से प्रसूत है। इतिहास में इनका कोई उल्लेख नहीं।

युद्ध में यवन पुरुषों के मरने के बाद उनकी स्त्रियों का दासों से संपर्क होना, गुप्तचर का कार्य करते हुए यवनों का बंदी बनाया जाना और उदारता पूर्वक पुरु द्वारा उन्हें मुक्त करना ये दोनों घटनाोएं काल्पनिक हैं।

तृताय और अंतिम अंक से सिकन्दर द्वारा वितस्ता पार कर आक्रमण करने का उल्लेख है - चोरी से वितस्ता पार करने का उल्लेख ऐतिहासिक घटना है किन्तु नाटक कार ने अपने परिवर्तित दृष्टि कोण के साथ प्रस्तुत किया है। नाटक के अनुसार पहले सिकंदर निर्णय देता है दो सैनिकों का वितस्ता की धार की मध्यभूमि का द्वंद्व होगा किन्तु छल पूर्वक निर्णय की उपेक्षा करते हुए वितस्ता पर आक्रमण कर देता है। इसी प्रकार स्नातकों द्वारा तापा का हरण, सिकंदर का बंदी होना और संधि के लिए तत्पर होना आदि घटनाओं का इतिहास से कोई संबंध नहीं है। ऐतिहासिक सत्य को बिल्कुल परिवर्तित करके दिखाया है।

युद्ध में पुरु के पुत्र का घायल होना ऐतिहासिक परिवर्तन है इतिहास के अनुसार पुरु का पुत्र मारा जाता है। तापा का हरण सुन कर सिकंदर का विलाप करने लगना तापा द्वारा संधि पत्र भेजना पुरु के राज का सिकन्दर को उठा लेना, पुरु द्वारा सिकंदर की रक्षा, तापा का वापस होना सब घटनाएं कल्पित है।

युद्ध और पराजय संबंधी घटनाएं भी काल्पनिकता के परिपार्श्व में प्रस्तुत की गई है। ऐतिहासिक संदर्भों की छाया भर है।

आचार्य सीता राम चतुर्वेदी के आचार्य विष्णुगुप्त नाटक में नंद वंश के शासन काल की प्रमुख घटनाओं में धन नंद द्वारा चाणक्य का अपमान, नंद के अंत का उल्लेख तथा सिकन्दर के आक्रमण का वर्णन है। यह पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है इतिहास के संदर्भो की अपेक्षा आचार्य विष्णुगुप्त नाटक में अनुश्रुतियों और परंपराओं का आधार अधिक है, इसके नाटकार की लक्ष्मीनारायण मिश्र की भांति नाटक को शुद्ध साहित्यिक रचना बनाने की ओर अधिक रही है अतः कल्पना का खुल कर प्रयोग किया गया है।

सभी मान्य विचारधाराओं के आधार पर नाटक में अंतिम नंद शासक घननंद का चित्रण हुआ है। प्रारम्भ में ही विष्णुगुप्त को धननंद की दानशाला के अध्यक्ष के रुप में चित्रित किया गया है, इसका आधार महावंश और चाणक्य क्या है - किन्तु यहां अपमान की घटना को परिवर्तित कर दिया गया है महावंश की कथा के अनुसार चाणक्य की कुरुपता देख कर नंद ने उसका अपमान कर पदच्युत किया था। यहां विष्णुगुप्त और धननंद के पारस्परिक विवाद की कल्पना करते हुए विष्णुगुप्त के अपमान का कारण एक सहस्त्र की याचना करने वाले प्रलंबक के सौ कष्पिका देना बताया है। चाणक्य का अपमान देख कर चंद्रगुप्त का उपस्थित हो जाना प्रसाद के चंद्रगुप्त के आधार पर है। शिखा खोल कर प्रतिज्ञा किए जाने का उल्लेख मुद्राराक्षस के आधार पर है। शिखा पकड़ कर निकाल देने का आदेश भर देता है निकाले जाने का अवसर नहीं आता विष्णुगुप्त स्वयं प्रस्थान कर जाते हैं - चाणक्य कथा के इस उल्लेख को नाटक कार ने परिवर्तित करके प्रस्तुत किया है।

चंद्रगुप्त और चाणक्य दोनों ही अपमानित हो कर कहीं अन्यत्र चले गये थे और नंद विनाश के लिए योजनाएं बनाने लगे थे इस ऐतिहासिक अनुश्रुति का नाटक कार ने उपयोग किया है।

सिकंदर के आक्रमण के पूर्व चाणक्य चंद्रगुप्त के साथ पर्वतेश्वर से मिले और कूटनीति द्वार उन्हें कूटनीति द्वारा उन्हें सहायता दी इसका कोई विवरण इतिहास में नहीं मिलता। अंतिम राजा धननंद को खालों, गोंद और वृक्ष पट का लगाने वाला दिखाया गया है - यह महावंश के उल्लेख की प्रतिच्छाया है। धननंद की लोभी और कूट वृत्ति सूचित करने के लिए नाटक कार ने ऐसी अवधारणा प्रस्तुत की है।

विष्णुगुप्त के अपमान का प्रतिशोध लेने का पर्वतेश्वर का उल्लेख काल्पनिक है। चंद्रगुप्त सिकन्दर की सेना में ग्रीक सैन्य संचालन की रीत समझने गया था, चन्द्रगुप्त

को विष्णुगुप्त से इसी रीति के समझने की आज्ञा मानने का उल्लेख इसी संदर्भ में है आगे के प्रसंग में नाटक कार की उद्‌भावना द्वारा घटना को परिवर्तित कर दिया गया है।

सिकंदर के आक्रमण के समय मेगस्थनीज भी आया था। इसका कोई ऐतिहासिक विवरण नहीं मिलता, यह इतिहास विरुद्ध कल्पना है। ऐतिहासिक विवरण नहीं मिलता, यह इतिहास विरुद्ध कल्पना है। ऐतिहासिक उल्लेखों के अनुसार सिल्यूकस ने चंद्रगुप्त से संधि होने के उपरान्त मेगस्थनीज नामक ग्रीक राजदूत को चंद्रगुप्त के दरबार में रखा था। भारतीय साधुओं से भविष्यवाणी सुनने की सिकंदर की आकांक्षा या साधुओं की भविष्यवाणियों में सिकन्दर की आस्था प्रसाद के चंद्रगुप्त के विवरण के आधार पर है।

सिकन्दर और पर्वतेश्वर के मध्य हुए युद्ध का उल्लेख नहीं किया गया है। युद्ध को सूच्य कथावस्तु के अन्तर्भूत रख कर युद्ध काल के बाद की घटनाओं को रखा गया है – पर्वतेश्वर को बंदी बना कर सिकन्दर के सामने प्रस्तुत करना और पर्वतेश्वर सिकन्दर का वार्तालाप एक मैत्री इतिहास के अनुसार है। सिकन्दर द्वारा पर्वतेश्वर का उसका राज्य लौटा देना भी ऐतिहासिक घटना है।

सिल्यूकस और सिकन्दर का वार्तालाप काल्पनिक है – चन्द्रगुप्त सिकन्दर से मिला था। यह ऐतिहासिक आधार है किन्तु सिकन्दर के साथ हुआ उसका वार्तालाप काल्पनिक है। सिकन्दर के सैनिकों का आगे बढ़ने से इन्कार करना इतिहास के अनुसार है किन्तु सिकन्दर का क़थन कि तुम अपने अफगान का प्रतिशोध ले कर मगध के शासक बनोगे पूर्ण काल्पनिक है। इतिहास के उल्लेख सिद्ध करते हैं कि जब सिकन्दर से चंद्रगुप्त मिला था तो उसने अपनी उद्दंडता के कारण सिकन्दर को क्रुद्ध कर दिया सिकन्दर ने उसे मार डालने की आज्ञा दी किन्तु वह अपने प्राण बचा कर भाग निकला। यहां नाटक कार द्वार की गई कल्पना इतिहास विरुद्ध होने के साथ अस्वाभाविक भी है।

धननंद के अंत के संबंध में भी नाटक कार ने अपनी कल्पना प्रस्तुत की है अन्य प्रमाणिक उल्लेखों मे नन्द का अंत या तो चाणक्य ने अपनी कुत्था द्वारा किया है या शकटार द्वारा उसका अंत हुआ है यहां चंद्रगुप्त नंद के अंत के लिए प्रस्तुत होता है, धननंद द्वारा निषेध किए जाने पर पर्वतेश्वर का धननंद से युद्ध आचार्य विष्णुगुप्त के आदेश से बंद बनाया जाना चन्द्रगुप्त की सभा में धननंद का प्रस्तुतीकरण प्रतिशोध में विष्णुगुप्त द्वारा कटु वाक्य कहे जा कर अपमान जटिल्य राक्षस से नंद के नाश का विधान पूछा जाना चंद्रगुप्त को आज्ञा से उसे मुक्त कर देना और मुक्त किए जाने पर धननंद द्वारा आत्म हत्या का उल्लेख सभी घटनाएं कौतूहल और चमत्कार की सृष्टि के

लिए नाटक कार द्वारा कल्पित की गई हैं। इनसे ऐतिहासिकता को विशेष क्षति नहीं पहुंची है।

सिल्यूकस का आक्रमण उसकी पराजय संधि एंव सिल्यूकस की कन्या के चंद्रगुप्त के परिणय की घटनाओं को सभी नाटकारों ने अपनाया है जिसे यत्किंचित ही परिवर्तन के साथ उपस्थित किया है।

(ग) चाणक्य की कूटनीति और उसका ऐतिहासिक आधार

दैव की अश्रुत गतियों की भांति चाणक्य की कूटनीति भी अश्रुत-अप्रतिदतगति डाली है। चाणक्य की कूटनीति का ऐतिहासिक आधार परक ग्रंथ-स्वयं चाणक्य का अर्थशास्त्र है। अर्थशास्त्र के आधार पर कूटनीति का प्रयोग मुद्राराक्षस में व्यापार रुप से किया गया है। यद्यपि प्रत्येक स्थल पर कौटिलीय अर्थशास्त्र को ही आधार नहीं बनाया गया है क्योंकि नाटक कार ने अपने व्यक्तिगत राजतंत्रीय ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग किया है केवल ग्रंथ ज्ञान मात्र के आधार पर नाटक कार ने कूटनीति का संयोजन नहीं किया है। राजनीति और कूटनीति नाटककार के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बन कर प्रस्तुत हुई है। हिंदी नाटकों मे कौटिल्य की कूटनीति का आधार बना कर प्रस्तुत की गई घटनाएं अपेक्षाकृत पर्याप्त न्यून मात्रा में उपलब्ध होती हैं - चाणक्य की कूटनीति संबंधी जो विवरण मिलते भी हैं वे कौटिल्य के अर्थशास्त्र की अपेक्षा मुद्राराक्षस से अधिक प्रभावित हैं।

मुद्राराक्षस के प्रथम अंक में चाणक्य और शिष्य के वार्तालाप में चाणक्य की स्वगत उक्तियों में एक ओर राक्षस के नेतृत्व में पर्वतीय राजाओं की विशाल वाहिनी के साथ मलयकेतु द्वारा चंद्रगुप्त पर आक्रमण की योजना एवं राक्षस का मलयकेतु की ओर मिलना कौटिल्य अर्थशास्त्र की परिपणन संधि के आधार पर है। कौटिल्य ने विजिगीषु राजा के लिए प्रयाण और देश-काल और कार्य की संधियों का उल्लेख करते हुए परिपणित संधि का विवरण दिया है – देश काल और कार्य की शर्त के अनुसार जो संध की जाती है वह परिपणित संधि कहलाती है. यहां चाणक्य ने यह जान कर कि राक्षस ने ऐसा कार्य कर लिया मैं भी इस कार्य को कर सकने में समर्थ हूं। मगध राज्य की प्राप्ति की संभावनाओं को स्वगतोक्ति के माध्यम से प्रस्तुत करने में परिपणित कार्य संधि का संयोजन किया गया है। इसके साथ ही नाटक कार ने राजनीतिक प्रतिभा का प्रश्रय ले कर अपने समय के राजतंत्र के संधि-विग्रह आदि के प्रयोग और उपयोग के अनुभव को व्यक्त किया है।

अन्यत्र भी नाटक कार ने चाणक्य की क्रोधमयी भावनाओं द्वारा कौटिल्य के अर्थशास्त्र के 'अभियास्यत्कर्म निर्वर्णनाधिकार' को उपस्थित किया गया है।

कौटिल्य ने इस प्रसंग के अन्तर्गत उल्लेख किया है कि विजिगीषुको अपने और शुत्र के मध्य शक्ति, देश, काल, क्षय, व्यय, लाभ और आपत्ति आदि बलाबल का विचार करके आक्रमण करे।

चाणक्य की कूटनीति है कि राजा की सहायता के लिए ऐसे अमाल नियुक्त किए जाएं जो अच्छे और बुरे समय में राजन की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहे_। कौटिल्य की इस नीति का हम मुद्राराक्षस में चाणक्य की ही उक्ति में पाते हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र के मनन चिंतन के परिणाम स्वरुप ही प्रथम अंक में कपट लेखकी अवतारणा करते हुए पंचम अंक में उसका विकास दिखाया गया है – राजकीय लेख का जो रुप कौटिलीय अर्थशास्त्र में उल्लिखित उसी के अनुसरण के परिणाम स्वरुप उसकी प्रतिच्छाया से युक्त कपट-लेख का विवरण है। अर्थशास्त्रीय कूटनीति के आधार पर चाणक्य कायस्थ शकट दास जैसे छोटे से शत्रु को भी नहीं छोड़ना चाहता।

कूटनीति के उपस्थापन में नाटक कार ने कल्पना का भी आश्रय लिया है शंकर दास कौथकली एवं वध स्थल से शंकरदास को हटा कर सिद्धार्थक का मार्ग पाना नाटक कार की स्व-कूटनीति के रुप में है_ चाणक्य और राक्षस के पारस्परिक कूटनीति प्रयोग साम-दाम-दण्ड-भेद के आधार पर किए गए है। राक्षस के प्रयासों द्वारा चाणक्य के पक्ष के लोगों को फोड़ने का प्रयास कौटिलय् अर्थशास्त्र के आधार पर है। शिल्पीदावर्क्या का मंत्रतोरण द्वारा चंद्रगुप्त को मारने का प्रयास एवं उसके लिए फल होने पर वे रोचक की हत्या कौटिल्य अर्थशास्त्र के मंत्र युद्ध के आधार पर है। द्वितीय अंक में ही राक्षस की योजनाओं द्वारा चंद्रगुप्त को मारने के लिए विषाक्त औषधि का प्रयोग किया जाना कौटिलीय अर्थशास्त्र के कूटयुद्ध के आधार पर है– ये कार्य गुप्तचरों के उपजापादि द्वारा किए जाते थे, वस्तुतः चाणक्य द्वारा विहित कूटनीति के उपायों को मुद्राराक्षस में राक्षस द्वारा अपनाया गया है। चाणक्य द्वारा चंद्रगुप्त को सवियाफ्त सिद्ध के रुप में रखना अर्थशास्त्रीय नीति के अनुकरण पर ही है। राज्य के अंगों में समाए हुए विद्रोह को अनग्रह-विग्रह द्वारा चूर किया जाता है, किन्तु दुर्व्यसन युक्त कर्मचारीगण राज्य की स्थिति को विश्रृंखलित कर देने वाले होते हैं - कौटिलीय अर्थशास्त्र के 'व्यसनाधिकारिक' अधिकरण के उल्लेख के आधार पर इसे स्पष्ट किया गया है।

द्वेष्यता शत्रुवेदनं दुःखसंद्धाश्वकोपः। परिसवोद्रव्यनाशः

पागृच्वरधूतकारलुब्धक गायन वादकैशवा नय्ये संयोगवामः

किसी-किसी स्थल पर पात्रों के मुख से कहलाए गए संवादों में अर्थशास्त्रीय सिद्धान्तों का ज्यों का त्यों प्रस्तुतीकरण किया गया है। मागुरायण राजनीति शास्त्र के वचन को उद्कृत करता हुआ आत्मसंपत और आभिगमिक गुण से मुक्त राजा का आश्रय लेने को कहता है। अर्थशास्त्र के मण्डलयोनि अधिकरण में स्पष्ट ही विजिगीषु के संबंध मे ऐसा वक्तव्य मिलता है। पंचम अंक में अपनी और शत्रु पक्ष की जीत का राक्षस के मन का तर्क चाणक्य नीति के आधार पर है – कौटिल्य अर्थशास्त्र में व्यसानिधाटिक प्रकरण में भिन्न के उपजात से त्रस्त एवं शत्रु के व्यसन से शंकित रुप का आलेख्य है। चाणक्य की कूटनीति रुपी रसती संधि विग्रहादि षाड्गुण्य के संयोग से सुदृढ़ सामदायदि वर्ष। मेदंचतुष्टय से सर्वथा संगठित शत्रुओं के बंधन और वशीकरण में पूर्ण सफल हैं, नाटककार ने इस प्रसंग में कल्पना का प्रयोग करते हुए भी रुपक रचना का ऐसा वृत्त खींचा है जो कौटिल्य की अर्थशास्त्रीय नीति की भांति पेचीदा भी है।

अर्थशास्त्र में संघ भेद और उपांशु दण्ड का विवेचन करते समय संघ भेद के गणिकाओं के प्रयोग का विधान बताया गया है - मुद्राराक्षस की विषकन्या की परिकल्पना संघ भेद के इन्ही उपायों के आधार पर है - संपूर्ण नाटक में तीक्ष्ण-रसद-सत्री आदि गुप्तचरों का विवरण भी अर्थाशास्त्रीय पद्वति के अनुरुप है। सम्पूर्ण नाटक में नाटक मे नीति प्रयोग करते हुए नाटक कार ने शास्त्रज्ञान एवं स्व-प्रतिभा का ऐसा आलेख्य प्रस्तुत किया है चाणक्य की नीती लता के लिए देश काल का विचार सिंचन कलश है एवं कूटबुद्धि नीतिलता के लिए उत्सेक कार्य करने वाली है नियति की बहुरंगी चालों की भांति चाणक्य की चाल भी बहुरंगी है।

चाणक्य की कूटनीति के संदर्भ में हिंदी नाटक कारों ने कूटनीतियुक्त घटनाओं को अपनाया अवश्य है किन्तु चाणक्य के अर्थशास्त्र की अपेक्षा उनमें मुद्राराक्षस की प्रतिच्छाया अधिक स्पष्ट है - चंद्रगुप्त में सपेरे और नटनटी की योजना का उल्लेख। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मेलखाने वाला है किन्तु मुद्राराक्षस में भी ऐसे प्रयोग स्पष्टतः अंकित है। राक्षस को पराभूत करने के लिए लिखा गया है मुद्रायुक्त जाली पत्र मुद्राराक्षस के कपट लेख के सादृश्य पर है। राक्षस को मगध न लौटने देना, सिकंदर को जल मार्ग से लौटा लेने का प्रयास चाणक्य के कूटनीतिक संदर्भो में प्रसाद की अपनी कल्पनाओं के आधार पर हैं। पर्वतेश्वर के वध के लिए विषकन्या का उल्लेख प्रत्येक नाटक कार ने किया है इन नाटक कारों का यह दृष्टिकोण मुख्यतः मुद्राराक्षस के ही आधार पर है। हिन्दी नाटकों में प्रकाश युद्ध से युक्त गतिविधियों की अधिकता के कारण कूट युद्ध के अवरुद्ध कम हैं अतः कूटनीतिक उल्लेख मुद्राराक्षस की अपेक्षा न्यून मात्रा में हैं।

(घ) अशोक के काल का चित्रण करने वाले नाटकों में ऐतिहासिकता अर्द्धऐतिहासिकता और काल्पनिकता

अशोक के चरित्र पर रचना करने वाले नाटक कारों ने अशोक के जीवन काल को मुख्य रुप से तीन भागों में विभक्त करके चित्रित किया है

१. अशोक का प्रारम्भिक प्रचंड रुप

२. कलिंग विजय

३. बौद्ध धर्म में दीक्षा

आलोच्य नाटकों मे उपलब्ध ऐतिहासिकता काल्पनिकता की इन्हीं तीनों उपशीर्षकों के आधार पर व्याख्या की जाएगी।

लक्ष्मी नारायण के अशोक नाटक में ऐतिहासिक तत्व अपेक्षाकृत कम है इतिहास की प्रमाणिक सामार्गी संकलित करने की और नाटक कार की रुचि नहीं रही है। बौद्ध ग्रंथों मे वर्णित अशोक की क्रूरता के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन की आलोचना इतिहासकारों द्वारा की गई है – नाटककार ने इस नाटक में काल्पनिकता की सृष्टि द्वारा अशोक की क्रूरता के कलंक को हटाने की चेष्टा की है। प्रारंभिक अंक का ब्राह्मण बौद संघर्ष ऐतिहासिक वातावरण के अनुरुप है। प्रारम्भ में अशोक को तक्षशिला विद्रोह शांत करने की अवधारणा, दिव्यावदान की ऐतिहासिक परंपरा के आधार पर है - किन्तु उसे नाटक कार ने अपनी कल्पना के द्वारा परिवर्तित करके दिखाया है दिव्यावदान के अनुसार तक्षशिला जाते समय बिन्दुसार ने अशोक को सेना दी थी यहां उसे अकेले निर्वासित रुप में भेजा गया है। अशोक तक्षशिलाका स्वतंत्र शासक बनाया था इसका कोई विवरण इतिहास में नहीं है – नाटक में डायना और एण्टीपेटर की काल्पनिक है।

द्वितीय अंक की घटनाओं बिन्दुसार के बीमार पड़ने पर अशोक का पाटलिपुत्र लौट आना महा वंश के अन्यग्रोध सामषरे दर्शन के आधार पर ऐतिहासिक संदर्भो मे है - अशोक का उज्जयिनी शासक बनाया जाना सिंहली परंपराओं के आधार पर है। अशोक को निर्दोष बताने के लिए नाटक कार बिंदुसार द्वारा अशोक को बंदी बनाया जाना एवं धर्मनाथ की नीचता के प्रकरण काल्पनिकता के आधार पर है। नाटक कार ने अशोक के जिस रुप को व्यक्त करने का लक्ष बताया है उसी को अंत तक पूर्ण करने में लगा रहा है इस कारण वश ऐतिहासिक सार्यो की उपेक्षा की गई है। अशोक ने बिन्दुसार की जीवितावस्था में संघर्ष किया यह इतिहास विरुद्ध कल्पना।

तीसरे अंक की प्रमुख घटनाएं अशोक की क्रूरता की व्याख्या करने वाली हैं बौद्ध ग्रंथों में वर्णित अशोक की क्रूरता के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णनों को न अपना कर भाइयों के प्रति अशोक को श्रुद्धालु दिखाया है। अशोक के जीवन काल में पिता से विद्रोह ऐतिव्य वृत्तों के अनुसार अधिक नहीं हुआ है यहां नाटक कार ने पिता से ही विद्रोह दिखाया है – इतिहास के द्वारा ज्ञात होता है कि बिन्दुसार की मृत्यु के बाद चार वर्षो तक भाइयों का संघर्ष चलता रहा इस कारण वंश सिंहासन खाली रहा- यहां नाटक कार नेअपनी कल्पना से भ्रातृप्रेम के कारण नाटक को सूना दिखाया है। अशोक की पत्नी से संबंधित प्रसंग काल्पनिक है।

चतुर्थ अंक की घटना कलिंग युद्ध इतिहास प्रसिद्ध घटना है। इतिहास से ज्ञात होता है कि राज्यारोहण के ८वें वर्ष अशोक ने राज्य विस्तार की आकांक्षा से कलिंग पर चढ़ाई की। इस युद्ध मे भयानक नर संहार के अनंतर अशोक को ग्लानि हुई फलतः उसने बौद्ध धर्म में दीक्षा ग्रहण की –नाटक कार ने काल्पनिकता के प्रयोग द्वारा पूरी घटना को ही परिवर्तित कर दिया है संग्राम कराने का मुख्य कारण यहां धर्मनाथ की नाचता है - धर्मनाथ द्वारा कलिंग सेना का सेनापतित्व तथा विश्वासघात भी काल्पनिक हैं।

अंतिम अंक की घटना शिला प्रक्षापनों के आधार पर है – पद्रंहवे प्रज्ञापन में बताया गया है कि युद्ध के भीषण परिणाम से अशोक को पश्चाताप हुआ और उसने युद्ध न करने का संकल्प किया।

ऐतिहासिकता की दृष्टि से सेठ गोविन्द दास का अशोक उल्लेख्य है - प्रत्येक अंक की घटना प्रामाणिक ऐतिहासिक संदर्भ रखी गई है।

नाटक का प्रारंभ ऐतिहासिक घटना तक्षशिला विद्रोह से होता है। मुसीम को असमर्थ जान कर अशोक को विद्रोह शांत करने के लिए भेजना दिव्यावदान की अनुश्रुति के अनुसार है। महेंद्र और दिव्य के वार्तालाप काल्पनिक हैं - केवल भाइयों के संघर्ष की वृत्ति का आभास नाटक कार ने देना चाहा है।

दूसर अंक के प्रारंभ में काछवाकी और अन्य रानियों का वार्तालाप अस्वाभाविक है - कलिंग विषय और उसके अनंतर परिवर्तित होने वाली अशोक की मनोदशा शिला लेखों के आधार पर है – नाटक कार ने अधिकांशतः ऐतिहासिक संदर्भो को ही अपनाया है – इतिहास से ज्ञात होता है कि सदम्य के एकीकरण के लिए अशोक ने बौद्ध संगीतियों का अधिवेशन किया था।

तिष्यरक्षिता एवं कुषाल का प्रसंग दिव्यावदान के साक्ष्य के आधार पर है - अर्द्धऐतिहासिक संदर्भ मेंनाटक कार ने इस तथ्य को अपनाया है। कुषाल पुत्र दशरथ को युवराज घोषित करना पुराणों के आधार पर है। अशोक के पुत्र एवं पुत्री संघमित्रा का बौद्ध धर्म में प्रवृजित हो कर लंका जाने का उल्लेख बौद्ध ग्रंथों के आधार पर है - अशोक की अनेक पत्नियों का उल्लेख इतिहास में मिलता है नाटक कार ने इसी साक्ष्य पर अनेक पत्नियों को नाटक में उपस्थित दिखाया है।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का दंतमुद्रा ऐतिहासिकाभास नाटक में बौद्ध अनुश्रुतियों की परंपरा के आधार पर अशोक का चंड रुप दिखाने के लिए नाटक कार ने काल्पनिक वृत्त की चर्चा की है – इतिहास की मान्य धारणाओं के आधार पर नाटक करके भाइयों का संघर्ष दिखाया है।

द्वितीय अंक की घटनाएं काल्पनिकता व ऐतिहासिक संभाव्यता पर आधारित है - गुप्तचरों द्वारा अशोक के विद्रोह किए जाने की सूचनाएं मिलती हैं यह ऐतिहासिक संभाव्यता के अनुरुप है – तृतीय अंग की घटनाएं कलिंग युद्ध एवं अशोक के बौद्ध धर्म में प्रवृजित होने से संबंद्ध है –अंक प्रारम्भिक रुप तिष्यरक्षिता और चांदमित्रा का वार्तालाप काल्पनिक है। इसी अंक में गोपा से संबंद्ध प्रकरण काल्पनिक होते हुए भी ऐतिहासिक संभाव्यता के आधार पर है_ कलिंग युद्ध में अशोक ने कलिंग निवासियों के रक्त से समस्त जम्बू दीप को नहला कर पवित्र करना चाहा था- कलिंग युद्ध की इस भयावहता को नाटक कार ने इतिहास की मान्यताओं के आधार पर रखा है। नाटक के अंतिम अंश भी ऐतिहासिक हैं - ऐतिहसिक वृतान्त के अनुसार कलिंग युद्ध की भयवहता से अशोक के अन्तर में परिवर्तन हुआ और वह बौद्द धर्म में प्रवृजित हो गया। कौतूहल की सृष्टि के लिए काल्पनिक प्रसंगों की उद्‌भावना करते हुए भी नाटककार ने ऐतिहासिकता की रक्षा की है।

चंद्रगुप्त विधालंकार के अशोक में नाटककार अनुश्रुतियों में वर्णित अशोक के जीवन का स्तर ही बदलते का प्रयास किया है। प्रारम्भ में भाइयों का संघर्ष इतिहास के वृतान्त के अनुसार है। युवराज सुमन का वृत काल्पनिक है - इतिहास के अनुसार अशोक का मूल्य संघर्ष मुसीम से हुआ था - संभवतः इसी मुसीम का नाम सुमन रखा है किन्तु मुसीम सुमन की भांति परिस्थिति सहिष्णु नहीं था - चंडगिरि के अत्याचार नागरिकों का विद्रोह, अशोक का विद्रोह को सफलतापूर्वक दबाना आदि दिव्यावदान के आधार पर हैं। संपूर्ण नाटक में शीला और सुमन से संबंद्ध घटनाएं काल्पनिक हैं। युवराज सुमन को उत्तराधिकारी पद प्राप्त न करने देने का आधार बौद्ध परंपराएं हैं। चंद्र गिरि से संबंधित प्रत्येक उल्लेख अनुभूतियों की परंपरायें है। कारा गृह में सुमन

से मिलने के लिए शीला की अनुमति लेना, विवाह प्रसंग, छल द्वारा चंद्र गिरि के माध्यम से अशोक का वध, शीला के नेतृत्व में पाटिलपुत्र के विद्रोह की योजना आदि घटनाएं काल्पनिक हैं।

कलिंग युद्ध के प्रसंगों मे मनोवैज्ञानिक कारणों की प्रधानता है– कलिंग युद्ध की भयावहता, लूटपाट आदि अशोक के क्रूर व्यक्तित्व को अभिव्यजित करने वाले हैं- अंतिम अंश पुनः उसी ऐतिहासिक संदर्भ में है जिसे प्रत्येक नाटककार ने स्वीकार किया हैं– अर्थात् बौद्ध धर्म में दीक्षाग्रहण की घटना यहां भी शिलाप्रलापों के माध्यम पर है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के अशोक में मनोवैज्ञानिकता के प्रधानता देने के कारण अतिकाल्पनिकता की सृष्टि हो गई है। अज्ञेय का उत्तर प्रियदर्शी अशोक के प्रारम्भिक जीवन की क्रूरता के ऐतिहासिक वृत को प्रस्तुत करता है। नाटक निर्माण का क्या जिसे विदेशी इतिहासकारों ने भारत पात्रों के उल्लेंखों में संकेतित किया है। उसे ही आधार बना नाटक का रचना विधान किया गया। गीतिनाट्य में भावनाओं की प्रधानता अधिक होने के कारण काल्पनिकता का आना स्वाभिक है किंतु नाटक कार ने जिस प्रकार प्रयोग मे काल्पनिकता का संयोजन किया वह ऐतिहासिकता के संदर्भ में है– अत : इतिहास और कल्पना के समन्वित रुप का प्रस्तुतीकरण उत्तरप्रियदर्शी में मिलता है।

कैलाशनाथ भटनागर के कुषाण का ऐतिहासिक वृत दिव्यावदान के साक्ष्य पर है। कुषाण के जीवन के संबंध में प्रस्तुत विवरण संशयात्मकता से युक्त है– पुराणों में अशोक के पुत्रों में कुणाल का उल्लेख नहीं मिलता अवदान में कुणाल का उल्लेख है। मूल कथावस्तु ने नाटककार ने अपनी कल्पना का प्रयोग किया है ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार तिष्यरक्षिता को जन्तुगृह में डाल दिया गया था किन्तु नाटककार ने आवेशात्मकता की सृष्टि के लिए कुणाल द्वारा तिष्यरक्षिता को क्षमा कर दिया गया है। तिष्यरक्षिता का कुणाल के प्रति द्वेष का कारण राजनीतिक है तथा ऐतिहासिक संभाव्यता के अनुरुप है। दिव्यावदान में कुणाल के पुनः नेत्र जाने की बात उल्लिखित नहीं है क़िन्तु विदेशी विवरण में अवश्य ऐसा उल्लेख आया है संभवत यहां नाटक कार ने ऐतिहासिक उल्लेख प्रस्तुत करने की अपेक्षा कौतूहल और रसात्मकता की सृष्टि के लिए ऐसी उद्‌भावना में कल्पना को प्रधानता दी है। दृष्टवय है कि कुणाल नाटक में नाटककार ने मुख्य ध्येय कुणाल के चरित्र की आदर्शत्मकता निर्वाह करना रहा है अत : इतिहास बोध के प्रमाणिक तथ्यों की अपेक्षा काल्पनिकता और ऐतिहासिक संभाव्यता की ओर अधिक रूझाव है।

(ड़) उत्तर मौर्य युग के नाटकों में ऐतिहासिकता, अर्द्धऐतिहासिकता और काल्पनिकता का विवेचन

उत्तर मौर्य युग का प्रतिनिधित्व करने वाले नाटक सेनापति पुष्यमित्र एवं स्वर्ण श्री में पुराणों एवं स्वर्ण चरित्र में आई घटना के उल्लेख को परिवर्तित रुप में प्रस्तुत करते हैं। ऐतिहासिकता की दृष्टि से 'सेनापति पुष्यमित्र' ने काल्पनिक घटनाओं की बहुलता है अर्थात काल्पनिक घटनाओं की सृष्टि की गई है। ये काल्पनिक घटनाएं कथानक विकास में अवरोध उत्पन्न करने वाली है। ऐतिहासिक नाटक की महत्ता इसी में निहित रहती है कि वह यथासंभव ऐतिहासिक वातावरण की प्रतिष्ठा बनाए रखने में सफ़ल बन सके। 'सेनापति पुष्यमित्र' के नाटककार ने सेनापति के राजहत्या के कंलक को धोने के प्रयास में ऐतिहासिकता तथ्यों की भी उपेक्षा की है। नाटककार ने ब्रहत्थ की हत्या करने वाले के रुप में धातु सेन की कल्पना की है। यही धातुसेन द्वारा ब्रहत्थ की हत्या के कारण में नाटककार ने उल्लेख किया है वि दे मैत्रियस के संकेत पर आक्रमण कर देने पर जब ब्रहत्थ उद्यत नहीं हुआ तब धातुसेन ने उसकी हत्या कर दी पर यहां विचारणीय है कि देमेत्रियस का आक्रमण ब्रहत्थ के शासनकाल में न होकर वरन् पुष्यमित्र के शासन काल के अंतिम वर्षो में हुआ था। अतः यहां काल्पनिकता की उद्‌भावना नाटक को विश्रखँलित कर देने वाली है- पंतजलि को पुष्य मित्र का समकालीन दिखाना इतिहास सम्मत है क्योंकि पंतजलि ने पुष्यमित्र के अश्वमेध की महाकाव्य में चर्चा की है। इससे स्पष्ट होता है कि पंतजलि पुष्यमित्र के समकालीन रहे होगे। इसी प्रकार ऐतिहासिकता प्रमाण उल्लेख्य प्रमाण है लियोवोरस का पुष्यमित्र के शासन काल में राजपूत बनकर जाना है ऐतिथ्य वृतों के अनुसार ही लियोवोरस नवें शुक्रांराजा के समय आया था। नाटककार ने ऐतिहासिकता की मर्यादा को यहां पूर्णतः समाप्त कर दिया है। आगे की सभी घटनाएं भी प्रायः कल्पित हैं नाटककार ने ऐतिहासिकता के संदर्भ में मुख्य रुप से यह स्पष्ट करना चाहा है कि पुष्यमित्र ने ब्रहत्थ की हत्या के बाद सम्राट की उपाधि नहीं धारण की वरन् सेनापति की उपाधि को ही वह अंत तक धारण किए रहा। इसी बीजभाव की व्याख्या के लिए नाटककार ने कल्पना प्रसूत अनेक घटनाओं की उद्‌भावना की है जिसने प्रायः ऐतिहासिकता का सारा महत्व नष्ट कर दिया है।

'स्वर्ण श्री' में इसी घटना को नाटकीय कौतूहल एवं रसात्मकता की सृष्टि की आकांक्षा से उसे पुष्यमित्र की वाण विद्या से संबद्ध करके दिखाया है- काल्पनिकता की सृष्टि ऐतिहासिक में बाधक नहीं है वरन् तदयुगीन वातावरण में अनुरुप है। इस नाटक की घटना भी सेनापति पुष्यमित्र द्वारा ब्रहत्थ के वध को लेकर चलती है।ब्रहत्थ

के शासनकाल में किया जाने वाला नागरिक विद्रोह ऐतिहासिक संभाव्यता के आधार पर है- ऐतिहासिक वातावरण भी तथावत् बना रहा है।

निष्कर्ष

ऐतिहासिकता, अर्द्धऐतिहासिक और कल्पना का उक्त विवेचन करने के अनंतर निष्कर्ष रुप से कहा जा सकता है कि नाटककारों ने इतिहास के जिस युग की घटना को ग्राह्य बनाया है वह विद्वानों के मध्य विवाद का विषय रही है। अस्तु ऐसी घटना पर रुपक रचना करने में नाटककारों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक प्रतीत होता है। ऐतिहासिकता नाटकों में सानुपातिक कल्पना का पृथक महत्व होता है पर उस संदर्भ में कल्पना का प्रयोग तब तक श्रेयस्कर होता है जब तक ऐतिथ्य संयोजन और ऐतिहासिक संभाव्यता विश्रंखल न हो।

इस परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर स्पष्ट होता है कि संस्कृत नाटक मुद्राराक्षस प्रामाणिक इतिहास की घटनाओं के संबंध में उतना विस्तृत विवरण नहीं देता जितना कि हिन्दी नाटककारों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रमुख कारण तद्‌युगीन राजनीति चक्र एवं इतिहास अध्ययन की प्रणाली को माना जा सकता है। नाटककार ने राजनैतिक प्रयोग को सर्वाधिक महत्व दिया है, किन्तु ऐतिहासिकता संभाव्यता की ओर ध्यान रखते हुए अन्य प्रसंगों की उद्‌भावना की गई है। काल्पनिक वृक्ष भी ऐतिहासिक में बाधा पहुंचाने वाले नहीं है। कल्पना के प्रयोग में नाटककार ने रचनात्मक दायित्व के निर्वाह का पूर्ण ध्यान रखा एवं तथ्यात्मक विवरणों की प्रस्तुति प्रमाणिक इतिहास से संबद्ध न होते हुए भी ऐतिहासिक संभाव्यता सयुंक्त है तथा सर्जनात्मक अनिवार्य की अपेक्षाओं से युक्त है। ऐतिहासिक दायित्व के प्रति संकेत रखते हुए रचनात्मक दायित्व का भी सानुपातिक संबंध निर्वाहित हुआ है। इतिहास और नाटक की यथावस्तु स्थिति स्पष्ट करने में मुद्राराक्षस की अर्थवता है।

हिन्दी नाटकों के संदर्भ में विचारणीय है कि नाटककार नाना भावनाओं के मध्य पर्यवसित होता हुआ सर्जनात्मक प्रक्रिया में संलग्न हुआ है अस्तु प्रमाणिक ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करते हुए भी सानुपातिकता का दृष्टिकोण उलझा हुआ है या तो नाटक कार ऐतिहासिक क्रमबद्व विवरण प्रस्तुत करने के प्रयास में सर्जनात्मक आग्रह से दूर रह गए है या फिर अतिकाल्पनिकता की सृष्टि द्वारा रचनात्मक दायित्व से विमुख हो गए हैं- कुछ ही नाटक ऐसे हैं जिनमें इतिहास और नाटक का संतुलित समन्वित रुप परिलक्षित होता हैं। बद्रीनाथ के चंद्रगुप्त में सामयिक राजसत्ता की परिस्थितियों एवं पारसी कंपनियों की प्रहसनात्मक वृत्ति प्रस्तुत करने की भावना के कारण ऐतिहासिकता को क्षति पहुंची है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के वितस्ता की लहरें में सांस्कृतिक

दृष्टिकोण एवं इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपनाया गया काल्पनिक दृष्टिकोण सामायिक संदर्भों में इतिहास की व्याख्या करने वाला है ऐतिहासिकता और काल्पनिक दृष्टिकोण से वितस्ता की लहरें का संयोजन असंतुलित नहीं कहा जा सकता।

बद्रीनाथ भट्ट के चंद्रगुप्त में ऐतिहासिकता की क्षति हुई है, वह पहले भी कहा जा चुका है । नाटकीय पात्र गत्यात्मकता से रहित हैं जन सामान्य की अपरिष्कृत रुचि के अनुरुप अपरिष्कृत ऐतिहासिक कृति की सर्जना की गई है। प्राचीन भारतीय गौरव की एक झलक भर इस नाटक से मिलती है। प्रसाद को चंद्रगुप्त 'सेठ गोविन्ददास' का 'शशिगुप्त' ड़ा. रामकुमार वैर्मा का 'कौमुदीमतोत्सव' एवं आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का आचार्य विष्णुगुप्त इतिहास के नूतन संदर्भो के परिप्रेक्ष्य में रखे गए हैं। प्रसाद के 'चद्रगुप्त' में रोमाण्टिक दृष्टिकोण के कारणात्मक भावनात्मक प्रसंगों की अधिकता होते हुए भी रचना प्रयोग और इतिहासपरक दृष्टिकोण दोनो ही समन्वित रुप से प्रस्तुत हुए हैं- कथानक ऐतिहासिकता की क्षति करने वाला नहीं है- सेठ गोविन्ददास इतिहास की प्रमाणिकता की रक्षा करने के प्रति सचेष्ट रहे हैं अत : उनके नाटकों में इतिहास पर्याप्त सुरक्षित रुप में रखा गया है। शशिगुप्त में नवीन अनुसंधान के आग्रह से ऐतिहासिक नाटक में इतिहास को सर्वथा अभिनव्र रुप में रखा गया है। सेठ गोविन्ददास के नाटक में काल्पनिकता की योजना नहीं के बराबर है। 'कौमुदी महोत्सव' साहित्यिकता और ऐतिहासिकता के समान्वित दृष्टिकोण कीं दृष्टि से उत्कृष्ट प्रयोग माना जा सकता है- कौतुहल की सृष्टि के लिए तथा घटनाओं में नाटकीयता लाने के लिए जिन प्रसंगों की उद्भावना की गई है वे ऐतिहासिक वातावरण के अनुरुप है चंद्रगुप्त के वृत्त पर रचित नाटकों में इतिहास और असंबद्ध रुप आचार्य विष्णुगुप्त नाटक में देखने को मिलता है। ऐतिहासिकता संदर्भों की उपेक्षा के साथ साथ इस नाटक की साहित्यिकता भी उत्कृष्ट कोटि की नहीं मानी जा सकती। आचार्य चतुर्वेदी ऐतिहासिक नाटक में प्रमाणिक इतिहास को इतिहास की रक्षा करते हुए संयोजित करने के पक्ष में नहीं हैं। अतः उनके नाटक-इतिहास प्रयोग और रचनात्मक शिल्प का समान्वित रुप नहीं प्रस्तुत कर सके हैं।

अशोक के वृत पर रचित नाटकों में शुद्व ऐतिहासिकता की दृष्टि से सेठ गोविन्ददास 'अशोक' और ड़ा. रामुकमार वर्मा का ' विजय पर्व' एवं अज्ञेय वृत गीतिनाट्य उत्तर 'प्रियदर्शी' का उल्लेख है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का अशोक आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का तमुदद्रा एवं लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'अशोक' में क्रमशः मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षीकरण ,.अतिकाल्पनिकता एवं सांस्कृतिक तथ्यों की प्रधानता है। सेठ गोविन्ददास ने अतीत के गौरवमय चित्र को अंकित करने के लिए अशोक के समग्र जीवन को आधार बनाया है इस लक्ष्य की पूर्ति में नाटककार इतिहास प्रयोग

के विभिन्न रुप जैसे विदेशी इतिहासकारों के विवरण शिला प्रज्ञापन , अवंदान ग्रंथ अनुश्रुतियों सभी को अपनाते हुए नाटककार ने अतिरिक्त आग्रह से मुख्य, ऐतिहासिक संदर्भों की उद्‌भावना की है। 'विजय पर्व' और 'अशोक का शोक' मे नाटककार ने ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा करते हुए मनोवैज्ञानिकता की प्रधानता प्रस्तुत की है पात्रों के मनोविकास को यथासंभव स्वाभाविक रुप में प्रस्तुत करने के लिए काल्पनिकता का आश्रय लिया गया है- किन्तु काल्पनिकता के आग्रह से ग्रस्त होकर नाटककार दायित्व के विवेक से भी विमुख नहीं हुआ है। चन्द्रगुप्त विद्यालंकार , लक्ष्मीनारायण मिश्र एवं आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के नाटकों में न तो ऐतिथ्य वृतों का संयोजन है और न ही कल्पना का यथावत् ऐतिहासिक प्रयोग किया है। इतिहास तत्व की प्रमाणिकता की दृष्टि से ये नाटक उत्कृष्ट कोटि के नहीं कहे जा सकते। इतिहास तत्व को विद्युत रुप में प्रस्तुत करने वाले ये नाटक साहित्यिक उत्कर्ष भी अधिक नहीं प्रस्तुत कर सके है। कथानक निर्माण में कल्पना का प्रयोग के साथ साथ वातावरण निर्माण के प्रति भी उपेक्षा दिखाई देती है। चंद्रगुप्त विद्यालंकार के अशोक में शीला का चरित्र, लक्ष्मीनारायण मित्र के अशोक में धर्मनाथ का चरित्र एवं आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के दतंमुद्रा में शिशुपाल का चरित्र संपूर्ण घटनाओं के नियन्ता रुप में आया है इन्हीं चरित्रों के माध्यम से नाटक में काल्पनिकता की उद्‌भावना की गई है – ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार संभवतः इन्हीं पात्रों के चरित्र को उभारने के लिए रुपक रचना में प्रवृत हुआ है, क्योंकि सारी घटनाएं इन्हीं के चारों ओर घूमती दिखाई देती है। इतिहास प्रयोग की दृष्टि से अशोक के वृत. पर लिखे नाटक काल्पनिकता की प्रमुखता को अधिक महत्व देते हैं।

कैलाश नाथ भटनागर का कुणाल बौद्ध अनुभूतियों को आधार बनाकर लिखा गया नाटक है आदर्शत्मकता के निर्वाह से आग्रह से युक्त होने के कारण शुद्ध ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य नाटककार नहीं प्रस्तुत कर सका है नाटककार ने मूल वृत में यद्यपि अनेक परिवर्तन किए हैं फिर भी स्वाभाविकता एवं संभाव्यता पर पूर्ण दृष्टि केन्द्रित रखने जाने के कारण इतिहास विकृत नहीं हुआ है।

उत्तर मौर्य युग के नाटकों में आचार्य चतुर्वेदी का सेनापति पुष्यमित्र नाट्‌य प्रयोग और ऐतिथ संयोजन में असंतुलित दृष्टि का परिचय देता है नाटककार ऐतिहासिक नाटक का नाटक ही बनाए रखने के पक्ष में है अस्तु इतिहास प्रयोग के दायित्व निर्वाह की ओर उसका ध्यान नहीं गया है फलतः इतिहास के परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण नाटक की स्वाभाविकता नष्ट हो गई है। इतिहास बोध से यह नाटक पूर्ण रहित है। नाटककार ने अनेक काल्पनिक प्रसंगों की उद्‌भावना ऐतिहासिक संभाव्यता का बिना ध्यान रखे की है – पुष्यमित्र का राज हत्या का कलंक दूर करने के लिए नाटककार ने इतिहास

विरोधी प्रसंगों तक की कल्पना की एवं यंत्र तंत्र प्रयुक्त ऐतिहासिक घटनाओं का क्रम ही परिवर्तित कर दिया है।

डा. राम कुमार वर्मा 'स्वर्ण श्री' में ऐतिहासिक वातावरण की रक्षा करते हुए पुराणों एवं हर्षचरित में आई हुई घटना के उल्लेख के आधार पर कथा तक का निर्माण किया गया है- महाकान्वार में जाते समय थान तेलियस द्वारा धारिणी का अपमान, नागरिकों का विद्रोह, पुष्यमित्र द्वारा धनुर्विद्या का कौशलप्रदर्शन करते हुए ब्रहत्थ की हत्या आदि सभी प्रसंग ऐतिहासिक संभाव्यता के अनुरुप हैं।

मौर्य युग पर लिखित संस्कृत व हिन्दी नाटकों को ऐतिहासिकता, अर्द्धऐतिहासिकता और काल्पनिकता की विवेचना करने पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि ऐतिहासिक नाटक राष्ट्र इतिहास की घटनाओं की व्याख्या नई परिस्थितियों की सर्जना करते हुए एक निष्कर्ष पर पहुंचता है जो नाटकीय द्वन्द्व के परिणाम के रुप में परिकल्पित किया जा सकता है। ऐतिहासिक नाटक में गत्यात्मकता एवं सुरसता के प्राविधान के लिए काल्पनिकता की सृष्टि आवश्यक होती है किन्तु पात्र, घटना और कल्पित अंशों की देशकाल के साथ उपयुक्त समन्वति की आवश्यकता होती है। जीवन का संतुलित चित्र उभारने के लिए ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा नाटककार नहीं कर सकता उससे वृत्ति की ऐतिहासिकता को क्षति पहुंचती है अतः निष्पक्ष भाव से पूर्वाग्रह विशेष से मुक्त होकर ही कोई नाटककार नाटक में ऐतिहासिकता , अर्द्धऐतिहासिकता और काल्पनिकता का साहित्यिक सौष्ठव से युक्त रुप प्रस्तुत कर पाता है। इतिहास और कल्पना प्रयोग के प्राविधान की दृष्टि से आलेख्य नाटकों मे प्रसाद का चन्द्रगुप्त, सेठ गोविन्ददास का शशिगुप्त और लक्ष्मी नारायण मिश्र का वितस्ता की लहरें डा. राम कुमार वर्मा के नाटक शुद्ध ऐतिहासिक तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का अशोक कैलाशनाथ भटनागर का कुणाल तथा मुद्राराक्षस अर्द्धऐतिहासिक डा. सीताराम चतुर्वेदी का आचार्य विष्णुगुप्त तथा सेनापति पुष्यमित्र एवं दंतमुद्रा लक्ष्मी नारायण मिश्र का अशोक काल्पनिक ऐतिहासिक नाटकों की कोटि में आने वाले नाटक हैं। इन वर्गों के आलोच्य नाटकों को केन्द्रित करने के अंतर यह कल्पना अनुचित न होगा कि कथानक में इन रुपों की अपेक्षा अन्य कई रुपों की भी उद्‌भावना की जा सकती है किन्तु ऐसे रुपों सूक्ष्म अंतर को समाप्त कर इन्हीं कार्यों में प्रस्तुत किया जा सकता है।इतिहास कल्पना और अनुश्रूति प्रयोग की दृष्टि से हिन्दी और संस्कृत नाटककारों ने अपने अपने दृष्टिकोण का परिचय दिया है। जो इतिहास के साहित्यिक रुप एवं रचनातंत्र के प्रयोग के वैविध्य की दृष्टि से नाटकों की विकास सरणि में अपना महत्वपूर्ण योग देने वाले हैं।

अध्याय पंचम

अलोच्च्य नाटकों का युग चित्रण की दृष्टि से तुलनात्मक पर्ववेक्षण

ऐतिहासिक नाटक की रचना करते समय नाटककार के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह इतिहास की प्रमाणिकता की रक्षा के लिए उस युग विशेष का वातावरण यथासंभव प्रस्तुत करता चले। मौर्य युग भारतवर्ष का स्वर्ण युग माना गया है। उस युग में जीवन व्यापी विकास संभव हो सका था। फ़लतः अतीत के संदर्भ मे नाटक रचना करते हुए हिन्दी के नाटककार वर्तमान का मार्ग भी प्रशस्त करने में सफल रहे हैं। इसी कारण सभी नाटककारों की नाट्य रचनाओं में जहां एक और मौर्य युग की विविध परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब मिलता है वहीं दूसरी और नाटककारों का अपना युग भी प्रकारान्तर से चित्रित हुआ है उनके अपने युग के स्वर उस युग विशेष की ऐतिहासिकता घटना के प्रत्रय मं ध्वनित हुए हैं। संस्कृत नाटक मुद्राराक्षस उस युग के संदर्भ में अपने युग की राजनीति का व्यापक परिचय देता है और हिन्दी नाटकों के द्वारा उस युग की राजनीति का व्यापक परिचय देता है और हिन्दीं नाटकों के द्वारा उस युग के परिप्रेक्ष्य में स्वाधीन चेतना, गांधीवादी जीवन दर्शन, विश्वकल्याण के लिए मानवतावादी संदेश प्रसारित किया गया। अतः युग चित्रण के संदर्भ में संस्कृत और हिन्दी नाटकों की व्यापक अर्थवत्ता हैं।

मौर्य युग की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं के ऐतिहासिक एवं सांसकृतिक परिप्रेक्ष्य की व्याख्या द्वितीय अंक में की जा चुकी है। यहां उन विविध परिस्थितियों के संदर्भ में संस्कृत और हिन्दी नाटकों में प्रस्तुत ऐतिहासिक व सांस्कृतिक दृष्टि की व्याख्या प्रस्तुत करेंगे।

राजनीतिक परिस्थितियां

तदयुगीन राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन सिद्व करता है कि राजनीतिक दृष्टि से युग उत्कर्ष पर पहुंच चुका था। नंद देश का अंत करने के अन्तर चाणक्य के प्रयासों द्वारा जिस रुप में मौर्य युग की श्री वृद्वि हुई ऊसका चित्रण संस्कृत और हिन्दी नाटककारो ने स्पष्ट रुप से चित्रित किया है।

तत्कालीन मगध सीमा विस्तार एवं उसकी परिस्थितियां

समस्त नाटकों में मगध राज्य की मुख्य रुप से दो सीमाएं निर्धारित करके चित्रण किया है एक तो वह जो नंद काल के शासन में थी और दूसरी वह जो चंद्रगुप्त द्वारा मगध राज्य वचिगत करने के उपरांत स्थिर हुई थी। ऐतिहासिक विवरण नंद के शासन काल की जिन परिस्थितियां का उल्लेख करते हैं उनका यथावत् परिचय इन नाटकों में उपलब्ध होता है। मुद्राराक्षस के वृत स्पष्ट करते है कि नन्द बड़ा गर्वी लोभी तथा शक्तिशाली राजा था। कालक्रम से भारतवर्ष के समस्त राजाओं पर आधिपत्य स्थापित करने के अंनतर प्रभूत धनसंग्रह करने के कारण वह द्रव्यकोटीश्वर के नाम से विख्यात था नंद के शासन काल में भी मगध की राजधानी कुसुमपुर थी।

प्रसाद के चंद्रगुप्त में ऐतिहासिकता वृत की व्यापक व्याख्या की गई है। अतः युगीन परिस्थितियों का अधिक स्पष्ट दृष्टिकोण प्रसाद के नाटक में मिलता है। नन्द की क्रूरता के आख्यान की प्रमाणिकता के लिय प्रसाद ने लिखा है। महापद्म का जर पुत्र नंद - महापद्म का हत्याकारी नंद राक्षसी राजय करने वाला मगध का सम्राट है प्रसाद ने मगध की राष्ट्र कहा है। नंद के शिथिल शासन काल में दस्यु और म्लेच्छ साम्राज्य बना रहे थे तथा आर्य जाति पतन के कगार पर खड़ी एक धक्के की प्रतीक्षा मे थी। नंद राज्य की सीमाओं के संबंध में प्रसाद ने भूमिका के अंतर्गत विवरण प्रस्तुत किया है।यह विवरण सिद्ब करता है कि नंद के शासन काल में अधिकांश प्राच्य राज्य नंद के अधीन हो चुके थे- अपने इस विवरण की साक्षी के लिए उन्होंने मैगस्थनीज के प्रमाण प्रस्तुत किए है-(उस समय गंगा के तट पर दो विस्तृत राज्य थे, एक प्राच्य (प्रासी) और दूसरा गंगारिडीज। प्राच्य राज्य में अवन्ती, कौशल, मगध, वाराणसी, बिहार आदि देश थे और गांगारिडीज गंगा का समुद्व तटवर्ती भाग था। वह बंगाल था। गंगारिडीज गौड़ देश का ही दूसरा नाम था। गौड़ राज्य का राजा नंद के अधीन था।

अंवती मे भी एक मध्य प्रदेश की राजधानी थी वह भी नदाधीन थी। इस विवरण से सिद्ध होता है नंद का साम्राज्य विस्तृत था। नंद का शासन विलासिता की चरम सीमा पर पहुंचने के उपरान्त ही नाश की ओर अग्रसर हुआ था इसी से चाणक्य की फूलों की सेज में ऊंधता दिखाई देता है। इस पर भी मगध शक्तिशाली राष्ट्र था। नंद के क्रूर अत्याचारों से क्षुब्ध असंतुष्टप्रजा को मुक्त करने का प्रयास चंद्रगुप्त द्वारा किया गया था। मगध में एकाधिपत्य एकच्छत्र राज्य की परम्परा पारस्परिक संघर्ष प्रांरभ से ही विद्यमान था। मगध की इस वृति के प्राचीन इतिहास

की और भी प्रसाद ने संकेत दिया है यह तो मगध का पुराना इतिहास है। जरासंघ का यह अखाड़ा है। यहां एकाधिप्तय की कटुता सदैव से अभ्यस्त हैं। चंद्रगुप्त ने प्राचीन् मगध को और भी विस्तृत किया था। चंद्रगुप्त ने दक्षिण पथ के स्वर्णगिरि से पंचनद तक, सौराष्ट्र से अंग तक एक महानसाम्राज्य स्थापित किया है उतरापथ के प्रमुख गणतंत्र मालव क्षुडक और यौधेप आदि सिंहरण है नेतृत्व में इस साम्राज्य के अंग हैं- सिन्धु के उस पार के देश के भाग चंद्रगुप्त को सिल्यूकस द्वारा प्राप्त हुआ था ऐतिथ्य वृत के अनुसार पेरीपनिषद्, अर्रिया, तथ बरैकोसिया, की क्षत्रयी का अधिकार मिला था जिसकी राजधानियां क्रमश काबुल हिरात और कंधार थी।

गैगोसिया की क्षत्रयी अथवा कम से कम उसका पूर्वी भाग भी सम्भवत उसके हिस्से में आ गया था। उससे स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रगुप्त के शासन काल में मगध साम्राज्य की सीमा काफी विस्तृत हो गई थी।

नंद की महा विलासिता का आख्यान सेठ गोविन्द दास के शशिगुप्त में भी मिलता है मगध उस समय भारत का सर्वश्रेष्ठ राज्य था। सिल्युकस की संधिवार्ता द्वारा सिंधु के उत्तर में पामीर पर्वत मालाओं तक के सारे प्रान्त तथा उसके देश और सिंधु के पश्चिम दक्षिण में वाल्टीक, अराकोशिया एवं गण्डरौशिया तक समस्त भू-खण्ड मौर्य राज्य में मिल गए थे। स्वर्ण संग्रह की लुब्ध वृति के कराण नंद वृक्षों और पत्थरों पर कट लगाता था इस भांति उसने गंगातल में अस्सी करोड़ स्वर्ण मुद्राएं छिपाई थी तथा उस धन का उपयोग जनता के हित में नहीं किया गया था। नंद के प्रजा से बलपूर्वक धन लेकर कोष संग्रह किया था। समस्त नंद राजाओं के समय मगध एक राष्ट्र था किन्तु प्रजा के हृदय में उनके लिए लेशमात्र स्थान न था।

हिन्दी नाटककारों द्वारा अशोक के वृत पर भी नाटक रचना की गई है अस्तु इन नाटकों में अशोक के काल की मगध की परिस्थितियां का निदर्शन मिलता है। अशोक के शिलालेख उसके साम्राज्य की भौतिक सीमाओं का निर्धारण करते हैं। साम्राज्य प्राप्ति के लिए बिन्दुसार के ही शासनकाल में विद्रोह प्रारंभ हो गए थे प्रारंभिक काल में अशोक की विद्रोहों का सामना करना पड़ा था। बाध्य विद्रोहों के अतिरिक्त अशोक के शासक बनने के समय मगध मे गृह विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी थी। भारतीय साम्राज्य् की एकता को सारे जबू द्वीप का उत्कर्ष मानते हुए अशोक उतरापथा दक्षिणापथ तक राज्य विस्तार का प्रयास किया था। उसका राज्य लवणसार और काम्बौज से बंग तक तथा हिमालय से सिद्धपुर और ताम्रपर्णी तक फैला था कंलिग युद्ध के अनंतर अशोक ने राज्य विस्तार हिंसा से न करके अहिंसा से करने का निश्चय किया। स्वतंत्र रियासतो और संवतंत्र जातियों के रुप मे अशोक के पैतेनिक,

नामकं ,नामंपति, आन्ध्र पुलिंग, चौड़, पांड्य, सातीय पुत्र, केरल पुत्र, तंग्पति आदि रियासतें और जातियां थी।

यौनौ का स्थान सिन्धु और कोफेन के बीच था इसको अंडारकार ने अशोक के वहिर्वर्ती प्रान्त का मुख्यालय माना है। कबौंज और गांधार जनपदों का उल्लेख भी यवन जनपद के समीप था। गांधार जनपद में पूर्वी अफगानिस्तान् सीमान्त प्रदेश का अधिकांश भाग, पश्चिमी पंजाब तथा कश्मीर का दक्षिणी भाग संम्मिलित था। अशोक के शिला प्रज्ञापन ५ में रसिक पेतैनिक एवं शिला प्रज्ञापन १३ में भोजपेतैनिक का उल्लेख हैं। रासिक पेतैनिक किसी राष्ट्र या प्रान्त के आनुवंशिक शासक के भोज पेतैनिक पश्चिमी तट के शासक थे ये अपेक्षाकृत छोटे शासक थे।

नामक एवं नामपन्ति काम्बौज के निकट खैतान प्रदेश के जनपद थे। आंध्र जनपद की सीमाएं पूर्वी घाट पर कृष्णा एवं गोदावरी के मध्यवर्ती प्रदेशों को पार करती हुई निकटवर्ती प्रदेशों में फैली हुई थी आधुनिक हैदराबाद का दक्षिणी भाग भी उसमें सम्मिलित था। पुलिंद प्रदेश को शिला प्रज्ञापन १३ में आंध्र के साथ रखा गया है पर पुलिंद आंध्र से अलग है और भंडारकट के मत से इनका संभावित स्थान मध्यप्रदेश का जबलपुर जिला जिसके अंतर्गत रूपनाथ भी है सिद्ध होता है। अशोक ने जिन्हें अंत कहा है उनके सात अशोक के शत्रुता के संबंध थे। इनमें एक वे राज्य ये जो भारत में उपस्थित थे। ये राज्य चौंड, पांड्य, केरलपुत्र, सातियपुत्र तब पांति थे। चौड वर्तमान नीलौर और पद्दूकोटा के बीच का प्रदेश था पाण्ड्य मदुरा और तिनीबल्ली जिले का मध्यवर्ती प्रदेश था। केरल और सातियुपत्र उत्तरी भारत के प्रवजित होकर दक्षिण जा बसे थे और उन्होंने अपने उपनिवेश स्थापित किए थे। केरल का दूसरा नाम चैर था वञ्जिनगरी इसकी प्राचीन राजधानी थी। तंत्रपति या ताम्रपर्णी श्री लंका का प्राचीन नाम था अशोक के काल में श्रीलंका से मैत्रीपूर्ण संबंध रहे थे। इसके साथ ही यवन राजाओं में जांतियोक तथा अन्य पड़ौसी राजाओं से भी उसके संबंध थे साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से शिला प्रज्ञापन १४ वें अशोक ने जो गर्वपूर्ण संकेत किया था वह सार्थक सिद्ध हुआ। अशोक के सत्यप्रयासों द्वारा मगध राज्य चरम उत्कर्ष पर पहुंच स्वर्णभूमि बन गया था।

उत्तर मौर्य युग तक आते जाते मौर्य साम्राज्य की एकता का सूत्र विंत्रंललित होने लगा था बृहडथ का शासनकालस पूर्ववर्ती सम्प्राटों द्वारा प्रवृत साम्राज्य की रक्षा करने में सफल न हो सका। कंलिग राज्य खारवेल दक्षिण के सातवाहन यवनराजाओं का आक्रमण मगध पर होन लगा था – जनता की रक्षा भी बृहडथ नहीं कर सकता था कुलति महिलाएं यवन- प्रदेश के हाथों मे कौड़ियों के मोल बिकने

लगी थी – बृहडथ के समय मगध पर राजदण्ड अपनी स्वार्थ की छाया में ऊंघ रहा था।

नगर एवं ग्राम - मगध राज्य के साथ साथ विविध नगरों एवं ग्रामों का भी उल्लेख इस युग पर लिखे नाटकों में मिलता है। चूंकि मुद्राराक्षस इस युग के राजनीतिक द्वन्द्व की व्याख्या करने के प्रति एक मात्र अग्रणी रहा है अतः कुसुमपुर और पुष्पपुर के अतिरिक्त किसी अन्य नगर की चर्चा मुद्राराक्षस में नहीं मिलती। ये नाम प्रकारान्तर से पाटलिपुत्र के लिए प्रयुक्त किए गए है। प्रसाद के चंद्रगुप्त में तथशिला, कुसुमपुर, पिप्पलीकानन, बाल्हीक, कपिशा स्वर्णगिरि, हिरात, आदि नगरों का उल्लेख मिलता है। तथशिला उत्तरपश्चिमी सीमा पर गांधार की राजधानी थी, चंद्रगुप्त की अधिकांश घटनाएं कुसुमपुर और पुष्पपुर में घटती है जो वहां की व्यवस्था का उल्लेख करती हैं। पिप्पलीकानन प्रसाद के मत से मौर्यों की प्रथम राजधानी था।

कपिशा का विस्तृत विवरण नहीं बस चतुर्थ अंक के एक दृश्य की घटना कपिशा में एलैम्जैण्डिया के राजमंदिर में घटती है। स्वर्णगिरिचन्द्रगुप्त के राज्य की सीमा थी। हिरात का नामोल्लेख भर हुआ है इसी प्रकार वाल्हीक की और चंद्रगुप्त के जाने की सूचना भर मिलती है। शशिगुप्त में पाटिलपुत्र पूर्वी टुकड़े की राजधानी के रुप में चित्रित हुआ हैं- वितस्ता की लहरे में पश्चिम में यवन, मित्र, पारस, मकरान , बाल्हीक, सुग्ध, निषद, काम्बौज तथा भारत में गांधार, अश्मक, अभिसार , के रुप, सोभूति , तक्षशिला, और सोवीर , का चित्रण हुआ है–ये सभी स्थल मुख्य रुप से हैय और साधारण जनपद के रुप में चित्रित हुए है। तक्षशिला प्रमुख नगर के रुप में चित्रित हुआ है जागरण की चेतना तक्षशिला में ही सर्वाधिक व्याप्त है।

आचार्य विष्णुगुप्त में पार्श्र्वनाथ, पागपुरी, साकेत बावपथी, वाराणसी, राजगृह, कुण्डलपुर का नामोल्लेख मात्र हुआ है, पिप्त जीवन मौर्य क्षत्रियों के पूर्व स्थल के रुप में इस नाटक में भी प्रयुक्त हुआ है. कौमुदी महोत्सव में पाटलिपुत्र की राजधानी कुसुमपुर के साथ अमरावती ग्राम का भी उल्लेख मिलता है दंतमुद्रा में मगध के समीपवर्ती ब्रहमपल्ली ग्राम के स्थान में द्वितीय अंक की घटना घटित होती है काशी मंडल का नामोल्लेख भर है सेठ गोविंद दास के अशोक में विदिशा अन्तिका का परिचय मिलता है इसके अतिरिक्त तक्षशिला, सुवर्णगिरि और कंलिंग समृद्ध नगरों के रुप में चित्रित हुए हैं नगर की अपेक्षा ये प्रदेश के रुप में प्रस्तुत हुए है। चंद्रगुप्त विद्यालंकार के अशोक के वैशाली प्राप्त बौद्ध धर्म में प्रशस्त केन्द्र के रूप में चित्रित हैं। कुसुमपुर का नाम यहां पुष्पपुर के नाम से आया जो वैशाली से ८०० कौस की दूरी पर था। सेनापति

पुष्पमित्र के शासन काल में मगध की परिस्थितियों के साथ साथ उनके समीपवर्ती नगर भी प्रभावित हो रहे थे। आचार्य चतुर्वेदी के सेनापति पुष्पमित्र में साकेत माध्यमिक और मथुरा नगरों का उल्लेख है जिन्हे यवनों ने जीता था। विदिशा का उल्लेख मात्र हैं। विदर्भ से कलिंग राज खारवैल गौतमीपुत्र ज्ञातकर्णी को हटा कर लौटा था। काशी के पास इतिपतन के बौद्धो ने गोमती के संगम पर यवन सैनिकों को उतार दिया था।

इस प्रकार मगध राज्य की सीमाएं एवं तत्संबधी समीपवर्ती नगरों का विवरण सिद्व करता है कि मौर्य काल में मगध राज्य की राजनीतिक सीमाएं काफी विस्तृत हो चुकी थी साम्राज्यवादी शासन का प्रसार हो चला था । एक राट विजिगीधु मगध राजागण अपने अपने काल में उक्त राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ाने के प्रयत्न में लीन रहे थे। वृद्धहथ के समय वह प्रशस्त राज्य छिन्न भिन्न हो गया था जिसकी पुन प्रतिष्ठा पुष्पमित्र ने कर के नवीन ब्राहण शासन तंत्र का प्रारम्भ किया।

(२) राजा का स्वरुप राज्य के विविध क्रियाकलापों को संचालित करने वाला, शासकीय स्कित की मौत, स्थावर एवं चर जगत का स्वामी तथा सामाजिक व्यवहार का नेतृत्व करने वाला अधिकारी राजा था। कर्भदकीय नीति सार एवं वार्हस्पत्य राज व्यवस्था के अंतर्गत राज्य की एक यान के सहश माना गया है जिसका एक चक्र राजा होता था और एक चक्र राज्य का व्याहारिक जविपति अमात्य होता था- राजा सर्वोच्च शासन का प्रतीक था– उसकी शासन सत्ता निरकुंश थी वह एक राष्ट्र विजगीपु आसमुड थितीश होता था– राजा के इस स्वरुप की जो आख्या तत्कालीन नीति ग्रन्थों में मिलती है उसका यथावत् चित्रण मौर्य युग पर लिखित नाटकों में मिलता मुद्राराक्षस में चंद्रगुप्त साम्राज्य के एकाधिपति के रुप में चित्रण हुआ है- राज्य के उत्कर्ष के लिए राजा राजमंडल की गतिविधियां के अनुरुप चलता था इसीलिए राजा के सेवक को राजमंडल का मर्म, राज मंत्रणाओं के गैपन की सिद्दि करना आवश्यक होता था।

राजा का अपना कोई स्वार्थ और अभीष्ट नहीं होता था प्रजा हित उसकी दृष्टि में प्रमुख कर्तव्य था उसे पराधीनता मानते हुए भी मुद्राराक्षस का चंद्रगुप्त अंगीकार करता है- राजा अपने व्यक्तित्व के दृढ़ आत्मबल के कारण की राजनीति के संकटाकीणु मार्ग पर अडिग रह कर साम्राज्य भार वहन करता था कौटिल्य एवं वार्हस्पत्य अर्थव्यवस्था के अनुसार राजा बुहत कुछ सचिव पर भी निर्भर था। सचिव की उपयुक्त यंत्रणाओं के अभाव में राजा उपयुक्त कार्यो को कर पाने में असफल रह जाता था।मुद्राराक्षस में कंचुकी की उक्ति सिद्ध करती है कि राजा द्वारा किए गए अनुचित कार्य का दोष राजा से अधिक सचिव का होता था।

विजिगीषु राजा के आत्मसंपत् और अभिगामिक गुणों से युक्त तथा प्रिय चिन्तक होने पर ही दूसरे लोग आश्रय ले सकते हैं। मंत्री के सुयोग्य होने के साथ साथ राजा का योग्य होना आवश्यक होता था। योग्य विनीत विविगीषा संपन्न राजा के अधिकार मे अयोग्य मंत्री का मंत्राधिकार सुरक्षित रहता हैं, किन्तु अयोग्य शासक के साथ महानीतिज्ञ मंत्री में भी उसी भांति नष्ट हो जाते हैं जैसे बहते नदी तट पर उगे वृक्ष अन्त में नदी में गिर जाते हैं।

प्रसाद के चंद्रगुप्त में राजा के स्वरुप का उतना विस्तृत विवरण नहीं मिलता जितना मुद्राराक्षस में नीतिशास्त्रीय बाजारों पर किया गया है। राजा के लिए जो अनेक विसद् जैसे सम्राट, राजा , महाराजा , नरेश, आदि जो शब्द प्रचिलत थे उनका प्रयोग किया है। राजनियमों के संबंध एकाध स्थल पर ही उल्लेख मिलते हैं। राजा का स्वैच्छारिता की अपना अधिकार मानते नंद प्रजा की इच्छाओं पर प्रश्न चिन्ह लगा देता है इसी के परिणामस्वरुप प्रजा से संघर्ष कर अपने शासन का अंत कर देता है। प्रसाद आगे चाणक्य के शब्दों मे सिद्व कर देते है कि स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम दुखद होता था मंत्रिपरिषद की सम्पति से ही राजा राज्य और देश का कल्याण कर सकता है इससे यह सिद्व होता कि राजा निरंकुश नहीं था लोक कल्याण उसकी प्रधान वृति होती थी। राजा का आदर्श आत्मार्थ पृथिवी त्यजते का आदर्श होता था परिवार के मोह को भी छोड़ कर उसे राष्ट्र हित चन्तन में व्यस्त होना पड़ता था।

राजा धार्मिक धर्मराजा होता था। उसके लिए धर्मसहिष्णु तथा अन्य धर्मों का आदर करना आवश्यक था अशोक के काल में आकर राजा का स्वरुप देवानां प्रिय प्रियदर्शी चक्रवर्ती धार्मिक धर्मराज के रुप में मिलता है- राजा का स्वरुप इस काल में भी पूर्ववर्ती राजाओं के आदर्शों के अनुरूप एक राज विजगीवु राजर्षि का स्वरुप था - अर्थशास्त्र के अनुरुप इस युग के रजा के गुण भी दैवीश्क्ति सम्पन्न थे- राज कर्मचारियों की उपेक्षा से राजा कुछ भी कर सकने की क्षमता नहीं रखता था- शासन के सभी निर्णयों पर संधिविग्रहादि का राजा को पूर्ण अधिकार था।

तत्कालीन राज्य की एकता के महान आदर्श प्रजा के कल्याण की दृष्टि से राजा को सतत प्रयत्नशील बने रहना आवश्यक होता था। राजा सम्पूर्ण राज्य का संचालक, नियामक और उत्तरदायित्व का निर्वाह कर्ता होता था। राजा के आदर्श काफी महान थे जिनका पालन करते हुए वह राज्य व्यवस्था सुचारु रूप से संचालित कर पाता था।

राजकुमार और युवराज

राजा के उत्तराधिकारी राजकुमार और युवराज होते थे- सामान्यतया राजकुमार शबद् का अर्थ वह राजा था जिसे परिस्थितिवश कुमार अवस्था में ही राज्य प्राप्त हो गया हो। इस संबंध मं यह ज्ञातव्य है कि यद्यपि कुमारावस्था में वह राज्य का उत्तराधिकारी बन जाता था, किन्तु उसका अभिषेक प्राप्त होने पर ही किया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजपुत्रों से राजा की रक्षा की विधान प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकरण में सिद्व किया गया है कि राजकुमार अपने पिता के भक्षक होते है मुद्राराक्षस में राक्षस के स्कातकथन में चंद्रगुप्त के प्रति ऐसी ही भावना व्यक्त की गई है कि एक भेड़िये के बच्चे की भांति पाले पौसे जा कर पुत्र प्रेमी महाराज नंद और उनके वंश का चंद्रगुप्त ने सर्वनाश कर डाला। युवराज संबंधी दृष्टिकोण का अन्य विवरण मुद्राराक्षस में नहीं मिलता।

हिन्दी नाटकों में युवराज संबंधी दृष्टिकोण कुछ परिवर्तित है। राजकुमारों की शिक्षा दीक्षा २५ वर्ष पर्यन्त होती थी इस अवधि में वे तक्षशिला में रह कर शासन हेतु विविध विधाओं की शिक्षा ग्रहण करते थे- राजा क्रोधित होकर राजकुमार को निर्वासित भी कर देता था। बौद्ध ग्रन्थों में तथा शुक्रनीति के उल्लेख सिद्ध करते है सम्राट उत्तराधिकार का निर्णय करने में पूर्ण स्वतत्र नीति सिद्वान्त के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र सिंहासन का अधिकारी होता था किन्तु यदि वह अयोग्य. हो तो उसे त्याज्य पुत्र मानकर युवराज पद से वंचित कर सकता था। अशोक के काल में यह स्पष्ट रुप से अपनाया गया।

बड़े भाई के अयोग्य होने पर अमात्य मंडल ने अशोक को युवराज पद पर प्रतिष्ठित किया था। अशोक के शासन काल में प्रान्तीय शासन कुमारों द्वारा संचालित होता था। कुमार शासन तंत्र संचालन करने पर उपराज भी कहलाते थे- कुणाल को उपराज कहा गया हैं।

प्रधानमंत्री एवं अन्य कर्मचारीगण

प्रधान अमात्य - राज्य रूप यान के लिए दूसरे चक्र की भांति अमात्य नियुक्ति उस युग की आवश्यकता के अनुरूप थी कौटिल्य ने स्पष्ट लिखा है कि एक चक्र के यान की भांति राजकाज भी बिना सहायता सहयोग से नहीं चलाया जा सकता है अत राजा को चाहिए कि वह सुयोग्य अमात्यों की नियुक्ति कर उनके परामर्शो को हृदयंगम करें। पाणिनि में भी परिषद् के बल को महता दी है। स्पष्ट हो जाता है कि राजा के समान मंत्री का भी महत्व था। मंत्री के लिए अमात्य, मंत्रित एवं सचिव

अनेक नाम मिलते हैं। किन्तु प्रधानमंत्री का सर्वाधिक महत्व था- मंत्रि परिषद् उसकी अनुगामिनी होती थी। अमात्यओं की सहायता से राज्य परोप. कार्यप्रणाली संचालित करता था।

राजा के कल्याण के लिए प्रजा, विक्रम और भक्ति आदि गुणों की प्रधानता युक्त अमात्य होता था- एक ही गुण के अभाव में अमात्य व अयोग्य माना जाता था। मंत्री की मंत्रणाओं को गोपन की सिद्दि जानना आवश्यक होता था। स्वराष्ट्र परराष्ट्र चिंतन की युक्तियां उसके लिए जानना आवश्यक थी।मंत्री धर्म का महा प्रतिष्ठाक होता था ३-। राज्य के संधि, विग्रह, यान, आसन, संत्रय, और द्वैजी भाव के समस्त कार्यकलाप में अत्रांत् रत रहता था। अमात्य के लिए साचिव्य चिन्ह के रूप मं शस्त्र धारण करना आवश्यक था।

प्रसाद के चंद्रगुप्त से ज्ञात होता है कि अमात्य को संधि विग्रह का अधिकार प्राप्त था- संधि विग्रहिलक अमात्य के रुप में उल्लेख आया है। शस्त्र त्याग करके अमात्य अपने पद को त्याग सकता था।

अमात्य या मंत्रिपरिषद की सम्मति से राजा देश का कल्याण करता था राजा के समस्त कार्यों के आयोजन में अमात्य का कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता था राजा साचिव्यचिन्द शस्त्र को अपने अधिकार में कर के किसी को भी दे सकता था शस्त्र लौटा देने के बाद मंत्री राज्याधिकार से पूर्ण मुक्त हो जाता था।

अशोक के काल में अमात्य के लिए महामात्य अग्रमात्य शब्द का प्रयोग मिलता है। राज्य के गोपन कार्यों का लिपिकार स्वंय महमात्य होता था। आवश्यक राजपत्र भी अमात्य द्वारा हस्ताक्षरित होकर पारित किए जाते थे। उत्तराधिकार के विषय में निर्णय लेते समय अमात्य की सलाह सम्राट लेता था। राजा स्वयं अपने लिए हुए निर्णय को कार्यरूप मं परिणति करने के लिए अग्रमात्य की परामर्श लेना आवश्यक मानता था - प्रधान अमात्य उस दीप स्तभं की तरह होता था जिसका आधार पाकर राज्य भी अपना प्रकाश फैलती थी। अमात्य और अमात्य मंडल की भूल से ही विद्रोही अंकुतिर होने का अवसर प्राप्त कर लेते थे। राजपत्रों पर प्रवानापात्य की अधिकार मुद्रा भी मुद्रित होती थी। प्रधानामात्य न्यायमंत्री का पद भी ग्रहण कर सकता था। आपत्ति के समय में ही राजा और मंत्रि परिषद् की बुद्धि की वास्तविकता की परख होती था। अमात्य परिषद् से सहम्मति लेना राजा के लिए अति आवश्यक था।

अन्य कर्मचारी गण अन्य कर्मचारियों में महा धर्माध्यक्ष, कार्यान्तिक अन्तपाल, महाप्रतिकार, समाषद, महाहलाधिकृत, समाहर्ता, दावारिक, कन्चुकी, काल्याशिक,

दण्डयाशिक, राष्ट्रीय, प्रादेशिक, थ्यमहामात्य, राजुक युक्त, उपयुक्त, विनय युक्त, ग्रामकुट, अन्त महामात्य, नगर व्यावहारिक, नगराध्यक्ष, प्रदैष्ट्री, बृजमभूमिक, मुलदूत, राज संदेश वाहक, गुप्तचर, ताम्बूललव वाहिनी चमरवारिणी, व्यजनथवारिणी, प्रतिहारिणी, आदि के उल्लेख मिलते हैं।

मुद्राराक्षस में चाणक्य की धर्ममहाप्रतिष्ठाक कहा गया है, किन्तु अध्यक्ष की पदवी नहीं दी गई है– महाथर्माध्यक्ष का व उल्लेख केवल सेठ गोविन्द दास के नाटको में हुआ है– महाधर्माध्यक्ष प्रधान धर्माधिकारी होता था और अभिषेक आदि विविध क्रियाएं उसी के द्वारा सम्पन्न होती थी।

कार्यान्तिक नगराध्यक्ष की भांति होते थे नगर सूचनाएं, नगर का प्रमुख कार्यभार आदि उसे ही वहन करना पड़ता था।

अन्तपाल राज्य की सीमा का रक्षक होता है अंतपाल दुर्ग की स्थापना भी रते थे।महाप्रतिहार निश्चितरूप से किसी विभाग मे कार्य करते थे इसका शास्त्रीय उल्लेख स्पष्टत नहीं मिलता किन्तु दौवारिक कंचुकी आदि की भांति इनकी भी स्थिति होती थी वैसे प्रतिहारी के ऊपर महाप्रतिहार और उनका भी मुखिया उस काल में दौवारिक होता था। स्पष्टतया महाप्रतिहार द्वारपाल आदि की भांति होता था। दोनों नाटकों में महाप्रतिकार सूचना देने कार्य करता है जिस भांति संस्कृत नाटकों में कंचुकी देते थे।

दौवारिव और कंचुकी का प्रयोग मुद्राराक्षस में अनेक बार हुआ है दौवारिक द्वारपाल होते थे तथा कंचुकी राजा के सेवक होते थे. कालपाशिक और दण्डपाशिक बध करने वाले कर्मचारियों के रूप में प्रस्तुत हुए है इस से ज्ञात होता है कि वध करने वालों की अलग से नियुक्ति की जाती थी। समाहर्ता गुप्तचरों आदि की नियुक्ति करता था। यह करसंग्रह का भी कार्य करता था। महाबलाधिकृत सेना का प्रधान नायक होता था– उसके निरीक्षण में अशवबलाधिपति, गजब[illegible]धिपति, आदि होते थे। चंन्द्रगुप्त मं महावलाधिकृत के स्थान पर बलाधित शब्द का प्रयोग हुआ है जो सेनानायक का वाचिक शब्द है। मुद्राराक्षस मे वैतालिक का प्रयोग मिलता है वैतालिक राजागणों का प्रशस्ति गस्त करते थे।

अशोक के शासन काल में कर्मचारियों का रुप कुछ तो पूर्ववर्ती विधि के अनुरुप था और कुछ नवीनता लिए हुए मिलता है– राष्ट्रीय नामक कर्मचारी राष्ट्र के प्रधान होते थे।

प्रादेशिक एक प्रदेश का शासक होता था। थम्ममाहामात्य या धर्ममहापात्र जैसे शासकों की नियुक्ति अशोक के शासन काल में ही प्रारंभ की गई धर्म विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी धर्ममहापात्र था। राजुक भूमि व्यवस्था करने वाला अधिकारी था लोक कल्याण और शासन संबधी कार्य भी उसके हाथ में थें। युक्त नामक अधिकारी कौटिल्य के समय से ही नियुक्त होने लगे थे ये राजस्व विभाग के अधिकारी होते थे जिले के शासक कोषाध्यक्ष तथा राजस्व संग्रह के प्रति उत्तरदायी होते थे। उपयुक्त और विनय युक्त नाम के अधिकारी युक्तों की ही भांति होते थे। ग्रामकुट किस प्रकार के अधिकारी थे उसका उल्लेख शिलप्रज्ञापतों मे नहीं है सम्भवत ये ग्रमीण क्षेत्रो के अधिकारी होते थे। अन्त महामतो का उल्लेख के स्तम्भ अभिलेख में मिलता है अन्तमहामात्रा या तो सीमा प्रान्तों के अधिकारी थे या फिर स्तभ प्रज्ञापन के आधार पर कह सकते है कि ये सीमा प्रान्तों पर धर्म प्रचार करने वाले अधिकारी थे। नगर का व्यवहारिक संभवतः कौटिल्य के पुत्यावाहारिक का सयानार्थी है जो नगर शासन करते थे। नगर का वाहिरकों का मुख्य कार्य व्यवहार साम्य एवं दण्ड विधान में साम्य स्थापति करता था।

प्रदैष्ट्री किस विभाग के अधिकारी थे शिला प्रज्ञापनों में उनका उल्लेख नहीं ही ब्रजभूमिक गोपो की देख रेख करने के लिए होते थे। मुखदूत संदेशवाहक का कार्य करने में निपुण थे। ये कर्मचारी मुख्यरूप से राजुक युक्त और प्रादेशिक धर्मानुशासन की व्यवस्था के लिए प्रति पांचवें वर्ष राज्य में दौरा करते थे।

उन प्रमुख कर्मचारियों के अतिरिक्त अंगरक्षक होते थे ये स्त्री और पुरुष दोनों ही हो सकते थे। नर्तकी भी राजकीय होती थी जिसे राज नर्तकी की संज्ञा प्रदान की जाती थी ताम्बूल वाहिनी, व्यजनधारिणी चमरवाहिना छत्रवाहिनी आदि स्त्री कर्मचारियों का उल्लेख मिलता पुरोहित भी राजकीय होते थे राजा इनकी नियुक्ति करता था। कर्मचारियों का एक अन्य महत्व पूर्ण भाग गुप्तचर विभाग था– रणनीति वैदैशिक नीति की सफलता के लिए गुप्तचरों की योजना की जाती थी। गुप्तचरों के विविध रूपों पर विस्तृत व्याख्या रणनीति वाले अंग के अंतगर्त की जाएगी। कर्मचारियों का विस्तृत विवरण सिद्ध करता है कि साम्राज्य काफी विस्तृत था जिसका सुचारू रूप से शासन चलाने के लिए इतने कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी।

शासन तंत्र– शासन तंत्र का दृष्टिकोण पर्याप्त व्यापक था प्रजाओं को वर्णाश्रम धर्म के अनुसार आचरण करने के लिए प्रेरित करना राजा का प्रमुख कर्तव्य था।इस कर्तव्य पालन के लिए दण्डनीति को आधार बनाकर राजा कार्य करता था। प्रशासन का मूल शान्ति और सुरक्षा था। श्रेष्ठ प्रबंन्ध द्वारा मौर्य युगीन राजगण प्रजा की

अनीति पर अधर्मोचरण से बचाते थे आन्तरिक नीति के द्वारा राजा अपने कर्मचारियों की सहायता से स्वदेश में शान्ति प्रस्थापन करता था एवं वैदेशिक नीति द्वारा गुप्तचरों का संगठन कर प्रजा के कष्टों क्लेशों को दूर करते हुए शत्रु पक्ष को भी निरस्त करने की योजना बनाता था।

स्वदैशिक नीति-- आन्तर और बाध्य नीति के संचालन राजसत्ता तीन प्रकार की थी। राजायत्त सिद्धि सचिवायत सिद्धि एवं उभयायत सिद्धि उभयायत सिद्धि श्रेष्ठ सत्ता मानी जाती थी। युद्ध काल में एक स्थल से दूसरे स्थल जाने के लिए मुद्रा प्रदान की जाती थी।राज शासन का उल्लंघन करना अपराध माना जाता था।

राज्य की स्थिति और सुरक्षा के लिए प्रभु शक्ति से भी अधिक मंत्र शक्ति की महता थी जो विजय के लिए सेना नायक के बिना ही शत्रुपथ का सर्वनाश करने में सफल थी। इससे यह भी सष्ट होता है कि शासन तंत्र की सुव्यवस्था के लिए राजा मंत्रण करते थे। राजद्रोह हेय था क्योंकि उसके द्वारा सारे वंश समूल नष्ट हो जाते थे।

विजय अभियानों के द्वारा ही राजसता नहीं बढ़ती थी अतः सुव्यवस्था पूर्वक राजा को प्रजा के कल्याण में लगना पड़ता था। सम्राट के द्वारा प्रजा के प्रति की गई कल्याण कामनाएं प्रजावर्ग के अंतक में भक्ति और मुद्रा की मंदाकिनी प्रवाहित कर देती थी।

अशोक के काल में शासन तंत्र का रूप कुछ परिवर्तित हुआ। शिला प्रज्ञापनों से ज्ञात होता है कि अशोक के शासन मे थम्म शासन की प्रधानता थी। अशोक के शासन काल में उत्तरापथ के दक्षिणापथ सारे भारत में पूर्णशान्ति थी। शान्ति स्थापना के अतिरक्ति भारतीय साम्राज्य की एकता के लिए अशोक के शासन में प्रयास किए गए। शासन में प्रजा सर्वसुल सम्पन्न थी।सभी कर्मचारियों को अहिंसा और सद्दम्भ के द्वारा शासन तंत्र चलने की आज्ञा दी गई थी। सीमा प्रान्त के राज्यों से भी इसी नीति से व्यवहार किया गया। राज्य का समस्त कोष धर्मधिष्ठान में व्यय किया जाता था। अहिंसा और प्रेम से शासनतंत्र चलाने का विधान करके अशोक ने राज्योत्कर्ष के साथ-साथ समस्त संसार को एक सूत्र मे पिरोने का धर्मानुष्ठान किया था। प्रजा के लिए इस लोक और परलोक ये सभी प्रकार के हित और सुख को प्राप्त करने के लिए अशोक ने शासन तंत्र का विधान किया था। राजा किसी भी स्थल पर होता था तो भी प्रतिवेदक किसी भी समय प्रजा के सम्वन्ध में राजा को सूचना देते थे एवं राजा प्रजा के सब कार्य करता था। शासन संबंधी दूसरे कार्यों के लिए कर्मचारीगण विभिन्न स्थानों पर जाते थे और धर्मानुशासन भी प्रतिस्थपना करते थे।

शासन तंत्र को सुगम बनाने के लिए सम्पूर्ण राज्य चार प्रान्तो में विभक्त था उज्जयिनी, तक्षशिला, कौसाली और सुवर्णगिरि इन प्रान्तों के कारमौल राजकुमार होते थे राजकुमार के अधीन महापात्र शासनसूत्र संभालते थे१– कुमारों के साथ शासन तंत्र संभालने वाले अमात्य मंडल की शक्ति प्रजा की शक्ति होती थी। शासन तंत्र की नीति प्रजा के एक एक व्यक्ति की रक्षा के व्रत के समान थी३– ।

शासन तंत्र में मंत्रिपरिष्द के अतिरक्ति अन्य परिपदों का भी महत्व था कि ये परिषदें राजा या राजुकमार को शासन चलाने में सहायता देती थी। युद्ध आदि के समय विविध विषयों पर निर्णय परिषद ले सकती थी परिषद के बना राजा अंतिम निर्णय नहीं लेता था।राजा मंत्री की सम्मति को तिरस्कृत कर सकता था पुर परिषद की सम्प्रति उसे हर स्थिति में माननी पड़ती थी।युद्ध काल में पृथक् पृथक् गण परिषद करते थे जिनमें मंत्रणाएं की जाती थी– प्रसाद ने ऐसी मानव परिषद् का उल्लेख किया हैं । संधि विधान के लिए भी परिषद् होती थी। एक गण का नेता दूसरे गण की सहायता परिषद की अनुमित के बिना नहीं करता था। प्रसाद ने परिषद गृह का भी उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि मंत्रण के लिए अलग कक्ष या ग्रह की व्यवस्था होती थी। अशोक के काल में परिषद् के लिए विभिन्न नाम मिलते हैं संघ, परिषद, अनुस्यातयन मंत्रिपरिषद्, जनपद, निगम सत्ता, समाज आदि। अनुस्थानयन महासभा होती थी जो विविध निर्णय लेती थी। माहापात्र के साथ राजपरिषद् मंत्रण गुरु में मंत्रणा करते थे किसी भी मंत्रण के अंन्तर न्याय की आज्ञा की घोषणा के लिए राजा के प्रति निवेदन करते थे।

परिषद् में अमात्य का उपस्थित रहना आवश्यक होता था।आंतर शासन में परिषद विशिष्ट महत्वपूर्ण सिद्ध होती थी।

वैदेशिक नीति वैदेशिक नीति दो प्रकार की थी आन्तरिक और बाध। आन्तरिक नीति द्वारा राजा गण अपने राज्य में फैले शत्रुओं की गतिविधि पर ध्यान रखते थे एवं बाध्य नीति द्वारा परराष्ट्र के राजाओं से संबंध स्थापित करते थे। वैदेशिक नीति में चिरयोजना का महत्वपूर्ण स्थान था चरो की नियुक्ति द्वारा राजाओं को दुर्बल और स्वपक्ष में किया जाता था। अत वैदेशिक नीति के अंतर्गत मुख्य रूप से हम अलोच्य नाटकों की चर्योजना का विवेचन करेंगे। मुद्राराक्षस के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि चाणक्य ने नंद वंश का अंत करते एवं राक्षस की नीतियों को ध्वस्त करते हुए उसे अपनी और मिलाने के लिए नाना प्रकार के छद्मधारी और भिन्न भिन्न देश भाषा, भूषा आचार, और प्रकार सर्वथा निपुण अनेक गुप्तचरों को नियुक्त किया था जिससे स्वराष्ट्र और परराष्ट्र सहयोग देने और न देने वाले लोगों का सरलता से पता चल

जाय। शत्रु प्रयुक्त तीक्षण और रसद पुरूषों को निष्फल बनाने के लिए चंद्रगुप्त के आस पास सतर्क और राजभक्त लोगों को नियुक्त किया है। विष्णशर्मा को कपणक वेश में तंदाभाव्यों का विस्रम्भ भाजन बनाकर बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया है।

द्रव्य के लिए अपने प्राणों की भी परवाह न करके कठिन से कठिन परिस्थितियों मे पड़ जाने वाले चर तीक्ष्ण कहलाते थे तथा अपने भाई बंधुओं से भी स्नेह न रखने वाले क्रूर प्रकृति आलसी स्वभाव वाले व्यक्ति रसद होते थे ये विष प्रयोग, आदि भी करते थे। क्षपणक गुप्तचर तापस गुप्तचरों की कोटि में जाते थे ये गुप्तचर जीविका के लिए सिर मुंडा कर या जटा धारण करके राजा की सेवा करते थे ये स्थायी गुप्तचर होते थे। समहर्ता अमात्य की मंत्रणाओं आधार पर सारे देश में सिहं तपस्वी, सन्यासी, परिवाजक नट जादूगर, स्वैच्छाचारी, यमपट को दिलाकर चलाने वाले आदि विविध देशों में गुप्तचर नियुक्त करता था। उसी आधार पर मुद्राराक्षस में यमपट को लेकर धूमने वाले चर का चित्रण हुआ है। प्रजा क्या करती है और क्या चाहती हैं शत्रु पक्ष के विषय में उसका क्या विचार है, यह सब जानने के लिए क्षपणक, निपुणक आदि गुप्तचरों ५ की शत्रु राजा या शत्रुपक्ष के बलवान व्यक्ति को मारने के लिए संजमेद के अंतर्गत कौटिल्य के गणिकाओं की ओर संकेत किया है जो विष प्रयोग द्वारा व्यक्ति को मरने में सफल हो जाती था।

मुद्राराक्षस में राक्षस द्वारा चंद्रगुप्त के लिए भेजी गई विषकन्या जो चाणक्य की कूटनीति द्वारा पर्वतेश्वर के लिए प्रयुक्त की गई थी ऐसी ही गणिका स्त्रिये में से है जो संघपेद के लिए प्रयुक्त की जाती थी।

इसी भांति अहितुण्डक३ नामक गुप्तचर भी चरयोजना का प्रमुख गुप्तचर है जो संपेरे के वेश में शत्रुपक्ष के मैवों का पता लगाता है।

इसी प्रकार चंद्रगुप्त ने बंदी गृह में स्थित चाणक्य से राक्षस मगध के गुप्त प्रणिधि बन कर जाने को कहता है। अन्यत्र भी चाणक्य सिंहरण और अलका को नट नहीं, चंद्रगुप्त को सपेरा और स्वयं ब्रहाचारी रुप में रखकर परपक्ष का भेद जानने के लिए तत्पर हैं। चाणक्य का एक गुप्तचर क्षपणक वेष में गीत गाता हुआ जाकर पंचनंद से हुई संधि वार्ता एवं यवनों के आगे बढ़ने का संकेत अलका को बता जाता है।मालविका नर्तकी बनकर राक्षस की मुद्रा और पत्र लेकर नंद की रंगशाला में जाती है।ये प्रमाण सिद्ध करते हैं किं स्त्री गुप्तचरों का भी प्रमुख हाथ होता था। चंद्रगुप्त के राज्य की पूर्ण निष्कंटक बनाने के लिए पर्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग प्रायः सभी नाटककारों द्वारा कराया गया है।साधुओं के रुप में भी गुप्तचर धूमते धूमते रहते थे।ज्योतिषियों के वेश में रहने वाले कार्यान्तिक गुप्तचर जनता के मध्य भविष्यवाणी करते थें इसी

प्रकार राजा को भी एकान्त में भविष्यवाणी सुनाने के उद्देश्य से ले जाते थे। विजयपर्व में पश्चिम चक्र से आया बुद्धिभद्र गुप्तचर इसी पकार ज्योतिषी के वेश में आता है।शत्रु पक्ष के गुप्तचर मंत्रण गृह में भी अपनी नीतियों द्वारा प्रविष्ट हो जाते थे। प्रत्येक अधिकारी की गतिविधियों पर अमात्यों द्वारा प्रयुक्त गुप्तचरों की तीक्षण दृष्टि लगी रहती थी।वैदेशिक नीति के लिए साम, दान भेद और दण्ड चारों नीतियों का प्रयोग किया जाता था किन्तु भेद नीति सर्वाधिक प्रयुक्त की जाती थी। अशोक के शासन काल की वैदेशिक नीति पर राष्ट्रों से मित्रतापूर्ण व्यवहार के पक्ष में अधिक मिलती हैं किन्तु फिर भी यह कहना उपेक्षित है कि चरयोजना शासन तंत्र का महत्वपूर्ण अंग थी।

रणनीति-- तदयुगीन रणनीति के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में निहित प्रकाश युद्ध, कूट युद्ध, तृष्णीयुद्ध और मंत्र युद्ध, धर्म युद्ध आदि सभी प्रकार के युद्ध प्रचलित थे।किसी देश या समय को निश्चित करके जो युद्ध घोषणा की जाती थी वह प्रकाश युद्ध कहलता था। थोड़ी सी सेना को बहुत दिखाकर भय पैदा करना, किलों को जताना लूट पाट करना एक स्थान छोड़कर दूसरी और धावा मारना कूट युद्ध था— विष और औषधि आदि प्रयोगों तथा गुप्तचरों के उपजाय आदि के प्रयोगों से शत्रु का विनाशा तृष्णीयुद्ध था। मंत्रयुद्ध के अंतर्गत भी गुप्तचरों का उपजाय आदि प्रधान था। जब युद्ध के समय भी शिविर के समीप कृषक निश्शंक हो कर रह सके ऐसी व्यवस्था धर्मयुद्ध की थी। प्रकाश युद्ध के अतंर्गत सेना का प्रधान महत्व होता था।

सेना-- इतिहास से नंद और चंदगुप्त की सेना के बारे में ज्ञात होता है कि नंद सेना में २० हजार पदाति सैनिक,८ हजार रथ अस्सी हजार घुड़सवार, चार सौ निन्यान्वे सैनिक, तथा ६ हजारा हाथी थे। चंद्रगुप्त की सेना में साठ हजार पदाति सैनिक, तीस हजार धुड़सवार, और नौ हजार हाथी थे।

मौर्य युग में लिखित नाटकों में सेना के संबंध में संकेत मिलते है।मुद्राराक्षस में पर्वतक पुत्र मलयकेतु की विशाल वाहिनी की चर्चा है। राक्षस अतीत काल के सैन्य वैभव को स्मरण करता हुआ दृस्ति सेना, अश्व सेना और पदातिसेना की ओर लक्ष्य करता है। दृस्ति सेना का सर्वाधिक चर्चा होने के कारण सिद्व होता है कि दृस्ति सेना सर्वाधिक सशक्त सेना मानी जाती थी। चंद्रगुप्त की चतुरंगिणी सेना की चर्चा भी मुद्राराक्षस में आई है।

हिन्दीं नाटकों में भी सेना के लिए, सेना वाहिनी तथा सेना की टुकड़ी के लिए गुल्म शब्द का प्रयोग मिलता है। चंद्रगुप्त में यवनों की विकट वाहिनी की

चर्चा आई है– इसके साथ ही मगध की अत्याधिक सेना का भी उल्लेख हैं। पर्वतेश्वर की सेना का एक गुल्म अपनी दावनी अलग डाले है–७ पर्वतेश्वर की सेना में दृस्ति सेना और रथी सेना का उल्लेख है। चंद्रगुप्त में भी आंतक फैला देने वाली नंद की कई लाख सेना का वृत है। दृस्ति सेना, पदाति सेना, रथ सेना, अश्व सेना, के अतिरिक्त प्रसाद ने यवनों की जल सेना का भी विवरण दिया है। सेठ गोविन्द दास के शशिगुप्त में दृस्ति सेना की भयावहता की चर्चा मिलती है। आचार्य विष्णुगुप्त नाटकों में का मान मर्दन करने वाली आर्यावर्त की चतुरंगिषी सेना का उल्लेख है। विशाल चतुंरगिणी सेना कई टुकड़ियो में बंटी होती थी– गुल्म और गुल्मपति जैसे शब्द उसका परिचय देते हैं।विजय पर्व में कलिंग के तीन रथ सैनिकों के आहत होने की सूचना है।स्पष्ट होता है कि प्रत्येक राज्य सैन्य संगठन के लिए सतर्कतापूर्वक सेना की संख्या अधिक से रखने के पक्ष में था। संस्कृत और हिन्दीं नाटकों में पाया जाने वाला सेना संबंधी विवरण स्पष्ट करता है कि नंद काल और मौर्य काल में सेना की और राज्याधिकारी विशिष्ट ध्यान रखते थे।

अस्त्र-शस्त्र– नीति संबंधी ग्रन्थों में अस्त्र और शस्त्र पृथक पृथक माने गए हैं शुक्रनीति के अनुसार अस्त्र उन आयुधों को कहते हैं जिनका प्रयोग फेंक कर किया जाता था एवं इससे पृथक प्रकार के आयुध अस्त्र कहलाते थे। मौर्य युग पर लिखित संस्कृत और हिन्दीं नाटकों में युद्ध के विवरणों की प्रधानता होने के कारण अस्त्र शस्त्रों की भी चर्चा मिलती है– प्रमुख नाटकों में अस्त्र शस्त्र विविध रुपों में प्रयुक्त हुए हैं– तलवार, कटार, लौह की लित, अस्त्र बाण, खडूग, मलि धमुष, बरछी, शल्य, करवाल, कृपाण। अस्त्र शस्त्रों का विवरण विविध बाण संचालन सर्वाधिक नाटकों में है प्रयोग किया जाता था। स्वर्ण स्त्री में धनुर्विधा के कौशल की चर्चा है जिससे सिद्ध होता है बाण संचालन प्रमुख अस्त्रों के रूप में प्रयुक्त होता था। चंद्रगुप्त लौह अेस्त्रागार की चर्चा मिलती है जिससे स्पष्ट होता है कि अस्त्रों की विपुलता के कारण उन्हें पृथक, आगार में रखा जाता था। खड्ग अति प्राचीन अस्त्र था तक्षशिला में इसकी शिक्षा दी जाती थी। अर्थशास्त्र में यंत्रों का उल्लेख है जो दुर्ग ध्वंस करने के लिए प्रयोग किए जाते थे।प्रसाद ने चद्रगुप्त में दुर्ग ध्वंस करने वाले यंत्रों का उल्लेख किया है। शस्त्रास्त्र से लिए आयुष शब्द का भी उल्लेख मिलता है।

युद्ध प्रणाली– रणनीति की चर्चा करते समय स्पष्ट किया गया था कि मौर्य युग, में प्रकाश युद्ध तृष्णीयुद्ध कूट युद्ध, धर्म युद्ध, द्वन्द युद्ध, मंत्र युद्ध आदि कई प्रकार युद्ध प्रणालियां प्रचलित थी। तदयुगीन नाटकों में भी इसी प्रकार की प्रणालियां का प्रयोग मिलता है। मुद्राराक्षस मे सर्वत्र कुट युद्ध और मत्र युद्ध की ही चर्चा है प्रकाश युद्ध के लिए उपयुक्त सजी धजी सेनाओं और व्यूह रचना की केवल चर्चा भर है उनका

प्रयोग कहीं नहीं किया गया है- राक्षस एवं मलयकेतु शत्रु व्यसन की प्रतीक्षा में सजी धजी सेनाएं लिए बैठे रहते हैं । चाणक्य मंत्र युद्ध द्वार विजय प्राप्त कर लेता है। उसी भांति राक्षस व्यूह रचना के बारे में सेनाओं के प्रयाण पूर्व आदेश देते है- सेना के अग्रभाग में उपस्थित मेरे पीछे बस और मगध गण के सैनिक प्रयाण करें मध्यभाग में विराजमान गांधार सैनिक अपने-अपने यवन सैनानियों के साथ शत्रु से मोर्चा लेने को तैयार रहें, चेदियां और दूणों से सुरक्षित शब्द राजगण सेना का पिछला भाग संभाले और जितने भी कुलूताथिप सरीर के अवशिष्ट राजवृन्द है वे कुमारधिराज को चारों ओर से घेर कर बचाते हुए बढ़ चले। इस विधान से स्पष्ट होता है कि प्रकाश युद्ध में व्यूह रचना की प्रधानता थी। राक्षस को पकड़ने के लिए विविध प्रयोगों द्वारा मंत्र और तृष्णी युद्व की योजना का विधान संपूर्ण मुद्राराक्षस में मिलता है। मंत्र युद्ध द्वारा ही चाणक्य ने शत्रु को अपने क्रोध और मित्र को अपने प्रेम दोनों का महाफल मनोयोग पूर्वक बांटा है। मुद्राप्राप्ति और उसके द्वारा कपटलेख की योजना नाटक के मंत्रयुद्ध या तृष्णीयुद्ध का मूलाधार है। परपक्ष या शत्रुपक्ष में अव्यवस्था उत्पन्न करने की इच्छा से बाध्य स्थान पर पहुंचे शकटदास की सिद्धार्थक द्वारा हटवा देने की योजना भी इसी युद्व विधान के अनुसार है। मंत्रयुद्ध का विधान करने वाली चाणक्य की बुद्धि अगणित सेनाओं से भी बढ़ी चढ़ी है। शिल्पी दास वमा का मंत्रतोरण की योजना जो कि राक्षस के द्वारा चंद्रगुप्त के लिए प्रयुक्त की गयी थी चाणक्य की मंत्रणा द्वारा वैरोचक की मृत्यु का कारण बनी। इसी प्रकार राक्षस की अन्य युक्तियां जैसे विष पड़ी औषधि चंद्रगुप्त को देना तथा वीभत्सक आदि के द्वारा चंद्रगुप्त को मरवाने के लिए किए गए मंत्रयुद्ध के विधान चाणक्य के द्वारा तिरस्त कर दिए जाते हैं। मंत्रयुद्व का विधान करने वाली चाणक्य की नीति रस्सी के समान है जो सन्धि, विग्रह आदि बाड्गुण्य के संयोग से सुदृढ़ और साम दाम आदि उपाय चतुष्टय से सर्वथा संगाठित उस रस्सी के समान अपने शत्रुओं के बंधन और वशीकरण में समर्थ है जो ६ गुणी बड़ी होने पर भी टूटना नहीं जानती जिसका फन्दा ऐसा है जो न जाने किन किन उपायों से बनाया गया है।चाणक्य की इसी नीति के कारण ही राक्षस और चाणक्य में परस्पर मंत्रशक्ति की ही लड़ाई दिखाई देती है।

इस युग पर लिखित हिन्दी नाटकों प्रकाशयुद्व की योजना प्राय सभी नाटकों में मिलती हैं। उदाहरणार्थ वितस्ता की लहरें में सिकंन्दर और पुरु का युद्ध चंद्रगुप्त में दो तीन युद्धों की अवतरणा शशिगुप्त और सिंकन्दर, मगध नरेश तथा सिल्यूकस का युद्व, अशोक संबंधी नाटकों में कलिंग नरेश के साथ हुए युद्ध प्रकाशयुद्ध के परिचायक है। प्रसाद के चंद्रगुप्त में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से व्यापक सामग्री का निर्देश हुआ है अत यहां तृष्णी युद्ध, द्वन्द्व युद्ध, प्रकाश युद्ध, धर्मयुद्ध सभी का विवरण मिलता

है। द्वन्द्व युद्ध का उल्लेख अन्य हिन्दी नाटकों में मिलता है इससे स्पष्ट होता है कि द्वन्द्व युद्व भी उस समय प्रचलित युद्ध प्रणालियों में से एक था। ये द्वन्द्व युद्व निश्चय करके एक दूसरे को आदूत करके संपादित किए जाते थे। चंद्रगुप्त में एक द्वन्द्व युद्व शस्त्रों से लड़ा गया है इससे सिद्ध होता कि द्वन्द्व युद्ध में शस्त्र प्रयोग भी होता था।कार्नेलिया और अलका तथा सुवासिनी के लिए किए गए द्वन्द्व आत्मसम्मान की आंकाक्षा किए गए युद्ध हैं।

प्रकाशनीति में रणनीति के अनुसार सीमान्त प्रदेश पर आक्रमण करने के अंनतर केन्द्र पर आक्रमण करना उपयुक्त होता था। द्वन्द्व युद्ध का उल्लेख विजय पर्व मे भी मिलता है मगध के योग्य शासक के निर्णय. के लिए सुगम और सुदृत के मध्य द्वन्द्व युद्ध की चर्चा होती है। अन्यत्र भी सुगम चंद्रगिरि और अशोक का द्वन्द्व युद्ध के लिए प्रस्तुत होने को कहता है। अशोक के ही परवर्ती काल में अहिंसा के द्वार विजय प्राप्ति को जो योजना है वह धर्मयुद्ध का विधान करने वाली है। सेठ गोविन्द दास के अशोक मे धर्म की प्रतिष्ठा बनाए रखने का जो विधान है वह धर्मयुद्ध की प्रथा के अनुरुप है।

हिन्दी नाटकों के अध्ययन के परिणाम स्वरूप यह भी सिद्ध होता है कि स्त्रियां भी युद्ध में भाग लेती थी।युद्ध काल में घायलों की सेवा करने का भार भी स्त्रियां लेती थी- चंद्रगुप्त की अलका, मालविका, शशिगुप्त की हेलन, अशोक (चंद्रगुप्त विधालंकार) की शीला इसी तथ्य की परिचायक है।

प्रकाश मुख्यरूप से चंद्रगुप्त पर्वतेश्वर और सिंन्दर के मध्य तथा सिकन्दर सिल्यूकस के मध्य हुआ है। इसी मध्य स्वामिभक्त राक्षस को अपनी और मिलाने के विविध कूटनीतिक योजनाएं तृष्णीयुद्व के आधार पर की गई है। राक्षस को मगध ने लौटने देने की योजना, मालविका द्वारा राक्षस का मुद्रित जाली पत्र भेजना आदि योजनाएं तृष्णीयुद्ध की परंपरा में हैं. कार्नेलिया का कथन ही सिद्ध कर देता है कि अस्त्रयुद्ध की अपेक्षा यहां मंत्रयुद्ध की प्रधानता है- यह युग ग्रीक और भारतियों के अस्त्रों का ही नहीं इसमें दो बुद्धियां भी लड़ रही हैं। यह अरस्तू और चाणक्य की चोट में सिंकदर और चंद्रगुप्त उसके अस्त्र हैं। धर्मयुद्ध की चर्चा इस नाटक में चंद्रगुप्त के कथन से मिलती है— वे हमीं लोगों के युद्ध हैं जिनमें रणनीति के पास ही कृषक स्वच्छंदात से हल चलता है। अर्थात् निश्शस्त्र पर प्रहार न करने की जो पुरातन भारतीय युद्ध परम्परा थी उसी के संदर्भ मे प्रसाद ने धर्मयुद्ध परक व्याख्या प्रस्तुत की है।

आत्म सम्मान की रक्षा की भावना से प्रेरित होकर द्वन्द्व युद्ध उस युग में किए जाते थे यद्यपि कौटिल्य ने द्वन्द्व युद्ध का विवरण नहीं दिया है तथा कौटिल्य के

पूर्व ही महाभारत आदि में द्वन्द्व युद्ध के प्रमाण मिलते है। इससे सिद्व होता है कि उस सुदूर ऐतिहासिक काल भी द्वन्द्व युद्ध की प्रथा प्रचलित रही होगी।

न्याय एवं दण्डाविधान-- मौर्य राजागण न्यायप्रिय थे अतः दण्ड विधान प्रर्याप्त कठोर था। न्याय की व्यवस्था के लिए न्यायाधिकरण नामक अधिकारी होता था। न्याय का निर्णय राजा भी देता था। हत्या करवाने के दण्ड स्वरुप नगर में अपराध की धोषणा करते हुए अपराधीं को नगर से निर्वासित कर दिया जाता था। ३ राजद्रोह के लिए शूली का विधान था। राज्य पर अधिकार करने की आकांक्षा से राज्य पर दृष्टि लगाए जाने वाले शत्रुओं के गड्ढ़े में गाड़ दिया जाता था। अपमान करने के प्रतिफल स्वरुप मृत्युदंड भोगना पड़ता था। मौर्य काल में दंडविधान का प्रमुख आधार अंधकूप् होता था, जहां राजपराधियों को डाल दिया जाता था और वे मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे। आजीवन अंधकूप भी दिया जाता था । शूली की व्यवस्था भी दंड का प्रधान आधार थी- पाप की व्यवस्था राजा अमात्य को भी दे सकता था। अन्यायी व्यक्ति को शूली का दण्ड दिया जाता था। अपराध के अनुसार धर्मनीति और दंडनीति के आधार पर दंड दिया जाता था। कठोर दंडविधान अशोक के काल में भी था। राजा राजकुमार की कुचक्र में लगा जान कर उसकी आखें तक निकलवा सकता था इसी कारण कुणल नाटक एवं उससे संबंधित कथानक वाले नाटकों में त्ष्यिरक्षिता के षंडयंत्र द्वारा कुणाल की आंखें निकाले का उल्लेख है। ऐसा कठोर अपराध करने के उपरान्त राजमहर्षि भी क्षम्य नहीं थी तिष्परक्षिता को मृत्युदण्ड दिए जाने की घोषणा की गई थी। कुचक्र का जरा सा भी संदेह होने पर राजा भयानक से भयनक दण्ड दे सकता था विजय पर्व नाटक में चारमित्रा के नृत्य में कूटनीति का आभास पाकर साम्राट अशोक उसे अंगारों पर नृत्य करने का आदेश देते हैं जो कठोर दण्ड विधान का ही एक रूप प्रतीत होता है। सम्राट की नीति से विद्रोह करने वाले लोगों को दण्ड दिया जाता था। प्रारंभिक जीवन के क्रूरतापूर्ण वर्षों में अशोक ने अपराधियों को दंड देने के लिए नरक का निर्माण कराया था। इस कठोर दंड विधान का साथी उत्तर प्रियदर्शी का सारा कथानक है। अशोक के शासन काल में खौलते तेल के कडाह में अपराधियों को डालने की व्यवस्था थी उसकी साथी विजय पर्व भी देता है। सम्राट के संबंधी भी अपराध करने के उपरान्त दंड से बच नहीं सकते थे।

नाटकों के अंतर्गत आई राजनीतिक परिस्थितियों का अध्ययन सिद्ध करता है कि राजनीतिक दृष्टि से राज्य उत्कर्ष पर था। शस्त्रेण रक्षति राष्ट्रे शास्त्र रक्षा प्रवतेर्त की उक्ति तदयुगीन राजनीतिक परिस्थितियों परिवेश को देखने पर सार्थक प्रतीत होती है।

सामाजिक परिस्थितियां

यथार्थ जीवन के सर्वाधिक निकट होने के कारण नाटक काम मानव समाज से भी निकट संबंध रहा है। अतः नाटकों में किसी युग विशेष के समाज का चित्र रुपायति हो जाना कोई आश्चर्यजनक लक्ष्य नहीं है- मौर्य युग पर लिखित नाटकों में तद्‌युगीन राजनीति का चित्र उभारने के साथ-साथ समाज की गतिविधियों को भी रुपरेखा उभर आई है-। जीवन यापन अर्थकाम और धर्मत्रिवर्ग में बंटकर संतुलित और समान्वित रुप से होता था।

(१) सामाजिक व्यवस्था का आधार - वर्ण व्यवस्था

ब्रहाण-- समाज की व्यवस्था वर्ण व्यवस्था पर आधरित थी। वैदकि ऋषियों ने समाज को एक पुरुष रूप में मान कर उसके अंगों से चारों वर्णों की उत्पति मानी थी। सामाजिक एकता का यह दार्शनिक आधार मौर्य युग में भी स्वीकारा गया था. सभी नाटकों में ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शुद्ध आदि वर्गों का यथावत् चित्रण मिलता है। प्राचीन काल से ही ब्राह्मण का कर्म पठपाठन करना था- मुद्राराक्षस में चाणक्य और उसका सहाध्यायी मित्र विष्णुशर्मा, का महापण्डित ज्योतिष के चौसठ अंगों में पारंगत हैं। ब्राह्मण का पाठन विधि की क्रियाएं सम्पन्न कराने के कारण उपाध्याय की संज्ञा से अभिदित किए जाते थे-। समाज में अन्य कर्म करते हुए भी अपने ब्रह्मा धर्मव्रत का पालन ब्राह्मण अवश्य करते थे आर्य चाणक्य के गृह का वातावरण ब्रह्मचारियों की ही भांति है। सेठ चंदन दास के वाणिज्य व्यवसाय का प्रकरण बताता है कि वैश्य भी अपने वर्णानुसार कर्म में रत रहते थे। प्रधान सेठ नगर श्रेष्ठी कहलाता था।

प्रसाद के चंद्रगुप्त में वर्ण व्यवस्था का सुंदर निर्दशन हुआ है— उसने सार्वभौम ब्राह्मणत्व की प्रधानता है जिसके शासन में अन्य सभी धर्म शिक्षा लेते हैं— मनु ने ब्राहणों से शिक्षा ग्रहण करने की व्यवस्था का जो विधान किया था। वह यहां सार्थक दिखाई देता है। ब्राह्मण वृत और अमृत की जीविका से संतुष्ट रहने वाले थे। ब्राह्मण का तेजस्वी ताप स्पष्ट दिखाई देता है। बौद्ध संघर्ष के कारण इस उत्ताप में जो भस्मावगुणिठत अंगारे रह गए थे वे भी अपनी समाप्ति के साथ समस्त आर्यावर्त का ध्वंस करने में समर्थ थे। ब्राह्मणत्व अपने स्वाभविक औजस्वीरूप में यहां प्रस्तुत हुआ है।

राष्ट्रहित केवल ब्राह्मणों द्वारा संभव था उसका भी आभास मिल जाता है-१। अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए ब्राह्मण अवदत ब्राह्मण की भिक्षा नहीं मांगता

था, प्रत्युत व राष्ट्र के कल्याण के लिए वह यह भी कर सकता था। ब्राह्मण धर्म के नियासक थे- किसी भी वर्ण का संस्कार करने का उसे पूर्ण अधिकार था। भस्म होती हुई ज्वालाओं से भी वह समाज के पोषक वैश्य, सेवक शुद्र और रक्षक क्षत्रिय उत्पन्न करने का अभिलाषी है—रे पद्दलित ब्राहणत्व । देख शुद्ध ने निगड़बद्ध किया, क्षत्रिय निर्वासित करता है तब जल। एक बार अपनी ज्वाला के जल। उसकी चिनगारी से तेरे पोषक वैश्य, सेवक शुद्ध और रक्षक क्षत्रिय उत्पन्न हों।ब्राह्मण राजाओं का नियमन करते थे। जीवन की चरम व्यवस्था पर पहुंच कर ब्राह्मण वैश्वानस धर्मग्रहण करते थे। शशिगुप्त में भी चाणक्य सनम्यासादस ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त करता है। ब्राह्मण स्वाधीन व राज्य में विचरण करते थे।

शास्त्रार्थ में वे सभी पंडितों को हराने में विचरण होते थे। ब्राह्मणों की जीविका का साधन उसके शिष्यों की भिक्षा होती थी, उसका व्यवसाय अध्ययन अध्यापन था, और पुरुषार्थ केवल ईश्वर में विश्वास एवं एकमात्र वृतिनीक कल्याण थी। समाज में ब्राह्मणों का आदर होता था। ब्राह्मणों को अपने ब्राह्मणत्व के प्रति गर्व होता था।ब्रह्म ज्ञान में जीवित रहना ही ब्राह्मण अपना परम कर्तव्य मानता था। ब्राह्मण नितान्त क्रोधी और अत्यन्त क्षमा के प्रतिरूप भी होते थे। बालक ब्राह्मण भी वृद्ध क्षत्रियों के श्रेष्ठ होता था।

क्षत्रिय— प्रजा का रक्षण करना क्षत्रियों का धर्म पुरातन आदर्शों के अनुरूप था। मौर्य युग पर लिखित हिन्दीं नाटकों के क्षत्रिय इस क्षात्र धर्म के पालन में रत दिखाई देते हैं- शासन कार्य में सच्चे क्षत्रिय को मूर्धामिषिक्त करने की कामना चाणक्य के मन में हैं। चंद्रगुप्त की दृष्टि में युद्ध आजीविका का साधन और क्षत्रिया का परम धर्म है- क्षत्रिय के शस्त्र धारण करने पर आर्तवाणी नहीं सुनाई देती। चंद्रगुप्त आर्य क्रियाओं के लोप हो जाने के कारण ऋतसंस्कारों से विरक्ति हो गया है। इसी कारण वश उसे वृषल की उपाधि मिली थी किन्तु यह यथार्थ में क्षत्रिय और क्षात्र धर्म का पालनकर्ता था। पिप्पली अनेक मौर्य क्षत्रिय थे और चंद्रगुप्त उन क्षत्रियों का वशंज था। क्षत्रिय अवसर पड़ने पर अत्याचारी राजा के विरुद्ध भी विद्रोह कर देते थे क्योंकि वे क्षात्र धर्म के पालक थे।

वैश्य— प्रजाओं का पोषण वैश्यों का वर्त व्यथा प्रसाद के चंद्रगुप्त में ब्राह्मण के पोषक वैश्यों की ओर संकेत किया गया है। विभिन्न नाटकों में नगर ऋष्ठी की सूचनाएं यह बताती है कि वैश्य भी धर्मानुसार कार्य करते थे। वैश्यों के विषय में व्यापक जाति गत आदर्शों का उल्लेख नहीं हैं।

शुद्र– प्रजा की सेवा करना शुद्रों का धर्म था मुद्राराक्षस में शुद्र का प्रथक रुप से कोई निदेर्शन नहीं– केवल चंद्रगुप्त को वृषल कहे जाने से लोगों ने शुद्रत्व का अनुमान लगाया है किन्तु चाणक्य उसे वृषल अतिरिक्त स्नेह के कारण कहता है – शुद्र समाज मे हीनता की दृष्टि से देखे जाते थे– नंद का प्रतिहारी इसी कारण वश चाणक्य द्वारा शूद्र के अन्त से पले हुए कुत्ते की उपाधि से विभूषित किया जाता है।

शुद्र राजसिंहासन के योग्य नहीं थे उसी से चाणक्य नंद की शासन च्युत करने की इच्छा व्यक्त करता है। पर्वतेश्वर चाणक्य को शुद्ध शासित राष्ट्र में रहने वाला ब्राह्मण कहता है। शुद्ध के द्वारा नियमवद्ध किए जाने पर उसके ब्राह्मणत्व का स्वाभिमान आत्मग्लानि से भर उठता है–३। अपनी वृत्तित्याग पर शुद्र वृति के साथ उसे बांध देने के कारण ही पुष्पमित्र बृहड्थ द्वारा तिरस्कृत किया गया है–४।

वर्णव्यवस्था का यह निदर्शन स्पष्ट करता है वर्णव्यवस्था का पालन करते हुए विविध वर्णो ने अपने कर्तव्यों में जब तक जागरूकता दिखाई है। तब जब शान्ति यथावत् बनी रही किन्तु एक वर्ण जब दूसरे वर्ण के प्रति अधिकार लिप्सु तथा शोषक बनकर समाज की उपेक्षा करने लगा तब समाज की व्यवस्था विश्रृंखलित होने लगी थी।

(२) भोजन और पान जीवन पद्धति का सम्यक् रूपेण निर्वाह करने के समाज में आहार पद्धति का प्रमुख स्थान था। विवेच्य नाटकों के अध्ययन के परिणामस्वरूप स्पष्ट होता है कि ये नाटक मुख्य रूप से राजनीति गतिविधियां के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से लिखे गए हैं इसके अतिरिक्त भरत ने रंगमंच पर जिन दृश्यों को वर्जित बताया है उसमें खान पान भी एक है। अतः समाज के इन अंगों का व्यापक विवरण नहीं मिलता भोजन के संबंध में केवल एक दो स्थानों पर संकेत मिलता है हां मदिरापान का उल्लेख प्रत्येक नाटक में किया गया है इससे सिद्ध हो जाता है कि मदिरा पान का प्रचलन अधिक था। भोजन के संबंध में मुद्राराक्षस में कोई विवरण नहीं मिलता केवल एक स्थल पर बयांन गोच्छियां की चर्चा है। चंद्रगुप्त ने भी एक स्थल पर नमक का पानी मिले सत्तू की चर्चा है। आचार्य विष्णुगुप्त में अपूप की चर्चा आई है कुछ विद्वानों ने इसे रोटी और कुछ ने इसे मालपुए का पर्याय माना है। सेठ गोविन्द दास के अशोक के बिहार क्षात्राओं में पकने वाले भोजन के लिए मांस प्राप्ति हेतु जब बध का उल्लेख है इससे स्पष्ट होता है कि मांसाहार किया जाता था। अन्यत्र कहीं भी भोजन की चर्चा अधिक नहीं मिलती। कथानक के क्रम विकास देने की दृष्टि से ये शब्द संवादों के अंश भर बनकर प्रस्तुत हुए हैं। सुरापान अवश्य प्रचलित था जिसके लिए आसव मदिरा सुरा, द्राक्षासव, द्राक्षा आदि शब्द मिलते हैं।

कौटिलीय अर्थशास्त्र में सुरा का उल्लेख है इससे सिद्ध हो जाता है कि सुरापान प्रमुख प्रथा थी । वैदिक युग से जिस प्रजा का प्रारंभ किया था वह मौर्य युग में भी प्रचलित रही ।

सुरा पात्र विविध अवसरों पर किया जाता था राज्य प्रतिष्ठा के उपलक्ष मे अन्य मनोविनोदों के साथ पान गोष्ठियां होती थी। कलश, चषक, मानपात्र, आदि शब्द मदिरा पात्र के प्रयुक्त किए जाते थे- मदिरापान कुल्जों में विविध उत्सवों के समय भी किया जाता था। चंद्रगुप्त नाटक में नंद के विलास कानन में सुरापान किया गया है। रंग शालाओं में भी सुरापान होता था। स्त्रियां भी सुरापान करती थी राक्षस सुवासिती से एक पात्र और पीने की याचना करता है। युद्ध के अवसर पर भी सुरापान का प्रचलन होता था। सैनिकगण सुरा खुलकर पीते थे पर्वतक सुराको वीरों के परिक्व निवारण का साधन मानता है। सेनापति पुष्पमित्र का गौनर्दीय काशी मे एक कौड़ी की पांच प्रस्थ मिलने वाली द्राक्षा होने के कारण ही वसुगुप्त कौमुदी महोत्सव में अधिक वासव पान करने का विवरण देता है। सुरापान की प्रथा में स्त्रियां पुरुष को पात्र भर कर देती थी सुवासिनो नंद और राक्षस को पात्र भर कर देती हैं। विशिष्ट जनों से ले कर साधारण जन कर सुरापान करते थे।

(३) वस्त्र और आभूषण देश काल वातावरण वैयक्तिक रुचि और सामाजिक स्तर के अनुरूप परिधान उस युग के व्यक्ति धारण करते थे।ऐतिहासिक नाटकों में सामाजिक स्थिति के इन सूक्ष्म अंगोपांगों का विस्तृत विवरण नहीं मिलता फिर संवादों के मध्य आए शब्दों से उस युग की वेशभूषा और आभूषणों का संकेत मिलता है। मुद्राराक्षस वस्त्रों के संबंध में केवल एक स्थल पर उत्तरीय थौम परिधान का उल्लेख आया है। उत्तरीय प्राचीनकाल में कटि के ऊपर का भाग ढकने का वस्त्र होता था। क्षोभ परिधान शब्द से स्पष्ट होता है कि झीलें रेशमी वस्त्र का उत्तरीय बनाया जाता होगा। नीचे का भाग ढकने के अधोवस्त्र शब्द की चर्चा है जिसका उल्लेख प्राचीन कालीन सभी ग्रन्थों में मिलता है- चंद्रगुप्त में वस्त्र के संबंध में केवल परिच्छेद का उल्लेख है- परिच्छेद पहन कर मालविका चंद्रगुप्त की शैया पर लेटी थी इससे सिद्ध होता है कि परिच्छद रात्रि में पहने जाने वाला वस्त्र होगा जिसे राजागण धारण करते होंगे। शशिगुप्त में दुकूल वस्त्र के उत्तरीय तथा कौशेय का अधोवस्त्र की चर्चा आई है। कौटिल्य के मत से क्षोभल , दूकूल, किमितान , रांकव और कापीस वस्त्र की कौटिया थी।

जो सूत कतवा कर तनवाई जाती थी। उसी प्रकार कौशेय रेशमी वस्त्र के लिए प्रयुक्त होता था। चीन का कौशेय वस्त्र चीनां शुरु प्राचीन काल से भारतीय ग्रंथों में

उल्लिखित पाया जाता है – । उत्तरीय और अर्धावस्त्र सूखी भी होते थे जिन्हें साधारण वर्ग के लोग पहनते थे – । दासियां भी बहुमूल्य चमकीले कौशेय वस्त्र दारण करती। गुरु राजाओं के वस्त्रों पर सुनहरा काम भी होता था। पुरुष लोग ऊपर के अंग में कंचुक धारण करते थे। प्रतिहारी वर्ग संजूत में कंचुकी कहे गये हैं संभवतः इसी वस्त्र को धारण करनेक के कारण उस वर्ग का नाम कुंचकी पड़ा। कंचुकी ऊपर से नीचे तक का लंबा वस्त्र होता था जिसे आगे से बांधा जाता था। सिर पर पगड़ी बांधने की भी प्रथा थी जिसके लिए उष्णीण शब्द का भी प्रयोग मिलता है। राजसी वेश के लिए कौशेय का सुनहरी कामवाला कंचुक, कौशेय का ही अधोवस्त्र और कंचुक के ऊपर सुनहरा दमकता हुआ दुकूल होता था। राजा लोग अंशुक की धोती भी पहनते थे कंधों को ढ़कती हुई चादर और उष्णीय धारण करते थे। आभूषणों के उल्लेखों से सिद्ध होता है कि बहुमूल्य आभूषणों को पहनने का प्रचालन था स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करते थे। राजा गण भी आभूषणों से सुसज्जित रहते थे। आभूषणों में मुद्रिका, रत्नपलय कुण्डल हार कैयूर, नूपुर आदि का उल्लेख मिलता है नूपुर स्त्रियों के पहनने का आभूषण था। स्त्रियां आलक्तक मेंहदी आदि प्रसाधनों से श्रृंगार करती थी। पुष्पों से वेणी सजाने का भी प्रचलन था।

४. उत्सव और मनोविनोद— तद्‌युगीन नाटकों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि केवल राजनीति की नीरसता में ही नागरिक व्यस्त नहीं रहते थे वरन् राजा और प्रजा सब आमोद-प्रमोद के विभिन्न साधनों के अपना कर ज़ीवन की आनन्दमय भी देखना चाहते ते। वसंतोत्सव, हिडोलोत्सव, विजोयत्सव तथा आमोद-प्रमोद के अन्य उपकरण स्पष्ट प्रमाणित करते हैं नागरिक आमेद प्रिय थे। राजनीति और रणनीति की भयावह विभीषिकाओं से जूझने के अनंतर आनन्द की सृष्टि के लिए मनोविनोद करना इस युग के लिए नागरिकों की स्वाभाविक वृति कही जा सकती है।

कौमुदी महोत्सव उत्सव अधिकांशतः सार्वजनिक रूप से मनाए जाते थे यांवराज्यभिषेकोत्सव, वसंतोत्सव, कौमुदी महोत्सव, होलिकोत्सव, विहारयात्रा, समाज आदि सार्वजनिक रूप से मानए जाने का उल्लेख मिलता है। राजभवनों के प्रमोदोद्यान, विलास कानन रंगशाला, अभिनयशाला आदि स्थलों पर ये उत्सव आयोजित होते थे। इस युग पर लिखित नाटकों के सार्वजनिक उत्सवों में कौमुदी महोत्सव बहुचर्चित उत्सव है चंद्रगुप्त के राज्याभिषेक के अवसर पर यह आयोजित किया गया था। अभिषेक के अतिरिक्त भी पुरातन साहित्य के प्रमाण सिद्ध करते हैं कौमुदी महोत्सव शरदकृतु का पार्वणिक उत्सव था। इसी कारण वश मुद्राराक्षस में भी कौमुदी महोत्सव को शारदीय पार्वण कर्म कहा गया है। इस अवसर पर नगर को अलंकृत किया जाता था। नगर से पुष्प सुवासित, जल और चंदन जल कि छिड़काव की व्यवस्था की जाती थी। मौर्य

काल में कौमुदी मोहत्सव कुसुमपुर का महान राजनीति पर्व माना गया है। प्राचीर के अलिदों में नगर बालाएं मणिजप्ति आभूषणों से अलंकृत हो कर प्रकाश के आलोक में नृत्य करती थी,

प्राचीर के चारों और बहने वाली क्षीण में सहस्त्रों दीपदान किए जाते थे एवं सहस्त्रों पण इस अवसर पर व्यय किए जाते थे।

वसंतोत्सव - कौमुदी महोत्सव की भांति वसंतोत्सव भी प्रमुख सार्वजनिक महोत्सव था इस अवसर पर विविध नागरिक आमंत्रित किए जाते थे। वसंतोत्सव के लिए पृथक विलासकानन या प्रमोदोधान की व्यवस्था थी। जिसमें वसंतोत्सव मनाया जाता था। आसवपान, गीत, नृत्य आदि में लीन राजा भी सामान्य नागरिक मात्र रह जाता था, चंद्रगुप्त का नंद कुसुमपुर की नागरिकाओं द्वारा शासित है कुसुमपुर के कमनीय कुसुमों से क्षमा मांगते हुए वह अपने को एक कृतज्ञ सहचर मात्र मानता है। नागरिक गण सुवासिनी के अनुसार बनते हुए उसके सुंदर आलाप, कोमल मूर्च्छना के प्रति लालायित हैं। वसंतोत्सव पर अभिनयपूर्ण गायन की व्यवस्था थी। प्रमुख नागरिक वसंतोत्सव की रानी बनती थी। सुवासिनी नंद के वसंतोत्सव की रानी है।

'शशिगुप्त' नाटक का नंद वसंतोत्सव पर प्रमोदोयान में जलक्रीड़ा करता है। वसंतोत्सव में ही होलिकोत्सव का प्रारंभ कर दिया जाता था। वसंतोत्सव पर अनंग क्रीड़ा का भी आयोजन होता था। आसव पान वसंतोत्सव की प्रमुख प्रथा थी। सुंदरियां अपने अधरों से भी आसव लगा कर पुरुषों को देती थीं।

अभिषेकोत्सव - राजाओं के अभिषेक के समय भी समारोह मनाए जाते थे। नंद विजय के अनंतर कुसुमपुर के नागरिकों ने चंद्रगुप्त के नंद गृह में प्रवेश करने के लिए गृह-प्रवेश समारोह का आयोजन किया। 'शशिगुप्त' में चाणक्य चंद्रगुप्त के राज्याभिषेक अवसर पर इकतालीस दिनों के उत्सव की घोषणा करता है। कौमुदी महोत्सव का भी आयोजन किया गया था। अशोक के काल में गृह-कहल के कारण अभिषकोत्सव स्थगित कर दिया गया जो बाद में मनाया गया।

विहार यात्रा – शिलाप्रज्ञापनों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में राजालोग आखेट तथा आमोद-प्रमोद विहार यात्रा के लिये निकलते थे। इन विहार यात्राओं के अंतर्गत होलिकोत्सव दीपोत्सव आदि मनाए जाते थे। बिहार यात्राओं के द्वारा सार्वजनिक उत्सव मनाए जाते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विहार यात्रा का उल्लेख है कि किन्तु अशोक के कालव में ही आमोद-प्रमोद के लिए विहार यात्रा की परिपाटी अपनाई गई बुद्ध चरित्र में अश्वघोष ने विहार यात्रा का वर्णन किया है और बताया

है कि स्नेह, लक्ष्मी और आयु में योग्य व्यक्तियों के लिए विहार यात्रा की आज्ञा दी। गायन और उल्लास पूर्ण इन विहार यात्राओं में सुस्वाद भोजन के लिए मांस हेतु अनेक जीवों को वध किया जाता था। आगे चल कर अशोक ने इस संबोधियात्रा या धम्ययात्रा में परिवर्तित कर दिया। इसी कारण निरंतर गान पूर्ण आमोदोत्सव में लीन रहने वाले भिक्षुओं के लिए दीपावली की विहार यात्रा सूनी रही। फिर भी गायन और नृत्य का पूर्ण अंत नहीं किया गया था। विहार यात्राओं का धम्मयात्रा में परिवर्तित करने के द्वारा विभिन्न सद्धम्भ के विभिन्न निकायों का एकीकरण सरलता पूर्वक हो सका।

'स्वर्ण श्री' मे सम्राट बृहद्रथ एवं तौलियस द्वारा महाकान्तार में किया गया बन विहार, एक प्रकार से विहार यात्रा का ही एक रूप था।

समाज-- समाज के विषय में वात्स्यायन के कामसूत्र में उल्लेख है कि प्रत्येक पथ में एक बार सरस्वती मंदिर में समाज होता था इसमें नृत्य गायन, और संगीत आदि कलाओं का प्रदर्शन करने के लिए दूर-दूर से कलकार आते थे। मौर्य काल में भी समाज एक प्रकार के सामूहिक उत्सव एवं सम्मेलन के रुप में मनाया जाता था कौटिल्य अनेक स्थलों पर समाज शब्द का प्रयोग किया है जो कि उत्सव और विलास का पयार्य था इसमें नृत्य, मांस, मदिरा गाना बजाना आदि स्त्री का उन्मुक्त रूप में प्रयोग होता था। प्रसाद के चंद्रगुप्त में कल्याणी नीला से सरस्वती मंदिर के समाज की चर्चा करती है इसी प्रकार सेठ गोविन्द दास के अशोक में समाज का तामोल्लेख भरा हुआ है।

सार्वजनिक उत्सवों के अतिरिक्त मनोरंजन हेतु राजभवनों में प्रमोदक, विट, चेट वारांगनाएं विदूषक आदि होते थे जो राजा और नागरिकों का मनोरंजन करते थे। पानगोष्ठियां, महोत्सवादि मनोविनोद की प्रभूत सामग्री थे। नृत्य के द्वारा भी राजागण मनोरंजन करते थे। शशिगुप्त में नर्तकियां कामनृत्य करके सिकंदर और पर्वतक का मनोरंजन करती हैं सुरा और सुंदरी मनोरंजन का प्रमुख साधन थी। सपेरे, नट, नटी ऐंद्रिजाविक आदि भी मनोरंजक कार्यों के लिए नियुक्त होते थे। युद्ध समाप्त होते ही शिविरों में ही उत्सव प्रारम्भ हो जाते थे। धूत क्रीड़ा क्षत्रियों के लिए व्यसन सदृश थी। धार्मिक अवसरों पर बौद्ध संघों के भी उत्सव मनाए जाते थे। उत्सव मनाने के लिए रंग शाला प्रमोदवन विलास कानन अभिनय शाला आदि स्थल होते थे। युवराजों के वाग्दान के अवसर पर भी सार्वजनिक उत्सव मनाए जाते थे। उत्सवों का यह विवरण सिद्ध कर देता है कि समाज में आमोद-प्रमोद और उत्सवों की प्रधानता थी।

५. लोक मान्यताएं और जन विश्वास - जन प्रचलित तर्क शून्य प्रणालियों के आधार पर सुदृढ़ बनी धारणाओं, शकुन, ज्योतिष मंगशक्ति आदि पर भी जनता का

अधिक विश्वास था। कौटिल्य अर्थशास्त्र मंत्र-तंत्र-जादू टोने आदि का विस्तृत विवरण मिलता है जो तद्युगीन लोकमान्यताओं और जनविश्वास का परिचायक है।

अक्षिस्पंदन शुभ निमित और दुर्निमित का प्रतीक माना आता था। पुरुषों का वायाक्षिस्वंदन, तथा स्त्रियों का दक्षिणाक्षी स्पंदन अशुभ माना जाता था। मुद्राराक्षस में राक्षस बायी आंख फड़कने से आशंकित हो उठता है। दंतमुद्रा में नंदिनी, तथा कुणलि में कांचन माला दाहिनी आंख फड़कती जान कर शंकित हो उठती है।

शुभ कार्यों में सर्पदर्शन एवं सन्यासी का दर्शन दुर्तिमित का प्रतीक था। मुद्राराक्षस में राक्षस के पास प्रातः काल ही जीर्णविषनामक सपेरा पहुंचता है। जो उसके मन में शंकाउत्पन्न करने वाला है इसी भांति क्षपणक का दर्शन भी दुर्तिमित का हेतु है । आचार्य विष्णुगुप्त में त्रिदंड़ी आगमन अपशकुन का निमित है।

ज्योतिषियों की भविष्य वाणियों में भी जब विश्वास था। राक्षस प्रमाण के लिए श्रावण से मुहूर्त आदि पूछता है। चंद्रगुप्त में चंद्रगुप्त सपेरे के वेश में मगध का भविष्यवक्ता भी है जो जनता के विश्वास पैदा करके उनकी बातें जानने को उत्सुक है। दांड्याय न की सच्ची होने वाली भविष्यवाणी लोक मान्यताओं पर बल देने वाली है। विजय पर्व में गुप्तचर ज्योतिषी के वेश में आता है। चंद्रगुप्त विद्यालंकार के अशोक में कापालिक की भविष्य वाणी अनविश्वास के अनरूप है। स्वप्न भी जन विश्वास के अनुसार भावी के द्योतक थे। कुणाल में सम्राट् अशोक का दुःस्वप्न सत्य सिद्ध होता है।

६. शिक्षा— शिक्षा के संबंध में मिलने विवरणों से ज्ञात होते है कि शिक्षा प्रणाली उत्कृष्ट कोटि की थी। तक्षशिला शिक्षा का प्रमुख केंद्र था जहां दूर-दूर के आए राजकुमारों को विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी। कुलपित उस केंद्र का प्रधान होता थी वही आचार्यों को विविध कार्य करने की अनुमित देता था। स्नातकों को पढ़ने के बाद गुरुदक्षिणा चुकाने की व्यवस्था थी। चाणक्य भावी स्नातकों को अर्थशास्त्र का पाठ पढ़ा कर गुरुदक्षिणा चुकाने की बात कहता है। अस्त्रशास्त्र का भी अध्ययन तक्षशिला में होता था। विनम्रता के साथ निर्भीक होता तक्षशिला की शिक्षा का गर्व थी। आचार्य की आज्ञा ही शिरोधार्य होती थी। सद्धर्म की शिक्षा प्राप्त करना भी आवश्यक होता था। राजनीति शिक्षा भी दी जाती थी। स्त्रियां भी शिक्षा ग्रहण करती थी। राक्षस कार्वेलिया को उशना और कर्णिक की शिक्षा प्रदान करता है। तक्षशिला उस समय का ख्यात विश्वविद्यालय था। स्वयं चाणक्य और राक्षस ने वहां शिक्षा प्राप्त की थी। शिष्य गुरु का सम्मान करते थे किसी अन्य के द्वारा किया गया आचार्य का अपमान शिष्यों के लिए लज्जा का विषय होता था। शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा ग्रहण करने के अनंतर

उसकी प्रमाणकिता के लिए परीक्षा देने के भी छात्र तत्पर रहते थे। चंद्रगुप्त ने तक्षशिला का विद्यार्थी बन कर वहां से रणनीति का शिक्षा ग्रहण कर अलक्षेंद्र के राज्य की दिशा बदल दी थी। अनात्यविद्या का एक अलग विभाग स्नातकों की संख्या बढ़ जाने के कारण चलने लगा था। विद्याभवन में आचार्य और शिष्य के आसन पृथक-पृथक होते थे विद्याभवन के बाहर ये समान व्यवहार करते थे। तक्षशिला के स्नातक राष्ट्र संकट के समय राष्ट्रीयता की भावना जगाने का भी कार्य करते थे। कौमुदी महोत्सव के उल्लेख से ज्ञात होता है कि चंद्रगुप्त के समय तक्षशिला में अठारह विषयों की शिक्षा दी जाती थी सहस्त्रों विद्यार्थी वहां शिक्षा प्राप्त करते थे। स्वयं चंद्रगुप्त ने आयुर्वेद, धनुर्वेद और शल्य विद्या सीखी थी। कात्यायन ने वेद और व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की थी। चाणक्य राजनीति के साथ आयुर्वेद में भी निपुण थे। आलोच्य नाटकों का शिक्षा संबंधी विवरण स्पष्ट करता है कि शिक्षा का स्तर पर्याप्त ऊंचा था।

समाज में शिक्षा का स्थान ऊंचा था एवं उसके समक्ष राजा तक नतमस्तक हो जाते थे शिक्षा की व्यवस्था राजधर्म का प्रमुख अंग थी तक्षशिला विश्वभर की विद्याओं और कलाओं का केंद्र था।

७. विविध -विधाएं एवं कलाएं— शिक्षा तथा आमोदोत्सव आदि के विवरण स्पष्ट कर देते हैं कि उस युग में विभिन्न प्रकार की विधाएं तथा कलाएं विकसित हो चली थी। कलानुरागी वैदिक काल से ही सामान्य जनता की अभिरुचि इस ओर बढ़ने लगी थी वस्तु मौर्य युग में उसका प्रकृष्ट रुप प्रस्तुत होना स्वाभाविक था। आलोच्य नाटकों में विविध विद्याओं ज्योतिष, धनुर्विधा, व्याकरण, शल्यचिकित्सा, आयुर्वेद का विवरण मिलता है कलाओं के अंतर्गत संगीत, नृत्य, चित्र अभिनय वास्तु और सभी के उद्धरण सिद्ध करते हैं कि कला और विधा की दृष्टि से युग उत्कर्ष पर था। मुद्राराक्षस का सूत्रधार ज्योतिष की चौसठ विद्याओं का ज्ञाता है। क्षपणक से राक्षस यात्रा के संबंध में मुहूर्त आदि पूछता है। विजय पर्व में ज्योतिषी के रूप में घर जाता है। गोनर्दीय और पंतजलि व्याकरण और ज्योतिष के महापण्डित हैं। चाणक्य आयुर्वेद में निपुण आचार्य हैं।

संगीत एवं नृत्य के उद्धरणों से ज्ञात होता है कि ये दोनों कलाएं पर्याप्त विकसित हो चुकी थी। गायन एवं वादन दोनों ही क्षेत्रों में उन्नत अवस्था का परिचय मिलता है। अभिनयकला के क्षेत्र में भी मौर्य युग ने उन्नति की थी। मुद्राराक्षस के प्रारंभ में ही सूत्रधार के कथन से मुद्राराक्षस के अभिनीति किए जाने की सूचना मिलती है। सुवासिनी नंद की अभिनयशाला की रानी बनाई जाती है। अभिनय एवं गायन कला में परमप्रवीण होने के कारण राक्षस नंद के अमात्य वर्ग में नियुक्त किया जाता है। नंद की रंगशाला

में अन्य सुंदरियां काम नृत्य के द्वारा नृत्यकला का परिचय देती है। उज्जयिनी से सीखी नृत्यकला से चारुमित्रा तिष्यारक्षिता का हृदय बहलाती है। युद्ध काल में तिष्या रक्षिता के लिये संगीत, नृत्य और चित्र ही सहारा है। कौमुदी महोत्सव की राजनर्तकी नृत्यकला द्वारा ही षड्यंत्र का प्रतिनिधित्व करती है। इसके अतिरिक्त नगर के सौदंर्य को द्विगुणित करने के लिए अनेक बालाएं मणिजटित आभूषणों से अलंकृत हो कर नृत्य करती थीं। सेठ गोविन्द दास के अशोक में भिक्षुओं के वार्तालाप मंगल गान एवं शुभ भी पर्याप्त उन्नति हुई थी। विविध विद्याओं और कलाओं की दृष्टि से मौर्य युग ने पर्याप्त उन्नति के पथ पर आरोहण किया था।

८. विविध वाद्य— संगीत कला के प्रति विशेष अभिरुचि होने के कारण इस युग के नाटकों में विविध आचार्यों के नाम मिलते हैं। संगीत के अतिरिक्त रण क्षेत्र में प्रयोग में जाने वाले रणवीरों का भी उल्लेख है। वीणा, वेणु पटह, सूर्य आदि वाद्यों के नाम मिलते हैं। विविध अवसरों पर मंगल वाद्य बनाए जाने का उल्लेख मिलता है। वीणा प्रमुख वाद्य के रूप में प्रयोग की जाती थी। चंद्रगुप्त रणभेरी के पहले मुरली की तान सुनने का अमिलपुर है। रणवाद्यों के लिये पटह, सूर्य श्रृंग, रम्पट, भेरी, जयघंट, आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

युगीन सांगीतिक प्रतिमा का परिचय देते हैं। विहार यात्राओं में संगीत आमोद-प्रमोद का प्रमुख साधन माना जाता था। बौद्ध उपयुग अंधे बालक से संगीत का अभ्यास करने के विषय में पूछते हैं।

वास्तुं और शिल्प कलाओं की भी पर्याप्त उन्नति मौर्य युग में हुई थी। अशोक के काल में विभिन्न स्तंभ स्तूप शिला लेख चैत्य आदि के निर्माण द्वारा वास्तुकला की उन्नति की गई। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में शिल्पियों की चर्चा की है तथा भमरकोप में कारुकर्म और शिल्पवर्ग का विवरण मिलता है। मुद्राराक्षस में दारूवर्मा का यंत्रतोरण निर्माण शिल्प कुशलता का प्रवृष्ट उदाहरण है। पाटलिपुत्र के नगर प्रसाद की उत्कृष्ट वास्तुकला का परिचय इतिहास में भी मिलता है। मुद्राराक्षस में भी नगर प्रासाद की निर्माण कला का उल्लेख किया गया है। आचार्य विष्णुगुप्त में शिल्पियों की चर्चा है। इससे स्पष्ट होता है कि कि शिल्पी राजभवन में नियुक्त रहते थे। सेठ गोविन्द दास के अशोक में स्तंभ शिलालेखों आदि के विवरणों से यह ज्ञात होता है कि वास्तुकला की सामान्यतया सामाजिक दृष्टि से युग पर्याप्त उत्कर्ष पर पहुंच चुका था।

समाज स्त्रियों के विविध रूप व्याप्त थे। दार्शनिक चिंतन करने वाली स्त्रियों से ले कर युद्ध काल में जाने वाली स्त्रियां रंग शाला का आमोदोत्सव सफल बनाने वाली स्त्रियां कलाओं की शिक्षा ग्रहण करने वाली स्त्रियों का उल्लेख मिलता है। वेश्याओं

की भी पृथक स्थिति थी। शूद्र की कन्या से परिणय संबंध स्थापित करना श्रेयेष्कर नहीं समझा जाता था। यात्रियों के लिए पान्थशालाओं की भी व्यवस्था की जाती रही होगी। जनपदों में भी शांति सुव्यवस्था का ही राज्य था। चोर, कदर्य और मद्यपो का अस्तित्व नहीं था। बाहर से आने वालों के लिए अतिथि आतयों की व्यवस्था थी। एक पति अनेक पत्नियां रखने का अधिकारी था और उस युग की सामाजिक व्यवस्था के अनुसार यह स्वाभाविक ही था। समाज की पर्याप्त उन्नति के कारण प्रजागण भौतिक सुखों में आकण्ठमग्न रहते हुए भी उच्चतर जीवन दर्शन का आभास देते हैं।

आर्थिक समृद्धि— तत्कालीन ऐतिहासिक विवरण से ज्ञात होता है कि आर्थिक दृष्टि से देश पर्याप्त समृद्ध था। बौद्ध काल से ही विविध उद्योग धंधे विकसित होने प्रारंभ हो गए थे जो कि मौर्य काल तक आते-आते काफी उत्कर्ष प्राप्त कर सके। सम्राटों की सुदूर व्यामिनी राज्य सीमाएं और उनके द्वारा किए गए विविध प्रयास देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बना सके हैं। आलोच्य नाटकों के विवरण में यद्यपि अर्थव्यवस्था और आर्थिक समृद्धि का विस्तृत चित्र नहीं मिलता फिर भी यत्र तत्र किसी-किसी प्रकरण में जो संकेत मिलते हैं वे तद्युगीन उत्कृष्ट अर्थव्यवस्था का साक्षात्कार कराने में समर्थ है। वाणिज्य व्यवसाय चरम कोटि पर पहुंच चुका था। मुद्राराक्षस के नगर श्रेष्ठी चंदन दास की स्थिति से इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। दूसरे देशों से भी व्यवसाय होता था। चंद्रगुप्त के सार्थवाह के रूप में आने से इसका संकेत मिलता है। आर्थिक समृद्धि के कारण यह देश स्वर्णभूमि कहलाता था। यवन सैनिकों को भारत की सारी पृथ्वी के नीचे सोना दिखाई देता है। भारत में जितने रत्न थे उतने यवन सैनिकों ने कहीं नहीं देखे।

आर्थिक समृद्धि की विपुलता के कारण नंद अपनी दानशाला के एक सहस्त्र का पोषण भी देने को तत्पर है. नंद ने पृथ्वी तल में अस्सी करोड़ स्वर्ण मुद्राएं छिपा कर रखी थीं।

पाटलिपुत्र के हाट में खाद्यान्न की कमी न थी। एक कार्षापण में चालीस प्रस्थ अन्न मिल जाता था जिसे एक पुरुष उठा नहीं सकता था। नंद राजा अपने विलास सहस्त्रों पण व्यय कर डालते थे। काशी में एक कौड़ी पांच प्रस्थ द्राक्षा सम्राट बृहद्रथ के काल में मिलती थी। आर्थिक समृद्धि का विस्तृत आलेख्य आलोच्य नाटकों में नहीं प्रस्तुत हुआ है फिर भी इसी आधार पर कहा जा सकता है कि आर्थिक दृष्टि से भी मौर्य युग उन्नत अवस्था में।

धर्म नीति—

१. तद्युगीन धार्मिक परिस्थितियां

नंद काल से ले कर उत्तर मौर्य युग तक धार्मिक परिस्थितियों का व्यापक परिवर्तित रूप दृष्टिगत होता है। नंद काल में ब्राह्मण बौद्ध संघर्ष, चंद्रगुप्त के काल में वैदिक धर्म का प्रधानता अशोक के काल में वैदिक धर्म की प्रधानता अशोक के काल में प्रधानतः बौद्ध धर्म का संस्कृत रूप एवं अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भावना तथा बृहद्रथ के काल में बौद्ध धर्म को बनाने के कारण सेनापति पुष्यमित्र द्वारा सम्राट का अंत करके वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की गई। इन सभी परिस्थितियों का उल्लेख पूर्व मौर्य युग से लेकर उत्तर मौर्य युग तक के नाटकों में मिलता है। संस्कृत नाटक मुद्राराक्षस में विशेष रुप से उस युग की राजनीति का चित्रण हुआ है अस्तु धर्मनीति के संबंध में यह नाटक अपना कोई उल्लेख नहीं देता। किन्तु क्षपणक वेशधारी गुप्तचरों की योजना से स्पष्ट होता है कि उस युग में बौद्धमता अनुयायी भी प्रबल शक्ति सम्पन्न थे। चाणक्य वैदिक धर्म के अनन्य प्रतिष्ठापक का प्रतीक है अतः वैदिक धर्म के भी बढ़ते कुरूपों के कारण बौद्ध ब्राह्मण संघर्ष का किंचित आभास मुद्राराक्षस में मिलता है।

प्रसाद के चंद्रगुप्त में ब्राह्मण बौद्ध संघर्ष का स्पष्ट चित्र मिलता है नंद की ब्राह्मणों से घोर शत्रुता थी और इसी कारण वश वह बौद्ध मतानुयायी बन गया। अनेकों बौद्ध विहारों का निर्माण भी हो चुका था। सुवासिनी शरण लेने के लिए बौद्ध विहार में जाती है।

राक्षस भी बौद्ध मत का समर्थक है तथा राक्षस सुवासिनी के साथ उपासक बन कर सुखी रहने का स्वप्न देखता है। स्त्रियों को भी बौद्ध धर्म में दीक्षा लेने की व्यवस्था थी। बौद्ध वैदिक धर्म का संघर्ष चला कर नंद जनता को धर्म का ओर से नचाता है।. चाणक्य वैदिक मत का अनुयायी है अतः बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को मानव व्यवहार के लिए वह पूर्ण नहीं समझता। प्रजा पर भगवान बुद्ध के अहिंसा के सिद्धान्त का अधिक प्रभाव था। निवासी ब्राह्मणों पर भवन सैनिक अत्याचार करते हैं। धर्मप्रधानता के कारण ही आर्यावर्त के आर्य और बौद्ध सन्तों के माध्यम से सिकंदर को संसार की असारता का ज्ञान होता है। बौद्ध धर्म के साथ-साथ जैनाधर्म का भी विवरण मिलता है यद्यपि बौद्ध धर्म की भांति जैन धर्म देश व्यापी नहीं था।

अशोक राज्यभिषेक के चौथे वर्ष से ही सद्धम्भ के प्रति आकर्षित हो गया था आकृष्ट ही नहीं, वह 'सद्धम्भ' के उपासक की श्रेणी में भी आ गया था। पाटलिपुत्र का अशोकाराम सारे देश भर में विख्यात था।

अशोक के काल में बौद्ध धर्म का आपश्चिमातपूर्व प्रसार हुआ। स्वयं उसक पुत्र महेंन्द्र और संघामित्र ने भिक्षु धर्म ग्रहण करके बौद्ध धर्म का प्रचार और प्रसार किया सद्धम्भ का व्यापक प्रभाव होने के कारण अशोक के चौरासी सहस्त्र बिहारों का निर्माण करवाया था। सद्धम्भ के अतिरिक्त वैदिक, जैन तथा अन्य धर्म एक सी पूज्य दृष्टि से देते जाते थे। राज्य का समस्त कोष धर्माधिष्ठान में ही व्यय किया जाने लगा। सद्धम्भ में मतभेद के कारण बने हुए भिन्न-भिन्न वाक्यों के एकीकरण के लिए अशोकारम मे विद्वानों की संगीति आयोजित की गई। धम्म विजय को ही अशोक ने प्रमुख विजय माना। धम्मयात्रा के लिए अशोक ने संबोधि यात्रा की और बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए बिहार यात्राओं के स्थान पर धम्म यात्राएं की जाने लगीं।

विविध संधारामों में भिक्षुओं के मध्य होने वाला व वाद-विवाद तद्‌युगीन राजनीति को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त समर्थ था। शासक बनने के पूर्व अशोक बौद्ध धर्म का विरोधी था अतः अशोक बौद्ध धर्म और कलिंग दोनों का ही नाश करने को तत्पर है। कलिंग युद्ध की भयावहता के प्रेरित हो कर अशोक ने हिंसा त्याग कर अहिंसा को ग्रहण किया एवं सध्धम्म की शरण में आ गया। प्राणिमात्र के प्रति कल्याण करने की आकांक्षा से अशोक ने धम्म साम्राज्य की स्थापना की। देश-देशान्तर में बौद्ध धर्म का ही प्रचार था।

बृहद्रथ के काल में ब्राह्मण मत के मानने वालों की संख्या बढ़ने लगी थी, यवनों को माध्यमिका के पार निकाल देने के अनन्तर पुष्यमित्र अश्वमेध यज्ञ की योजना की। बौद्धों का भी बोल बाला था। इसिपतन के बौद्ध बिहार को रक्षा के लिए यवन सैनिकों को चीवर पहना कर गोमती के संगम पर उतार लेते हैं। स्वर्ण श्री का नगादत्त तथागत श्रद्धा रखने वाला है।

सम्राट बृहद्रथ की सेना वैदिक धर्म को कुचलने के लिए थी, प्रजा की रक्षा के लिए नहीं। इसी कारण जनता विद्रोह करने के लिए तत्पर हो उठती है। सम्राट बृहद्रथ का अन्त करके सेनापति पुष्यमित्र द्वारा पाटलिपुत्र में पुनः वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा हुई एवं पाटलिपुत्र की स्वर्ण श्री अमर हुई।

२. धर्माचरण सम्बन्धी क्रियाएं— आलोच्य नाटकों में धर्माचरण सम्बन्धी क्रियाओं का संकेत मात्र मिलता है ब्राह्मण एवं बौद्ध अनपे धर्म के अनुसार विविध क्रियाएं सम्पन्न करने के प्रति जागरूक थे। ब्राह्मणों को दान देने की प्रथा थी। पितरों के श्राद्ध तर्पण का भी विधान मुद्रारांक्षस में मिलता है। ऋत और अमृत क्रियाओं के द्वारा ब्राह्मण वर्ग की जीविकोपार्जन करते थे। अतिथि सत्कार की परम्परा प्राप्त होती है। मनुस्मृति आति ग्रन्थों में विहित नियमों के आधार पर अतिथि चर्या की जाती थी। अशोक के

शासन काल में भी अतिथियों के स्वागत के लिए द्वार सदैव खुले रहते थे। भारतीय गृहस्थों के घर में अतिथियों के लिए भोजन जल और विश्राम की व्यवस्था रहती थी। यज्ञ यागादि भी सम्पन्न होते थे।

उक्त विवरण के अतिरिक्त धर्माचरण सम्बन्धी क्रियाओं का संकेत आलोच्य नाटकों में उपलब्ध नहीं होता है। धर्म व्यवस्था के उल्लेख स्पष्ट करते हैं कि धर्मनीति का स्वरुप पार्यप्त व्यापक हो चला था समाज में धर्म प्रचार की प्रधानता की चाहे वह वैदिक धर्म रहा हो या बौद्ध। राजा गण प्रायः धर्म सहिष्णु होते थे किन्तु जिस राजा के शासन काल में धर्म की उपेक्षा की गयी देश धार्मिक कारण से विश्रृंखलित होने लगा था।

आलोच्य नाटकों में वर्णित विविध परिस्थितियों का चित्रण मौर्य युग की स्वर्ण श्री का यथातथ्य रूप चित्रित करने में पूर्ण समर्थ प्रतीत होता है कि राजनीतिक सामाजिक धार्मिक और आर्थिक प्रत्येक दृष्टिकोण से मौर्य युग से अप्रतिम उन्नति की थी।

तुलनात्मक निष्कर्ष— मौर्य युग की विविध परिस्थितियों का यथावत चित्रण करने में पार्यप्त समानता रखते हुए भी युग चित्रण के दृष्टिकोण से दोनों भाषाओं के नाटकों में पर्याप्त अन्तर भी परिलक्षित होता था। मुद्राराक्षस का नाटक कार युग जीवन की विविध परिस्थितियों की उद्‌भावना करते हुए भी सम सामयिक राजतन्त्र के षडयन्त्रों में सक्रिय दिखाई देता है। राजतन्त्र में जीने वाले क्षणों के कारण ही नाटक कार इस नाटक का निर्माण करने में समर्थ हुआ है। राष्ट्र का जीवन दर्शन राजनीतिक आदर्शवाद एवं मानवता का विश्वासी रुप लिए नाटक कार की आत्मा नाटक की कथावस्तु में पैठ गयी है। इस कारण नाटक कार युग निर्माता है अपने युग का तथा आगत युग का भी। राष्ट्र के जीवन दर्शन के रूप में नाटक कार ने भारत का जो चित्र खींचा है वह अतीत के गौरव मय युग की ओर संकेत करता है चाणक्य आत्म करते हुए राष्ट्र का गौरव मय प्रमाण देता है। चन्द्रगुप्त शासक होते हुए भी जनता के सुख में अपना सुख मानता है। और राक्षस राष्ट्र के लिए मानवता के लिए आत्म बलिदान को भी करता है।

नाटक कार ने तद्‌युगीन के माध्यम से वर्तमान और भावी की तूलिका सृष्टि को गहरा रंग दिया है। राष्ट्र जीवन की शाश्वत मंगलाशंसा के लिए समस्त पात्रों के उत्थान पतन द्वारा छोटे बड़े, शसित और शासक सबके हृदय को परिवर्तित करने की आकांक्षा से नाटक कार ने अपने युग के साथ शताब्दियों पहले भविष्य का चित्र खींचा है। मानता के प्रति महा विश्वास की आदर्शवादिता एवं जीवन के कठोर संघर्ष की

यथार्थवादिकता की उपलब्धिगम सरणि के मध्य पर्यवसित होता हुआ मुद्राराक्षस अन्ततोगत्वा सुख शान्ति की वैतरणी प्रवाहित करता परिलक्षित होता है।

हिन्दी नाटकों के युग चित्रण के दृष्टिकोण में भी सामयिक परिस्थितियां योग दे रही थी इसीलिए नाटककारों ने इतिहास के उन अंशो को चुना है जो अतीत के शरीर में वर्तमान की आत्मा को प्रतिष्ठित करने वाले हैं। हिन्दी नाटकों के रचना काल समय देश की स्वाधीन चेतना ने इस युग के नाटक कारों को संघर्षरत एवं उस संघर्ष पर विजय पाने वाले कथानक को चुनने के लिए बाध्य किया। विदेशी शासन की श्रृंखला में जकड़े देश की परतन्त्रता पर सिकन्दर के आक्रमण का व्रत ले कर इन नाटक कारों ने तीखा व्यंग किया है। हिन्दी नाटक कारों के ऐतिहासिक नाटकों का चरम रूप इसी में रहा कि उन्होंने इस युग विशेष को उपने समग्र इच्छाओं बुराइयों के साथ चित्रित कर दिया। गांधी वादी विचारधारा की प्रधानता भी इन नाटकों में देखी जा सकती है। गांधी ने अपने अहिंसात्मक नीति द्वारा बिना रक्तपात के ही सरलता से विदेशियों को परास्त कर दिया था चाणक्य की नीति भी बहुत कुछ इसी से प्रभावित दिखाई देती है। देश की परिधि में फैली उत्तर दक्षिण, पूर्व और पश्चिम की भेद बुद्धि मिटा कर राष्ट्र के एकीकरण की भावना इन नाटकों का मूल स्वार्थ स्वर मानी जा सकती है।

चन्द्रगुप्त सम्बन्धी सभी नाटकों में विशाल भारत राष्ट्र का स्वप्न उजागर हुआ है। खण्ड द्वेष से जर्जर विविध राज्यों गणतन्त्रों का चित्रण स्वाधीनता के पूर्व देश की विश्रृंखलित अवस्था के चित्र के रुप में प्रस्तुत हुआ है। पुनर्जागारण काल के नाटक होने के कारण इन नाटकों की प्रतिष्ठा कुछ दूसरी ही है सामयिक युग एवं अतीत को विरासत के संदर्भों को ले कर अपनी अभिव्यक्ति के प्रति ये नाटक कार सचेष्ट रहे हैं। अशोक से सम्बन्धित नाटकों में भी गांधी वादी अहिंसात्मक नीति एवं राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास की भावना प्रधान है। इतिहास के संदर्भ में सामयिक वृत का अंकन करने के कारण इतिहास युग जीवन का व्याख्याता बन कर प्रस्तुत हुआ।

इतिहास स्वानुभव नाटकीय परम्पराओं एवं लोक मान्यताओं के साथ साक्षात्कार करते हुए इन नाटक कारों ने युग जीवन का जो चित्र आंका है वह निस्संदेह उत्कृष्ट कोटि का कहा जा सकता है। संस्कृत नाटक में राजनीतिक द्वन्दात्मकता का प्राधान्य है एवं उसके माध्यम से मानवता का शाश्वत संदेश प्रसारित किया गया है। एवं हिन्दी नाटकों में संघर्षात्मकता एवं राष्ट्रीय चेतना को प्रधानता देते हुए यही सन्देश दिया गया है। दोनों भाषाओं के नाटक कार एक लक्ष्य के अनुगामी है। पथ भेद का अन्तर है। काल की व्यापक चेतना सांस्कृतिक समष्टि सबको एक सूत्र में पिरोने वाले ये नाटक साहित्य के परम अवदान तत्व हैं।

उपसंहार

समस्त साहित्य रूपों की वैविध्यमयी परम्परा में नाटक निशिचत: साहित्य की प्रपृष्ट विधा माना गया है। इस संदर्भ में महादेवी जी वर्मा की मान्यता है कि एक धरातल पर सबको सामान्य अनुभूति देने की विशेषता के कारण उसे हर संस्कृति अपने श्लेषहीन संदेश का बाधक बनाती रही है। इस सन्दर्भ में संस्कृत और हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की तुलनात्मक आख्या प्रस्तुत करना रचनाकार मूल्यों की विकास सारिणी को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। युग विशेष की परिस्थितियां जन जीवन में उठने वाले तीव्र भावालोड़न सामाजिक और व्यक्तिगत उत्थान पतन की स्वामाभिक्ता के ऐतिहासिक नाटकों की दृष्टि कहीं अधिक गत्यात्मक होती है। इस प्रक्रिया में एक और अतीत वर्तमान के लिए अधिक अर्थदान और महत्वपूर्ण बनता जाता है और दूसरी ओर समकालीन अनुभूति में गहनता और तीव्रता का नूतन आयाम प्रस्तुत करता चलता है। इस प्रकार ऐतिहासिक नाटक अतीत से ही नहीं वरन् एक सर्वव्यापक अर्थवत्ता के साथ प्रस्तुत हैं।

मौर्य युग पर लिखित संस्कृत और पर्यवेक्षण से निष्कर्ष निकलता है कि दोनों भाषाओं के नाटककारों ने स्वयुगीन संदर्भो की प्रस्तुति करते हुए अतीत का उज्जवल रूप अंकित किया है। रचनात्मक अनुभवों को ऐतिहासिक अनुभव से संपृक्त करते हुए विविध नाटककारों ने स्वानुभव का सत्य, रचनात्मक का सत्य, परंपरा का सत्य, इतिहासकार का सत्य एवं लोक मानस का सत्य अपनी-अपनी रचनाओं में रूपायित करने का प्रयास किया है। संस्कृत नाटक का मौर्यकालीन इतिहास जहां तद्युगीन राजनीतिक घात-प्रतिघात के संस्पर्श में मानव कल्याण की भावनाओं का परिचय देता है वहीं नाटकों का दृष्टिकोण सांस्कृतिक राजनीतिक ओर राष्ट्रीय चेतना का रूप स्पष्ट करता है। इस प्रकार के विषय का चयन करते हुए इतिहास का युगबोध परक रूप प्रस्तुत किया गया। शिल्प विधान के क्षेत्र में हिन्दी नाटकों में नई परंपराओं का अनुसरण दिखाई देता है। इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए हिन्दी नाटककारों अपने व्यापक दृष्टिकोम का परिचय दिया है। कलात्मकता का श्रेष्ठ प्राविधान करते हुए इन नाटककारों ने इतिहास के संदर्भो को संतुलित रूप में उपस्थित किया गया है। यह दूसरी बात है कि इस लक्ष्य की पूर्ति में कोई नाटककार दो पग आगे दिखलाई देता है और कोई कुछ दूर रह गए हैं। राष्ट्रीयता, एकता, देशप्रेम, शौर्य एवं बलिदान आदि आदर्शो को प्रस्तुत करते हुए पात्रों की रागात्मक चेतना को रूपायित करने का प्रयास किया गया है। विशाख के मुद्राराक्षस में राजनीति के वैदग्घ्य प्रयोग के साथ स्वदेश पर सब कुछ

उत्सर्ग करने की भावना, हिन्दी नाटककारों में प्रसाद के नाटक में इतिहास प्रयोग के साथ संस्कृति के व्याख्याता एवं साहित्यिक स्वाभाविक निखार, लक्ष्मी नारायण के नाटकों में सांस्कृतिक मोह की प्रधानता, सेठ गोविन्द दास के नाट में नवीन अनुसंधान का आग्रह, अशोक के सम्बन्धित नाटकों में मानवजीवन के स्वाभाविक क्रिया व्यापारों का मनोविज्ञानिक आलेख्य, कैलाश नाथ भटनागर के कुणाल में आदर्शात्मकता निर्वाह की प्रधानता, सेनापति पुष्यमित्र में राजहत्या के क्लंक को धोने का प्रयास, स्वर्ण श्री में ऐतिहासिकता के परिपाश्र्व में काल्पनिक घटनाओं का संयोजन करते समय तद्युगीन वातावरण की संरक्षा का प्रयास, उत्तर प्रियदर्शी में नूतन नाट्य विधा के परिपाश्र्व में आधुनिक युगबोध की प्रतीक कथा का मर्मस्पर्शी अंकन आदि का विचार करते हुए नाटककारों ने अपने उपलब्धि परक दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

विषयवस्तु का चयन और शिल्प विधान के क्षेत्र में इस विकास सारणि में नूतन संदर्भों का आंकलन किया गया है। मुद्राराक्षस में यद्यपि नाट्य रुढ़ियों का ही पालन करने के उद्देश्य को नाटककार रचना नहीं की गई है तथापि उत्कृष्ट शिल्प-विधान की दृष्टि से उसे श्रेष्ठ संस्कृत नाटकों की कोटि में रखा जा सकता है। हिन्दी नाटकों के शिल्प विधान संस्कृत, फारसी और योरोपीय नाट्य शैलियों का प्रभाव नई नाट्य शैली का परिचय देने में समर्थ हुआ है।

युग चित्रण के क्षेत्र में तद्युगीन विचित्र परिस्थितियों का अंकन करते हुए सभी नाटककारों ने अपने युग को यथासंभव प्रतिविम्बित करने का प्रयास किया है। नाटककारों द्वारा ग्रहीत मौर्य युग के इतिहास उनके युग का इतिहास निश्चित रूप से मुखरित हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं। चन्द्रगुप्त से सम्बन्धित नाटकों में भारतीय सत्ता की विदेशी सत्ता पर विजय निसंन्देह अंग्रेज़ों के निर्मम शोषण पर भारतीयों की विजय का उपस्थापन किया गया है। पुनर्जागरण काल का साहित्य होने के कारण नाटककारों ने ऐतिहासिक विरासत यथासमय सुरक्षित रखते हुए उसके उदास मूल्यों की प्रतिष्ठा बनाए रखने में सफलता प्राप्त की है। गांधी के व्यक्तित्व के प्रभावी युग में मानवतावाद का संदेश नि:सन्देह रूप से मिलता है।

"उत्तर प्रियदर्शी" में युग जीवन की विसंगतियों से जूझते हुए मानव की मन: प्रवृत्तियों के क्रूर का चरम उत्कर्ष, अंतर के मन की असाध्य वेदना से मुक्ति का प्रयास और उसके अनंतर मानस परिवर्तन और अंतर से कल्मण क्लंक को धोते हुए यात्रान्त किया गया है। मानव की शक्तिवत्ता अपने "अहं मैं" अन्य को परामृत करने के लिए सदैव तत्पर रही है। इस सर्वभौम विचारात्मकता का अंकन उत्तर प्रियदर्शी में मिलता है।

मौर्ययुग पर लिखित इन नाटकों के अध्ययन के परिणामस्वरूप निष्कर्षतः कह सकते हैं कि नाटकों के विकास क्रम में दत्तचित्त विविध नाटककारों ने स्वाभाविक रूप से सम-सामयिक परिस्थितियों से चेतना प्राप्त करते हुए एवं अतीत के गौरवमय आदर्शों से प्रभावित होते हुए उसके प्रोइमासित रूप को प्रकाशित कर इतिहास के क्लुषित वाणों को समाप्त करने के लिए प्राच्य और पाश्चात्य नाट्य प्रणालियों का अनुवीक्षण करने के अनंतर इतिहास-बोध के नूतन मान-मूल्यों का प्रस्थापन करते हुए हिन्दी नाटकों के विकास में निरन्तर योग दिया है। इसमें कोई संदेह नहीं। इस संदर्भ में संस्कृत और हिन्दी नाटकों की सार्थकता है।
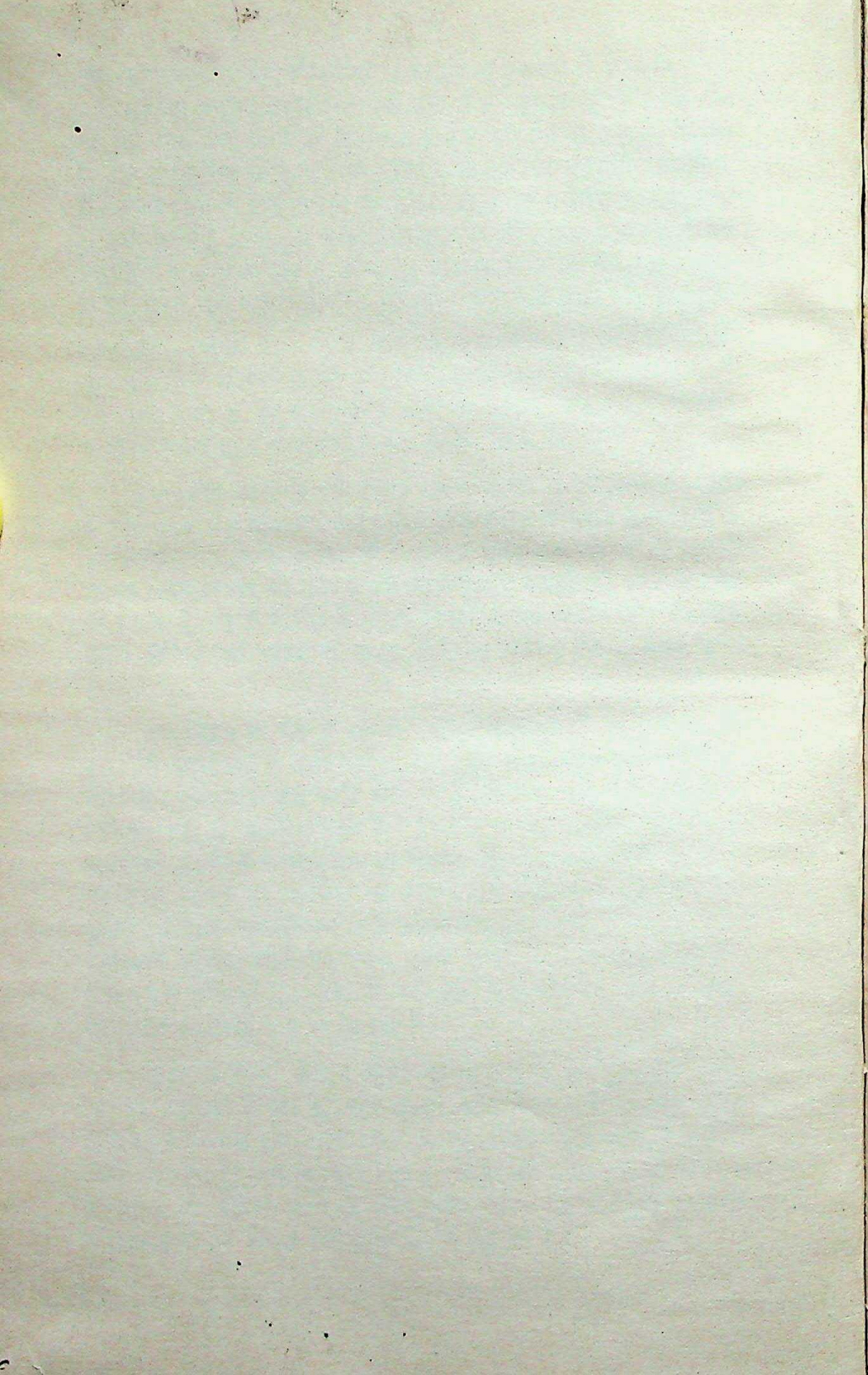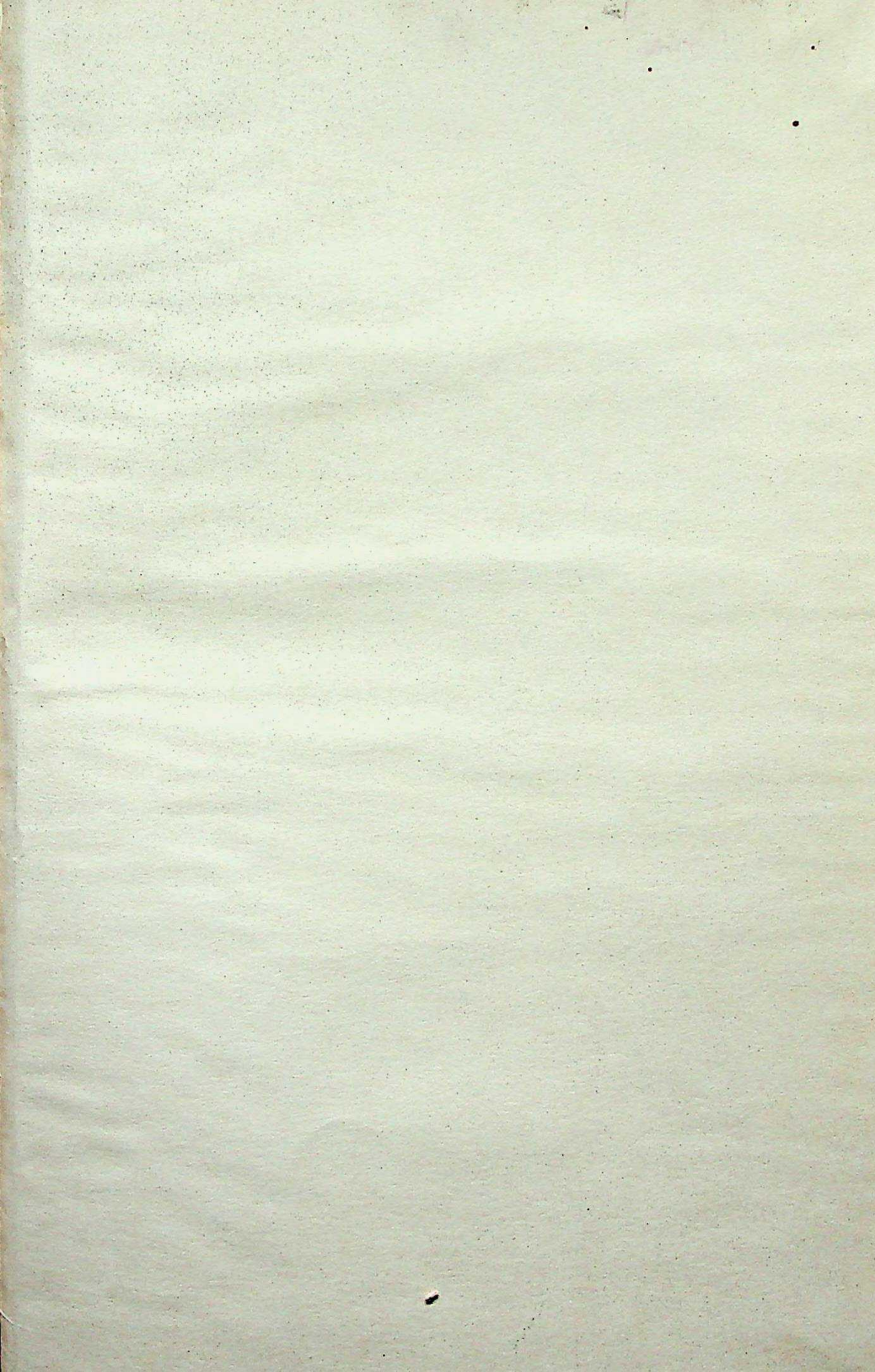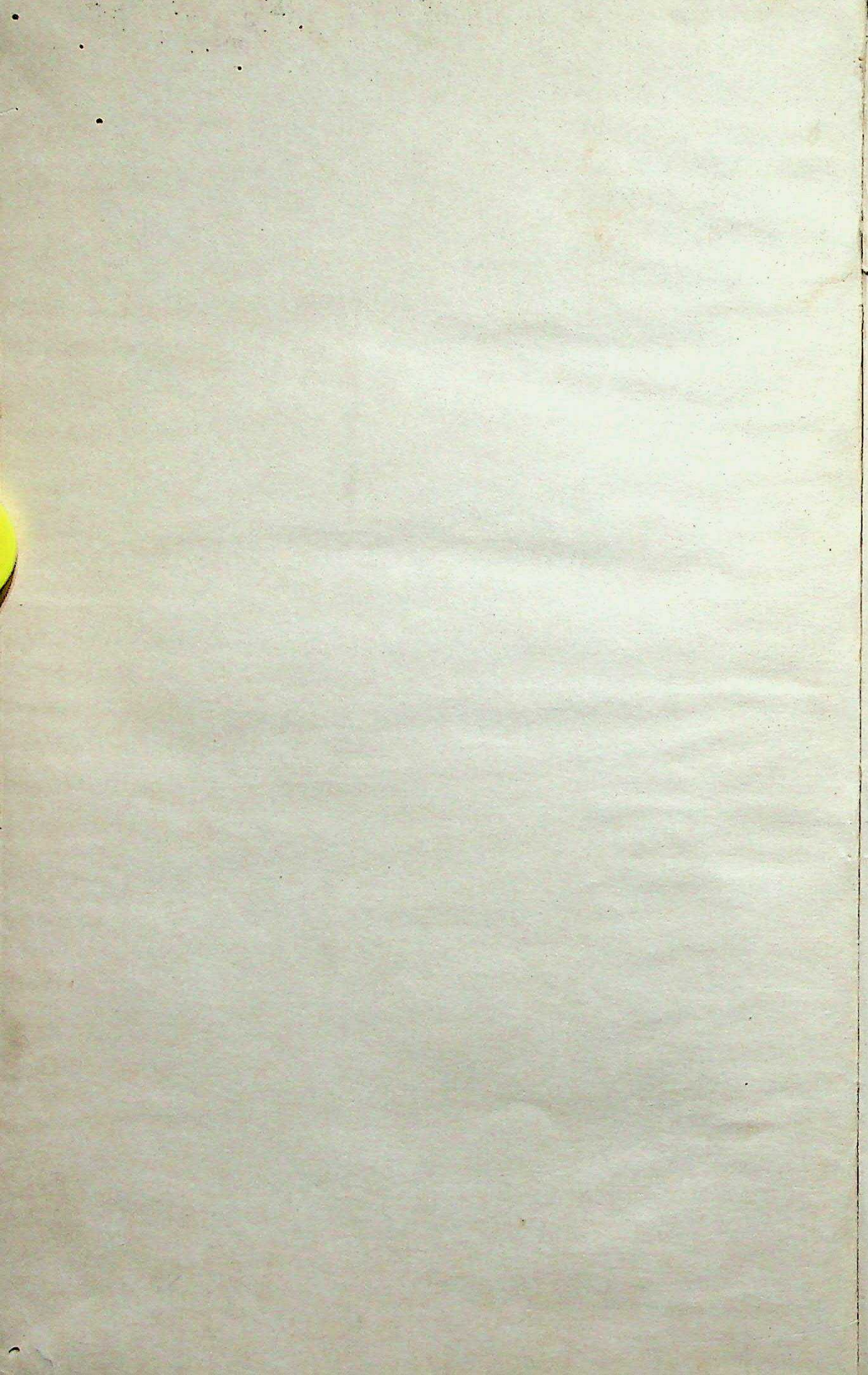
डॉ० (कु०) सुधा पाण्डे
प्राचार्य
एम० के० पी० कॉलेज
देहरादून

Rs. 200/-

विदुषी डॉ. सुधा पांडे की पुस्तक 'भारतीय इतिहास का मौर्य युग' (संस्कृत और हिन्दी नाटकों के सन्दर्भ में) इतिहास और साहित्य दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। इतिहास युग निर्माण करता है और साहित्य उसकी प्रासंगिकता को आगे आने वाले युगों में सार्थक बनाता है। इतिहासकार एवं साहित्यकार युग द्रष्टा भी है और युगसृष्टा भी। भारतीय इतिहास का मौर्य युग एकराट् शासकों और अखण्ड भारत का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने वाला युग माना जाता रहा है। इस युग का ख्यातिवृत्त नवयुग के निर्माण में साहित्यकारों के लिये विशेष प्रेरणा का स्रोत बना। विशेषकर हिन्दी नाटककारों के लिए। संस्कृत नाटकों के विशाख दत्त के 'मुद्राराक्षस' स्वयं इस युग के मूलस्रोत का आख्याता है। साहित्यकार की इतिहास दृष्टि इतिहास और साहित्य के परिपार्श्व में कितनी महत्वपूर्ण एवं प्रभावी बनती है, इसका आकलन इस कृति में किया गया है। जीवन का यथार्थ चित्रण करने वाली कृति नाटक किसी भी युग का जीवन्त रूप प्रतिविम्बित करने में पूर्ण समर्थ विद्या मानी गयी है। लेखिका ने इतिहासगत तथ्यों एवं साहित्य के उपादानों का गम्भीर अध्ययन परक विवरण प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ इतिहास एवं साहित्य दोनों विषयों के अध्येताओं के लिए उपयोगी है एवं संग्रहणीय है।

प्रो० के० पी० नौटियाल
कुलपति
अवध विश्वविद्यालय
फैजाबाद

Published by :
Gauri Publications
23/4, Shakti Nagar, Delhi-110007